सवा लाख श्लोकों का सार

सम्पूर्ण

महा भारत

केवल भाषा

पूरे अट्ठारह पर्व

मूल कर्ता— महर्षि वेद व्यास

तथा

सबलसिंह चौहान कृत महाभारत का हिन्दी अनुवाद

प्रकाशक—

पञ्जाबी पुस्तक

दरीबा कलां दिल्ली—6

सजिल्द 8) रुपया

मुद्रक:—काशीप्रसाद वाजपेयी, प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, लालदरवाजा, बाजार सीताराम देहली।

विषय-सूची



Sardar Sunder Autter Singh B.A.; LL.B (Punj)

* ओ३म् *

महर्षि वेद व्यास कृत सवा लाख श्लोकों का सार

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्यं नरञ्चैव नरोतमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

धर्म अर्थ, काम, और मोक्ष इन चार नियमों पर पुराने ग्रंथों तथा शास्त्रादिकों में, सम्पूर्ण अध्यन करने के पश्चात् महर्षि वेदव्यास के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि इन्हीं विषयों पर एक पुस्तक की रचना संक्षिप्त रूप से वह स्वयं करें, जिसमें इन सब का विशद विश्लेषण हो । तथा पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर उस समय तक का सभी इतिहास उसमें समो दें ।

ऐसा विचार करने के पश्चात् उन्होंने आदि-देव ब्रह्मा जी से परामर्श किया । ब्रह्मा जी बोले यह विचार बहुत सुन्दर है । आप ऐसी पुस्तक अवश्य लिखें । सो ब्रह्मा जी की सहमति से उन्होंने प्रथम पूज्यनीय देवता श्री गणेश जी का स्मरण किया और उनके उपस्थित हो जाने पर उनसे कहा कि जिस ग्रंथ की रचना मैं करना चाहता हूँ, उसमें आप कार्य सहयोग अनिवार्य है । मैं अपनी जिव्हा से ग्रंथ का वर्णन करता जाऊँगा, आप उसे लिपिबद्ध करते जायें । गणेश जी इस शुभ का के लिये तैयार होगये । सो, एक शभ दिन का महूर्त निकाल वह महान ग्रंथ की रचना में तल्लीन हो गये । समयानुसार ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ ।

कथा भाग को छोड़ कर उस ग्रंथ में यथा विधि चौबीस हजार श्लोक लिखे गये। इनके अतिरिक्त लगभग सवा सौ श्लोक विषय सूची के भी हैं। बाद में यही ग्रंथ वेदव्यास जी ने शुकदेव मुनि तथा दूसरे शिष्यों से पढ़वाया। अपने शिष्यों की सुविधा के लिये उन्होंने भारत-संहिता नाम से एक दूसरे ग्रन्थ की भी रचना की। कहा जाता है उसमें आठ लाख श्लोक थे। किन्तु प्राप्त केवल एक लाख ही हैं। वेदव्यास के परम शिष्य श्री वैशम्पायन जी ने उन्हीं से भारत-संहिता पढ़ी और बाद में जन्मेजय के सर्प सत्र यज्ञ में यही कथा सुनाई। हम इसी कथा को संक्षेप में यहां दे रहे हैं।

सर्पसत्र यज्ञ

एक समय महाराज जन्मेजय अपनी सभा में बैठे थे कि उनके मन्त्री बोले— हे महाराज! जिस समय आपके पिता राजा परीक्षत भारत के चक्रवर्ती राजा थे उस समय सभी देश में सुख का राज्य था। एक दिन आपके पिता आखेट को गये तो एक मृग के पीछे भागने से रास्ता भूल गये। बीच बन में एक ऋषि को मौन बैठा देख उन्होंने उनसे मृग के बारे में पूछा, किन्तु ऋषि ध्यानावस्थित थे सो कुछ न बोले। राजा परीक्षत ने क्रोध में आकर निकट ही पड़े एक मरे सांप को उस ऋषि के गले में डाल दिया। ऋषि-पुत्र ने जब यह देखा तो उन्होंने राजा परीक्षत को श्राप दे दिया और तक्षक सांप के काटने से महाराजा का शरीरपात हो गया।

जन्मेजय ने यह सुना तो क्रोध में भरकर सर्पसत्र यज्ञ करने का आदेश दे दिया। बड़े बड़े पंडित बुलाये गये और सर्पसत्र यज्ञ प्रारम्भ हो गया। यज्ञ की अग्नि और धुयें से जब पंडितों के वस्त्र काले और नेत्र लाल होगये तो चहुँ ओर से सारे सर्प निस्तेज हो होकर अग्निकुण्ड में गिरने लगे और भस्म होने लगे। तब वासुगी नाग की बहन ने अपने भाई को बचाने के लिये अपने पुत्र आस्तीक को राजा जन्मेजय के पास भेजा। आस्तीक चूंकि ब्राह्मण पुत्र

था इसलिये यहां उसका स्वागत भी हुआ और पूजा भी। बाद में राजा जन्मेजय ने उससे वर मांगने को कहा। तब वह बोला, समय आने पर मांगूंगा। तभी तक्षक भयभीत हो राजा इन्द्र के स्वर्ग में जा पहुँचा। राजा इन्द्र भी जब यज्ञ के जोर से नीचे खिंचा जाने लगा तब उसने तक्षक को अपनी शरण से निकाल दिया। तक्षक जब अग्नि कुन्ड तक खिंचा हुआ आया और आग में गिरने को हुआ तब उसे आस्तीक ने पकड़ लिया और कहा—महाराज! आपने हमें वर लेने को कहा था न, हम वर मांगते हैं कि अब सर्पसत्रयज्ञ समाप्त कर दिया जावे। पहले तो राजा नहीं माने, पर बाद में आस्तीक को इच्छानुसार सर्पसत्र यज्ञ समाप्त कर देना पड़ा।

राजा ययाति और देवयानि

जिस समय राजा जन्मेजय यज्ञ समाप्त कर चुके तब महर्षि वेदव्यास वह अपने शिष्यों सहित पधारे। पहले राजा जन्मेजय ने उन्हें उचित आसन पर बिठाया और तब कहा—हे महर्षि! आपने कौरव पांडवों को अपनी आँखों से देखा है। वे लोग बहुत बुद्धिमान होने पर भी परस्पर क्यों लड़े, जिससे इतने प्राण खेत रहे और इतने राजाओं का नाश होगया—हम इस कथा को सुनना चाहते हैं आप कृपा करके सुनाइये।

महर्षि वेदव्यास ने यह कार्य अपने परम शिष्य वैशम्पायन को सौंप दिया तब सभी देवों को याद करके श्री वैशम्पायन जी ने कथा सुनानी शुरु कर दी।

वैशम्पायन जी बोलेः—

हे राजा जन्मेजय! आपके कुल के एक बड़े प्रतापी राजा ययाति एक बार आखेट को गये तो वहां स्वयं शिकार हो गये। बीच बन में प्यास लगने पर वह एक सरोवर के किनारे गये तो देखा वहां दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और बृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा बहुत सी दासियों के साथ नहा रही है। राजा ने उनका परिचय पूछा। देवयानी ने अपना और शर्मिष्ठा का

परिचय देकर कहा—आप कौन हैं? आपका भेष राजओं का सा है और वाणी ब्राह्मणों की सी। आप हमें अच्छे लगते हैं। क्या आप मुझे अपनी अर्द्धांगिनी बनाना स्वीकार करेंगे?

राजा ने शंका प्रगट की, कि आप ब्राह्मण कुमारिका हैं और मैं क्षत्री। यह कैसे संभव होगा। देवयानी ने कहा, सब होजायेगा। तत्पश्चात् देवयानी ने अपने पिता शुक्राचार्य को बुलाया और उनके आशीर्वाद से दोनों का पाणि ग्रहण सम्पन्न हुआ। चलते समय बृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को भी शुक्राचार्य ने देवयानी के साथ कर दिया। पर जाते समय राजा ययाति से उन्होंने यह कह दिया कि भूलकर भी शर्मिष्ठा से प्रसंग नहीं करना। वैसे उसे सम्मान पूर्वक रखना।

राजा ययाति नगर में लौट आया उस समय तक शर्मिष्ठा की आयु छोटी थी। किन्तु कुछ समय पश्चात् जब देवयानी के एक सन्तान उत्पन्न हुई तो एक दिन शर्मिष्ठा ने एकांत पाकर राजा ययाति से कहा कि तुम मेरे भी एक सन्तान उत्पन्न कर दो। राजा ययाति ने शुक्राचार्य का कथन स्मरण कराकर अपनी विवशता दिखलाई। पर शर्मिष्ठा ने हठ किया और राजा ययाति को उसकी इच्छा के आगे झुकना ही पड़ा और दोनों का संयोग होगया। इससे शर्मिष्ठा को गर्भ रहा और समयानुसार उसने भी एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इस पर देवयानी कुपित होकर अपने पिता के पास चली गई। शुक्राचार्य ने यह बात सुनी तो क्रोध में राजा को शाप दे दिया कि बूढ़े हो जाओ। राजा ययाति के केश श्वेत होगये और वह बूढ़े बन गये। तब वह क्षमायाचना करने के लिये शुक्राचार्य के पास गये अत्यन्त अनुमय विनय करने पर शुक्राचार्य जी बोले—अच्छा यदि तुम्हारा बुढापा तुम्हरा कोई पुत्र लेले, तो तुम फिर युवा हो जाओगे।

राजा ययाति घर लौटे और देवयानी के पुत्रों—यदु और तुर्वस को बुला कर कहा—बेटा बुढापा लेले। पर वह तैयार नहीं हुए। तब शर्मिष्ठा के पुत्र

पुरु ने उनका बुढ़ापा ले लिया और ययाति फिर जवान होगये। तब सौ वर्ष तक उन्होंने सुख पूर्वक राज्य किया और फिर दोबारा अपने पुत्र पुरु को उसकी युवावस्था लौटाकर और अपना बुढ़ापा लेकर वन को चले गये।

शान्तनु-गंगा मिलन

देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्य अनु और पुरु नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुये। आगे चलकर यही दो कुलों में बट गये। यदु से यदु-कुल और पुरु से पौरव वशं स्थापित हुआ। अनु के कोई सन्तान न हुई। इसी यदुकुल में बहुत सी पीढ़ियों के बाद श्री कृष्णचन्द्र का अवतार हुआ और पौरव वंश में कुरु नाम के एक बड़े प्रतापी राजा जन्मे। इसी समय से इनके वंश का नाम कौरव पड़ा। फिर कुछ काल पश्चात् इसी कुल में प्रतीप नाम के अतीव बलशाली राजा का जन्म हुआ और उनकी रानी से देवापि शान्तनु और वाह्लक नाम के तीन पुत्र हुये। शान्तनु इनमें बड़े तेजस्वी थे। इनका विवाह जब गंगा से होगया तब प्रतीप इन्हें राज्यपाट देकर बन गमन कर गये।

शान्तनु जब सुख पूर्वक राज्य चला रहे थे तब वह एक दिन शिकार खेलने गये। गंगा किनारे उन्होंने जंगल में एक मनमोहिनी सूरत देखी और उस पर मोहित होगये। जब उन्होंने उससे शादी करने का प्रस्ताव किया तब वह बोली—वैसे तो मैं भी आप पर मोहित हूँ पर मेरी एक शर्त है। और वह यह कि शादी होने के बाद आप मेरे किसी कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे। मैं हर काम को स्वतत्र हूँगी। राजा ने शर्त स्वीकार करली और उस मोहिनी स्त्री को राजमहल में लेगये।

देव व्रत का जन्म

वैश्म्पायन जी बोले—हे राजन्! चूंकि राजा शान्तनु ने यह बचन दिया था कि वह अपनी स्त्री के किसी कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे, इसलिये जब कुछ

समय पश्चात् उसके एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ और उसे लेजाकर उसने गंगा की बीच धारा में फेंक दिया तो वह विवश तया चुप रहे। और इस प्रकार जब वह अपने सात पुत्रों को नदी में फेंक चुकी और आठवें को फेंकने लगी तो शान्तनु को यह असहनीय हो उठा। उन्होंने उसकी बांह पकड़ ली और कहा– ओ पिशाचिनी! तुझे अपने पुत्रों को मारने जैसा निद्यकर्म करते शर्म नहीं आती। यह पुत्र मेरा भी है। मैं अब तुझे इसे न फेंकने दूँगा।

रानी ने यह सुना तो पुत्र छोड़ दिया और कहा–ले लीजिये अपना पुत्र! आपने वचन भंग किया है। अब मैं आप के साथ नहीं रह सकती। मैं महर्षि जन्हु की कन्या हूँ। मुझ पर तो वशिष्ठ जी का शाप था और मुझे वसुओं को मृत्यलोक पर उत्पन्न करना था। वह सातों पुत्र भी वसु बन चुके होंगे। अच्छा हो यदि आप इसे भी मुझे साथ ले जाने दें। एक विशेष अवसर पर यह आठों वसु आपकी सहायता करेंगे।

इतना कह कर वह उस पुत्र को भी साथ लेकर गंगा में अन्तर्ध्यान हो गई और राजा शान्तनु क्षुब्ध होकर घर लौट आये।

बहुत समय बीतने पर एक बार फिर शान्तनु आखेट को निकले। संयोग से वह उसी तरफ आनिकले, जहां उनकी स्त्री अन्तर्ध्यान हुई थी। वहां गंगा किनारे उन्होंने एक अत्यन्त रूपवान लड़के को धनुष बाण से खेलते देखा। पर ज्योंही वह उसकी तरफ आगे बढ़े कि वह लड़का उन्हें देखकर नदी में कूदकर अन्तर्ध्यान होगया। राजा को याद आया कि यह तो उनका आठवां पुत्र था। तब उन्होंने बहुत से देवताओं की पूजा की और कहा कि वह उनके बेटे को उनसे मिलादें। देवता प्रसन्न होगये। और तब उनकी स्त्री उस बालक सहित बाहर निकली और उसको राजा शान्तनु के हाथों सौंपते हूये बोली– यह बच्चा आपका है। अब यह सभी विद्याओं में पारंगत होगया है। अब इसे आप लेजाइये। राजा प्रसन्न मन से उसे अपने महल में लेआये और उसका नाम उन्होंने देवव्रत रखा और उसे युवराज बना दिया।

सत्यवति का परिचय

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! करनी बड़ी विचित्र है। सभी कुछ इसी के बस में है। राजा शान्तनु को चूँकि शिकार खेलने का शौक था, इसलिये एक बार जब वह शिकार खेलने गये तो यमुना के किनारे उन्हें एक ऐसी रूपवान लड़की मिली जिसकी सुन्दरता पर वह मोहित होगये! उन्होंने उस से शादी करने की इच्छा प्रगट की तो वह बोली मैं धीवर की कन्या हूँ। आप मेरे बाप से पहले पूछ लीजिये। राजा शान्तनु उसके बाप के पास गये, धीवर बहुत चतुर था। उसने ने कहा—शादी तो हो सकती है पर मेरी शर्त यह है कि मेरी ही कन्या से उत्पन्न पुत्र राजगद्दी का मालिक होगा। यह बात राजा शान्तनु ने नहीं मानी। वह अपने पुत्र देवव्रत को इस अधिकार से बंचित नहीं करना चाहते थे, सो लौट आये। पर उस लड़की सत्यवती की याद में वह रुग्ण हो गये। पिता के बीमार होने पर देवव्रत को बड़ी चिन्ता सताने लगी उन्होंने मंत्री से कारण पूछा। पहले तो मन्त्री टालमटोल करने लगा किन्तु फिर उसने सब सच सच बता दिया।

भीष्म का व्रत

देवव्रत ने सोचा कि पिता की राहका कन्टक मैं ही हूँ मैं ही स्वयं उनकी राह से हट जाऊँ। मन में निश्चय करके देवव्रत उस धीवर के पास गया और उसने कहा—हे दासराज धीवर! तुम अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह मेरे पिता से कर दो, मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारी ही बेटी का पुत्र राज्य का अधिकारी होगा। इसपर धीवर बोला— आप तो चाहे राज्य पर अधिकार न जतायें पर आपके पुत्र अवश्य राज्य मागेंगे सो मैं चाहता हूँ कि मेरी ही बेटी से आपके कुल की बेल बढ़े। इस लिये मेरे ख्याल से यह अच्छा होगा कि आप सत्यवती का पाणिग्रहण करलें।

देवव्रत ने कहा-मैं पितृ-द्रोह नहीं कर सकता। हां तुम यदि यही चाहते हो कि तुम्हारी ही बेटी से हमारे कुल की बेल बढ़े तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ जीवन पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा इससे तुम्हारी यह इच्छा भी सम्पूर्ण होगी।

देवव्रत की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर आकाश से देवताओं ने पुष्प वर्षा की और आकाशवाणी हुई कि हे देवव्रत ! तेरा जन्म सार्थक हुआ तू धन्यवाद का पात्र है। आज से तेरा नाम भीष्म हुआ।

इससे धीवर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सहर्ष अपनी पुत्री सत्यवती को भीष्म के साथ भेज दिया। सत्यवती को लेकर जब भीष्म अपने पिता के पास पहुँचे तो उनके पिता की आंखों में आंसू आगये और वह गद्गद् स्वर में बोले-बेटा तूने मेरे लिये बहुत त्याग किया है। इसलिये मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे इच्छा करने पर ही होगी।

तत्पश्चात शुभ मुहूर्त में शान्तनु और सत्यवती का विवाह होगया। और कुछ काल बीतने पर उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुये।

वैशम्पायन जी बोले-हे राजन् ! उन पुत्रों में से बड़े का नाम चित्रांगद और छोटे का विचित्र वीर्य रखा गया।

भीष्म की स्वयंवर विजय

Seen & Signed

राजाजन्मेजय को सम्बोधित करते हुये ऋषि वैशम्पायन जी फिर बोले-हे राजन् ! जब चित्रांगद उत्पन्न हुये थे तब भीष्म ने उन्हेंसब-कला-पारंगत किया था। वह समस्त कला सम्पूर्ण अतीव बलशाली हुये और पशुओं का नाश करके राज्य विस्तार करने लगे। किन्तु जब विचित्र वीर्य उत्पन्न हुये तब शातनु मृत्यु शय्यापर पड़ गये तथा कुछ समय पश्चात् स्वर्गधाम चले गये। चित्रांगद राजा बने। पर उन्हें अधिक सुख भोगना नहीं लिखा था। एक भीषण युद्ध में वह मारे गये और भीष्म ने अपने वचनानुसार उनके स्थान पर विचित्रवीर्य को गद्दी पर बिठा दिया। तब तक विचित्रवीर्य की आयु

ब स्वर्गवास कर गये तब वह अपने मित्र के यहां जाने की सोचने लगे। ारद्वती से उनके एक सन्तान भी हुई थी, जिसके उत्पन्न होते ही उसके हाथी ामान ही सने के कारण 'अश्वत्थामा, नाम पड़ा। अपने परिवार को लेकर द्रोणाचार्य द्रुपद के राज्य में पहुँचे। द्रुपद उस समय राज्य के नशे में चूर था। उसने द्रोणाचार्य को मात्र एक दरिद्र ब्राह्मण जाना और उनका अपमान कर ठे। यह बात उन्हें बुरी लगी और वहां से लौट आये। वह सीधे पांचाल ेश से हस्तिना पुर आगये और कृपाचार्य के घर में गुप्त रुप से रहने लगें।

बालकों की शिक्षा

समय बीतता गया और कौरव पांडव होते गये। वह साथ साथ खेलते और साथ साथ शिक्षा ग्रहण करते। किन्तु पांडव कौरवों से हर खेल में अग्रणी रहते। इससे कौरवों के मन में पाप पलने लगा। पांचों भाईयों में भीम बहुत उद्दंड थे युधिष्ठर धर्मपरायण तथा सरल। इनके विपरीत दुर्योधन, जोकि कौरवों में ज्येष्ठ थे, क्रूर स्वभाव के थे। भीम बलशाली भी बहुत थे। वह तैरते समय सभी कौरवों को पानी में डुबकियां लगवाते थे। कौरव भीम से रुष्ट रहने लगे। उनकी यह रुष्टता, एक दिन तब तो सीमा लांघ गई जब उन्होंने भीम को विष पिला दिया और बांध कर नदी में फेंक दिया।

भीम चूंकि बहुत भारी था इसलिये शीघ्र पानी की तलहटी में जा पहुँचा। वहां नाग लोक बसा हुआ था। कई सांपों ने भीम को काटा जिससे उनके शरीर का पहला बिष शांत हो गया। तब वह सचेत हुये और शरीर को झटक कर सभी बंधन तुड़ा लिये और उन सांपों को पकड़ कर पांवों तले रौंदने लगे। वासुकी सर्पराज उनकी वीरता से प्रसन्न हुआ और इस प्रकार बाद में, उनको वहां पर बड़ी खातिरदारी की गई। नागों ने उन्हें अमृत भी पिलाया जिससे उनमें दस सहस्र हाथियों का सा बल आगया।

उधर दुर्योधन इत्योदि जब घर पहुँचे तो उनसे भीम का पता पूछा गया। वह बोले–वह तो पहले ही घर आगया था। हमें उसका क्या मालूम ? इससे सारे घर में कुहराम मच गया, और भीम की खोज होने लगी। कुंती भीम के जैसे पुत्र के वियोग में रोने लगी। तब विदुर ने कुंती को सांत्वना दी कि कोई भीम का बाल भी बांका नहीं कर सकता। वह लौटकर स्वयं ही घर चला आयेगा। भीष्म ने भी अब मन में जान लिया कि कौरव क्रूरता की ओर बढ़ेंगे और पांडव पुराय की ओर। पर फिर भी वह दोनों को एक समान शिक्षा देते रहे।

सात दिन बीत जाने पर भीम भी दस सहस्त्र हाथियों का बल लेकर तथा रत्न, मणि, मुक्ता इत्यादि लेकर घर लौट आये। घर भर में हर्ष की वर्षा होने लगी। सभी भीम से गले लगाकर मिले। पर कौरवों में से कोई नहीं आया। भीम ने दुर्योधन तथा उसके भाइयों का भंडा फोड़ दिया और सारी बात सभी लोगों पर विदित होगई। तब से पांडव तो सतर्क रहने लगे और कौरवों के मन में ईर्ष्या की आग धुंधुआने लगी।

नित्य नियम के अनुसार एक दिन जब वह गेंद खेलने के लिये मैदान में पहुँचे और गेंद खेलने लगे तो संयोग से उनकी गेंद एक सूखे कुंये में जा गिरी। खेल में विघ्न पड़ गया और सभी गेंद निकालने का उपाय सोचने लगे। बहुत प्रयत्न तथा चेष्टायें करके देखी गई परन्तु गेंद नहीं निकली। अन्त में हारकर कुछ तो बैठ गये लेकिन कुछ तब भी लगे रहे। तभी उधर से द्रोणाचार्य निकले। उन्होंने बच्चों को इस प्रकार परिश्रम करते देखा तो बोले–कौन हो तुम लोग ? क्या करते हो ?

दुर्योधन ने आगे बढ़ के उत्तर दिया–महाराज। हम कौरव हैं। धृतराष्ट्र के पुत्र ! हमारी गेंद गिर गई है सो उसे निकाल रहे हैं।

द्रोणने कहा-अरे गेंद ऐसे नहीं निकलेगी। और तब यह कहकर उन्होंने कुएंमें लटककर उन्हें गेंद निकाल दी और कहा--जाओ जाकर अपने गुरू से शिक्षा लो।

तब वह सभी कौरव भीष्म के पास गये और घटना कह सुनाई । तब भीष्म बोले – वह अवश्य द्रोण होगा । तुम जाकर उन्हें बुला लाओ । हम तुम्हारी शस्त्र विद्या का उन्हीं को आचार्य बना देगें ।

कौरव भाग कर गये और द्रोण को बुला लाये ।

भीष्म ने द्रोण से निवेदन किया कि वह उन सब बालकों को शस्त्र-विद्या में पारंगत करदें । द्रोण भीष्म के इस प्रस्ताव को मान गये और बच्चों को शस्त्र विद्या सिखाने के लिये अपने सरंक्षण में ले लिया । कौरवों के साथ पांडवों को भी शस्त्र-विद्या मिलने लगी । उन सब को देख कर कर्ण भी वहां आ जाता और शस्त्र-विद्या सीखा करता । इस प्रकार द्रोण ने सभी को शस्त्र विद्या सिखाई । कोई गदा और भाले को चलाने में प्रवीण हो गया और कोई तलवार तथा द्वंद युद्ध करने में दक्ष हो गया । अर्जुन और कर्ण धनुष बाण चलाने में अत्यतं पारंगत हो गये । पर अर्जुन से द्रोण का बहुत स्नेह था । यह उनकी हर आज्ञा का पालन करता था और हर समय उनकी सुख सुविधा का ख्याल रखता था । जहां दुर्योधन तथा भीम गदा चलाने में और मल्लयुद्ध करने में दक्ष निकले वहां नकुल सहदेव तलवार में बाजी ले गये ।

गुरु द्रोण भी अब पहले से दरिद्र ब्राह्मण नहीं रहे थे । वह अब द्रोणाचार्य हो चुके थे । एक बार उनके मन में विचार आया की यह देखना चाहिये कि इन सभी राजकुमारों में सर्वोतम गुणों वाला कौन हैं । इस लिये उन्होंने एक लकड़ी की चिड़िया बनाई और उसे एक ऊंचे से पेड़ पर बैठा दिया । फिर सभी राजकुमारों को बुला कर उससे काफी दूर खड़ा किया और कहा—देखो राजकुमारो । सामने वाली चिड़िया की आंख को तुमने अपने तीर से बेधना है। अपना अपना कमाम उठालो और चिल्ला चढ़ालो ।सभी ने तीर कमान उठा लिये पर तभी द्रोण ने पूछा—तुम्हें इस समय क्या नजर आ रहा हैं !

सभी ने एक एक करके उत्तर दिया की सभी कुछ तो नजर आ रहा है । हमारे पास आप सब खड़े हैं ।सामने पेड़ है और उस पर एक चिड़िया

बैठी है जिसकी आंख में हमें तीर मारना है। सुनकर द्रोण ने सब को रोक दिया। केवल अर्जुन रह गये थे। उस ने भी द्रोण ने यही प्रश्न किया। अर्जुन बोला—गुरु प्रवर! मुझे इस समय केवल चिड़िया की आंख दिख रही है। और उसी में मुझे अपने तीर की नोक मारनी है।

अर्जुन के उत्तर पर द्रोण बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने उसे तीर चलाने की अनुमति दे दी। अर्जुन ने तीर चलाया और चिड़िया की आंख बिंध गई। द्रोणाचार्य उस से और भी खुश हुये और उसको खूब मन से शस्त्र विद्या सिखलाने लगे। अर्जुन शीघ्र ही धनुर विद्या में प्रवीण हो गया। अर्जुन की बढ़ती देखकर कौरवों के मन पर सांप लोटने लगा और वह उसे नीचा दिखाने का अवसर ढूढ़ने लगे। द्रोणाचार्य ने मन में सोचा कि आज बहुत दिनों बाद ऐसा व्यक्ति मिला है जो द्रुपद से मेरे अपमान का बदला लेने में समर्थ हो सकेगा।

परीक्षा के दिन

जब राज कुमार शस्त्र विद्या में पारंगत हो गये तब एक दिन द्रोणाचार्य ने जाकर भीष्म पितामह से कहा कि अब इन की परीक्षा होनी चाहिये। भीष्म पितामह तत्काल सहमत हो गये और प्रसन्नता पूर्वक उन्होंने अनुमति दे दी। द्रोणाचार्य ने अनुचरों को बुला कर आज्ञा दी, कि शीघ्रातिशीघ्र सभा का आयोजन करो।

दिनों मे ही एक बृहद सभा का आयोजन किया गया और सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि राजकुमारों की शस्त्र विद्या की परीक्षा होगी जिसमें सारी प्रजा को निमंत्रित किया जाता है।

विशेष दिन नगर भर में बन्दन वार लगाये गये और सारे रास्तों को सजाया गया। सुगंधि उड़ाई गई। सड़कों पर छिड़काव किया गया। इस कार्य का सम्पान करने वाले महात्मा विदुर जी थे। वे जन्मांध धृतराष्ट्र के

परामर्शदाता थे और सभी समाचार भी वही पहुँचाया करते थे। एक बहुत बड़े स्थान को परीक्षा भूमी निर्धारित किया गया। यथा समय सभी लोग आकर अपने अपने स्थानों पर बैठ गये। ऊंचे आसनों पर महारानी गंधारी, कुंती इत्यादि रानियां भी आकर आसीन हो गईं। पुरुषों तथा स्त्रियों की भीड़ से रंग-भूमि ठसाठस भर गई। उस समय उस स्थान की शोभा अद्वितीय थी। समस्त प्रजा वर्ग के आने के कुछ समय पश्चात् धृतराष्ट्र भी विदुर जी के साथ आकर उच्च सिहांसन पर विराज गये। सभी के आजाने के पश्चात् गुरु द्रोणाचार्य अपने सभी शिष्यों को साथ लेकर आये और सभी को उचित आसनों पर बिठा कर स्वयं भी बैठ गये।

और तब परिक्षा शुरु हुई। पहले सब से छोटी आयु के राजकुमारों ने अपना शस्त्र कौशल दिखलाया। उन्हों तलवारें चलाईं, गदायें घुमाईं, भाले फैंकें और धनुषबाण के करतब दिखाये। जनता विमुग्ध सी देखती रही। द्रोणाचार्य एक २ को आदेश देते थे और हर कोई अपनी विद्या का प्रदर्शन करके अपना आसन ग्रहण करलेता था। धीरे धीरे सभी छोटे राजकुमारों का प्रदर्शन समाप्त हुआ और अब दुर्योधन तथा भीम अपनी अपनी गदा लेकर मदान में उतरे। दुर्योधन के मन में चूंकि पाप था इसलिये जब गदा युद्ध शुरू हुआ तो उसने जानबूझ कर कई ऐसे वार किये जिस से भीम घायल हो जाये। पर भीम कुशल थे। वह उसके सब वार बचा गये। तब उन्होंने दुर्योधन पर कुछ ऐसे वार किये जिन्हें दुर्योधन को बचाना दुष्कार हो गया। तब द्रोणाचार्य की आज्ञा से उनके सुपुत्र अश्वत्थामा आगे बढ़े और उन्होंने दोनों के वास्तविक युद्ध को रोक दिया।

उनके पश्चात् अर्जुन की बारी थी। वह अपने धनुष बाण को लेकर नीचे उतरे और सभी सभासदों की नजरें उन पर उठ गईं। उन्होंने पल भर में ही इतने तीर चला दिये कि सारे भवन को आच्छादित कर दिया। फिर तीर चलाया और पानी की धारायें बहा दीं फिर तीर चलाया और अग्नि वर्षा

कर दिखाई। उसने तीर के ऐसे करतब दिखाये कि सभी देखने वाले चकित हो उठे और उसकी प्रशंसा में वाह वाह करने लगे।

पर तभी एक विचित्र घटना घटी। जब अर्जुन अपनी धनुर्विद्या का कौशल दिखला कर जनता की ओर गर्व भरी दृष्टि से देख रहा था तभी कर्ण की गरजदार आवाज़ सुनाई दी-यह गर्व व्यर्थ है। मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। आओ मुझसे मुकाबिला करो।

सभी ने चौंककर देखा-सारथी सूत का पालित पुत्र कर्ण हाथ में धनुष-बाण लिये खड़ा था। नकुल ने ललकार कर कहा-तुम सूत पुत्र हो। तुम से राज कुमार का मुकाबिला नहीं हो सकता। सभी दूसरे लोगों ने भी उसकी हां में हां मिलाई। कर्ण ने कहा-युद्ध में जाति नहीं देखी जाती। भीष्म ने कहा-देखी जाती है!

तब तक अर्जुन को भी क्रोध आचुका था। उसने गरजकर कहा-तुम अभिमान में चूर हो कर्ण। यदि गुरू मुझे आज्ञा देद तो मैं पल भर में तुम्हें जमीन सुंघा दूं।

इधर दुर्योधन ने देखा कि कर्ण काम का आदमी है, और योद्धा भी है। अर्जुन को पछाड़ सकता है। ऐसा सोच कर दुर्योधन तत्काल नीचे उतरा और कर्ण से मित्रता का हाथ मिलाया तथा उसे तिलक करके उसी समय अंगदेश का राजा बना दिया।

अर्जुन ने गुरू की ओर आज्ञा चाहती दृष्टि से देखा। उस समय उसकी भुजायें फड़क रही थीं। भीष्म फिर बोले-कर्ण। जिसके कुल का पता न हो उससे राजकुमार नहीं लड़ सकता। अब कर्ण की गर्दन झुक गई। दुर्योधन ने बहुत समझाया, पर विदुर के कहने पर सबको यही मानना पड़ा कि कर्ण, अर्जुन से नहीं लड़ सकता। अस्तु! इसप्रकार दुर्योधन और कर्ण की तो मित्रता हो गई तथा पांडवों की नगर भर में ख्याति फैल गई और लोकप्रियता बढ़ गई।

परीक्षा में सभी के सफल होने पर द्रोणाचार्य ने अपनी गुरु दक्षिणा मांगी। सभी शिष्यों ने कहा, जी आप कहे, हम वही करने और वही देने को तत्पर हैं। द्रोणाचार्य ने कहा कि मेरा कभी पांचाल नरेश द्रुपद ने अपमान किया था, आप लोग उससे मेरा बदला लें।

तब पहले सभी कौरव पांचाल नरेश पर चढ़ाई करके पहुँच गये। लेकिन उनका प्रयत्न निष्फल रहा। तब द्रोणाचार्य ने पांडवों को भेजा। उन्होंने अपने बुद्धि कौशल तथा बल से द्रुपद को परास्त कर दिया और उसे बांधकर ले आये। मगर गुरू द्रोणाचार्य ने द्रुपद पर तरस खाकर उसे दोबारा छोड़ दिया इस विचित्र गुरु दक्षिणा से नगर निवासी आश्चर्य चकित हुये और उन्होंने पांडवों को धन्यबाद दिया। कौरवों के मन में अब पांडवों के प्रति और भी क्रोध बढ़ गया।

विद्वेष का बीज

वैशम्पायन जी बोले-हे राजन्! इन घटनाओं से दुर्योधन के मन में जैसे आग लग चुकी थी। वह किसी तरह से पांडवों को नीचा दिखाना चाहता था। उन्हीं दिनों राजदरबार में भीष्म पितामह की इच्छानुसार युधिष्ठर को युवराज बनाने की बात उठाई गई जिससे सभी लोग तत्काल सहमत हो गये। जब दुर्योधन ने सुना कि युधिष्ठर को युवराज बनाया जायेगा तो वह जैसे और भी आग होगया। उसने धृतराष्ट्र के कान भरने शुरू कर दिये। पहले तो धृतराष्ट्र ने भी उसे समझाना चाहा पर बाद में दुर्योधन ने उन्हें मनालिया। दुर्योधन उनका सगा पुत्र था। वह उसी का लाभ चाहते थे।

उन्हीं दिनों पांडवों ने अपने राज्य विस्तार के लिये भारत के उत्तर तथा दक्षिण में चढ़ाई करदी। ईश्वर की कृपा से वह जहां भी गये सफलता ने उनके चरण चूमे। कई बड़े बड़े राजा, जैसे दत्तात्रेय, सुबीर और सौबीर मुख्य हैं उनके आधीन हो गये और उन्हें कर देने लगे। पांडवों की इस महान

विजय से कौरवों के द्वेष की आग में जैसे घी पड़ गया। उन्हें सारा राज्य अपने हाथ से निकलता दिखाई देने लगा। दुर्योधन ने जाकर फिर धृतराष्ट्र के कान भरे और कहा कि वह लोग तुम्हारे अंधे होने का लाभ उठा रहे हैं। शीघ्र ही वह तुम्हें भी गद्दी से उतार देंगे। इससे धृतराष्ट्र भी मोह जाल में फंस गये और अपने तथा अपने पुत्रों के राज्य विस्तार की योजना सोचने में चिंतित रहने लगे।

लाक्षा गृह

धृतराष्ट्र की जब कुछ समझ में नहीं आया तो एक दिन उन्होंने अपने मंत्री कणिक को बुलाया और सारी परिस्थिति बता दी। कणिक बोला—महाराज बात तो सही है। वह लोग सचमुच ही प्रजा के दिलों पर राज्य करने लगे हैं। पर कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। यदि बिना किसी बात के इन्हें राज्य से वंचित कर दिया गया तो संभव है प्रजा विद्रोह करदे। इसलिये उचित यही है कि छल से इन्हें राज्य के अधिकार से वंचित कर दिया जाये।

कणिक की यह बात मदांध धृतराष्ट्र को जंच गई और वह युक्ति सोचने लगे कि कैसे पांडवों से उनके राज्य का अधिकार छीना जासकता है। उसी समय दैवयोग से दुर्योधन वहां आनिकले। उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि आपने क्या सोचा? धृतराष्ट्र ने कहा कि कोई ऐसा छल किया जाये जिससे पांडव सारे राज्यधिकार से वंचित रहजायें पर मुझे अबतक कोई उपाय नहीं सूझरहा।

तब दुर्योधन ने कहा—उपाय मेरे पास है मैं अपने मामा शकुनी से मिलकर आरहा हूँ। उन्होंने मुझे सब तरकीब समझा दी है। आप बस किसी तरह यह कर दीजिये कि कुछ समय के लिये पांडवों को बारणावत भेज दीजिये। उससे आगे की सब तरकीब मैं कर लूंगा।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के ऐसा कहने पर पांडवों को बुलाया और युधिष्ठिर से बोले–हे धर्मराज ! तुम कुछ समय के लिए बारणावत चले जाओ। वहाँ आप लोगों के लिए बहुत बड़ा महल बनाया गया है। आप लोग उसमें ठहरें और दान यज्ञ करें। वहाँ के साधुओं को तथा जनता को सुख दें।

युद्धिष्ठिर समझ नहीं पाये कि उन्हें अकस्मात् बारणावत क्यों भेजा रहा है, पर चूँकि यह उनके ताऊ का आदेश था इसलिए उन्होंने आज्ञा को शिरोधार्य किया और अपने भाइयों तथा मां कुन्ती को साथ लेकर बारणावत के लिए चले।

इधर दुर्योधन ने पुरोचन नाम के अपने एक दूसरे मंत्री को कहा कि वह शीघ्रता से बारणावत चला जाये और पांडवों के पहुँचने से पहले ही वहाँ एक लाख तथा घी का मकान तैयार करादे। पुरोचन दुर्योधन का मतलब समझ गया। स्पष्ट था कि जब पांडव उसमें रात को सोये होंगे तो उसमें आग लगा दी जायगी। पुरोचन चला गया। और जब लाक्षागृह तैयार हो तो यह सोच कर बड़ा दुःखी हुआ कि अब पांडव जल कर मर जायेंगे। वह लौट आया। हस्तिनापुर से अभी पांडव चले नहीं थे। जब पुरोचन से रहा नहीं गया तो उसने महात्मा विदुर को सब बात बतला दी। इस से विदुर बहुत दुःखी हुए। लेकिन पांडवों के विदा होते समय उन्होंने युधिष्ठिर को चाक्षुषी उनकी भाषा में सब कुछ बता दिया। युधिष्ठिर भी चाक्षुषी भाषा जानते थे। उन्होंने कहा--कि वह जाकर उस लाक्षागृह में ठहरेंगे भी जरूर ही। तब विदुर जी ने कहा कि जरूर ठहरो। मैं उसमें से भागने के लिए एक सुरंग तैयार कराये देता हूँ। पुरोचन अपने कर्तव्य के अनुसार जाकर जब आपके सोते में आग लगा देगा, तब आप लोग भाग जाइयेगा। युधिष्ठिर सब बात समझ कर चल पड़े। उनके जाने से हस्तिनापुर की प्रजा बहुत दुःखित हुई। कई लोग तो साथ जाने को तत्पर हो गये पर धर्मराज के सांत्वना देने पर रुक गये। धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा कि वह शीघ्र ही सकुशल वापिस आयेंगे।

इधर विदुर जी ने एक कुशल व्यक्ति को भेज कर लाक्षागृह में से एक सुरंग बनवा दी जिसका पांडवों के अतिरिक्त किसी को पता न था।

कुछ समय पश्चात् पांडव बारणावत पहुंच गये। उस नगर के निवासियों ने उनका बड़ा स्वागत किया। उनके सत्कार में बड़ा समारोह किया गया। उन्होंने उस बहुत बड़े लाक्षागृह का निरीक्षण किया और तब उसमें पदार्पण करा गये। पुरोचन भी उस नगर में आ चुका था और छुप कर एक दूसरे मकान में रह रहा था। वह अमावस्या की रात की इंतजार में था। पांडवों ने शीघ्र ही नगर निवासियों को अपने अच्छे व्यवहार से वश में कर लिया। कुंती प्रतिदिन वस्त्र तथा खाने पीने का सामान दान किया करती थी। उन के उस मकान के चारों ओर हर समय याचकों की भीड़ सी लगी रहती थी। एक दिन कुंती ने देखा कि बूढ़ी स्त्री जिसके साथ पाँच बेटे थे, रात को वहीं महल के बाहर सो गई। सुबह पूछने पर पता चला कि उनके पास रहने को मकान नहीं है। कुंती ने उन्हें महल के अन्दर ही एक कक्ष में रहने की अनुमति दे दी। वह वहीं रहने लगे।

एक दिन जब अमावस्या की रात थी और सभी सो रहे थे, सहसा ही भीम की आँख खुल गई। वह चौंक कर उठ बैठा। उसने देखा, कुछ रोशनी हो रही थी। उसने जल्दी जल्दी सबका जगा दिया और सुरंग के रास्ते अन्दर धकेल कर स्वयं फिर लौट आया बाहर आ कर उसने देखा कि आग लग चुकी थी और पुरोचन भागा जा रहा था उसने पुरोचन की गर्दन नाप ली और पकड़ कर उसे उसी जलती आग में पटक दिया। तत्पश्चात् फिर स्वयं भी सुरंग में प्रविष्ट हो गया।

लाक्षागृह जल गया। उस में पुरोचन भी राख का ढेर हो गया। समाचार हस्तिनापुर पहुँचा। कौरवों ने बनावटी दुःख प्रगट किया। और रोने पीटने लगे। सारे नगर में हाहाकार मच गया। लोग भागे भागे बारणावत पहुँचे। सारा मकान राख का ढेर हुआ पड़ा था। इस राख में पांच हड्डियों के ढांचे,

पुरुषों के तथा एक ढाँचा स्त्री के शरीर का प्राप्त हुआ जिससे इस बात की पुष्टि हो गई कि पांडव मर चुके हैं। पुरोचन भी एक दूसरे कमरे में जला पड़ा था। इस दुर्घटना से कौरव मन ही मन तो बहुत प्रसन्न हुए किन्तु ऊपर से मगर मच्छ के आँसू बहाते रहे।

और उधर पांडव सुरंग से निकल कर बन बन भटकने लगे। उन्हें विदुर का संदेशा मिला कि फिलहाल वह स्वयं को प्रगट न करें। एक बन से दूसरे में भटकते भटकते अन्त में उन्हें एक मल्लाह ने अपने यहाँ आश्चर्य दिया और गंगा किनारे रहने लगे।

घटोत्कच का जन्म

वैशम्पायन जी कहते-हैं हे राजन्! कुछ दिन उस मल्लाह के यहाँ रह कर पांडव अपनी माता सहित फिर वनों में आगे बढ़ चले। सारे वन में उनके खाने के सामान की तो बात क्या थी, उन्हीं को अहार बनाने के लिए जंगली पशु उन के इर्द गिर्द मंड़राने लगे। कुंती माता की रक्षा करते हुए पांचों बलशाली भाई आगे ही आगे बढ़ते चले गये। बीच बन में कुन्ती को अत्याधिक प्यास ने सताया। निकट कहीं कोई नदी नहीं दिखाई देती थी। बाद में भीम के अतिरिक्त शेष चार भाइयों का गला भी सूखने लगा और कुछ ही दूर आगे चल कर सभी रुक गये, थकन के मारे उनसे चला ही नहीं जाता था। तब महाबली भीम ने माता कुंती को उठा लिया, युधिष्ठिर और अर्जुन को चलने में सहारा दिया और नकुल सहदेव को कन्धों पर बिठा लिया और अपने सहस्र हाथियों के बल के कारण बिना थके उन सबको ले चला। काफी समय तक चलने के पश्चात् उन्हें बगुलों के पांति उड़ती नजर आयी जिससे स्पष्ट था कि निकट ही कहीं सरोवर है। अनुमान के अनुसार सारे उधर ही बढ़ते चले गये, जिधर से बगुलों को उड़ कर आता देखा था और उन्हें सरोवर मिल गया। सभी ने खूब सारा पानी पिया

और तप्त हो गये। थकन के कारण किसी से भी चला नहीं जाता था। सभी ने विचार किया कि वहीं पेड़ के नीचे कुछ घड़ी आराम किया जाये। तब सभी सो गये। भीम पहरे पर बैठा रहा।

जिस पेड़ के नीचे वह सब सो रहे थे उसी पेड़ के ऊपर हिडिम्ब नाम का राक्षस अपनी बहन हिडिम्बा के साथ रहता था। उसने नीचे सोते हुए लोगों की बू सुनी तो उठ कर बैठ गया। उसने हिडिम्बा से कहा कि वह नीचे जा कर अपने आहार योग्य व्यक्तियों को उठा लाये। हिडिम्बा ने एक हुँकार भरी और नीचे उतर आई। पर वहां खेल ही और हो गया। उसने भीम को पहरा देता देखा। भीम के सुगठित तथा यौवन से भरपूर शरीर को देखकर हिडिम्बा के मन में उसके प्रति प्यार उत्पन्न हो गया। अर्थात् वह उस पर मोहित हो गई। तत्काल उसने एक सांवरी सलोनी लडकी का रूप भरा और छम् छम् करती भीम के पास आ खड़ी हुई। भीम निश्चेष्ट बैठा रहा। तब हिडिम्बा भी उसके निकट बैठ गई। कुछ देर उसने भीम के जवान शरीर को देखा और फिर बोली—हे शक्त नवयुवक! जिस पेड़ के नीचे तुम और तुम्हारे बांधव सोये हैं उसी के ऊपर हिडिम्ब नाम का मेरा एक राक्षस भाई रहता है। वह तुम सबको खा जायेगा। अगर तुम उससे बचना चाहते हो तो मुझसे शादी करलो। मैं तुम पर मोहित हो गई हूँ।

भीम बोला—मैं इसमें असमर्थ हूँ। भाइयों की तथा माँ की अनुमति के बिना मैं शादी नहीं कर सकता। रही बात तुम्हारे राक्षस भाई की तो मैं कहदूँ कि मैं किसी से डरता नहीं हूँ। कोई राक्षस हो या देवता हो, मेरे सामने आयेगा तो मैं उससे निबट लूँगा।

भीम के ऐसा कहने पर हिडिम्बा ने उसे फिर समझाना चाहा पर वह नहीं माना। तभी हिडिम्ब ने जब अपनी बहन को देर लगते देखी तो वह भी नीचे उतर आया। नीचे उसने देखा कि हिडिम्बा भीम के घुटनों के पास एक नवयौवना सुन्दरी बनी बैठी है हिडिम्ब समझ गया कि उसकी बहन का

मन डोल गया है। इससे उसे बहुत क्रोध आया और वह अपने हाथों के नाखून विस्फाटित करके अपनी बहन को मारने दौड़ा। भीम ने जब इस प्रकार का दृश्य देखा तो वह हिडिम्ब से उलझ गया। दोनों के आपस में टकराने से अचानक शोर हुआ जिससे कुन्ती तथा उसके चारों भाई भी जाग गये। चारों उस राक्षस की तरफ बढ़े लेकिन भीम ने सभी को रोक दिया और अकेला उसे पछाड़ता रहा। तब राक्षस गश खाकर गिर गया और भीम उसकी छाती पर चढ़ बैठा। फिर भीम ने उसकी गर्दन दबादी जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। तब भीम उठा और उसकी इस विजय पर सभी ने उसको। गले से लगा लिया। फिर जब वहां से चलने लगे हिडिम्बा भी साथ हो ली। कुछ दूर तक किसी ने उससे कुछ नहीं कहा लेकिन जब वह बाकायदा साथ ही चलती रही तो कुन्ती ने उसका मंतव्य पूछा। उसने कहा मैं आपके महा-पुत्र भीम से विवाह करना चाहती हूँ। कुन्ती ने तब भीम से उसका विचार पूछा। भीम ने कहा जैसी आपकी इच्छा हो, कीजिये। मैं तो आपके आदेशों पर चलूँगा। तब कुन्ती ने अनुमति दे दी। और उस जंगल में भीम और हिडिम्बा का गंधर्व विवाह हो गया। विवाह होते ही हिडिम्बा भीम को लेकर आकाश में उड़ गई। अनेक सुरम्य स्थानों पर विहार करने के काफी समय पश्चात् हिडिम्बा के गर्भ धारण हुआ और उसने नौ मास पश्चात् एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसके सर पर बाल न होने के कारण से उसका नाम 'घटोत्कच', रखा गया।

अब पांडवों की इच्छा आगे बढ़ने को हुई और वह चलने लगे तब हिडिम्बा हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और बोली–माता कुन्ती! अब आप हमें इजाजत दीजिये। हम लोग जंगलों में रहने वाले हैं, नगर में नहीं जासकते। हमें जब कभी आप अवसर पड़ने पर याद करेंगी, हम उपस्थित हो जायेंगे। कुन्ती उसकी बात सुनकर कुछ चकित तो हुई पर फिर उसकी बात समझकर अनुमति प्रदान करती हुई बोली सुखी रहो।

अतः हिडिम्बा अपने पुत्र के साथ वहीं रह गई और कुन्ती अपने पांचों पांडवों को साथ लेकर आगे बढ़ गई ।

एकचक्रानिवास

चलते चलते जब पांडव थक गये, तब एक दिन उन्हें बन में वेदव्यास जी मिले और उन्होंने उन्हें बिहार में जाकर निवास करने का परामर्श दिया। बिहार में एक स्थान पर "एकचक्रा" नाम की एक बस्ती थी जिसमें सारे ब्राह्मण परिवार बसे हुए थे। पांचों पांडव अपनी माता समेत उस बस्ती में पहुँचे और एक सज्जन ब्राह्मण के घर में आश्रम लेकर उसी के साथ रहने लगे

वह पाँचों भाई भी ब्राह्मणों की भाँति दिन के समय भिक्षा माँगने चले जाते और रात को जब भिक्षाटन से लौटते तो आराम से खाना खाकर सो जाते। कुछ दिन बीतने पर एक दिन जब भीम के अतिरिक्त सभी भाई भिक्षा माँगने गये हुए थे तब माता कुन्ती ने ब्राह्मण के घर में रोने पीटने का शोर सुना तो चकित सी हो उठीं। भीम घर में थे ही इसलिए माता कुन्ती को कुछ विशेष चिन्ता न थी। सो वह ब्राह्मणी के पास गई और उससे पूछा—आपके घर में यह मातम क्यों होरहा है? प्रत्यक्ष रूप से तो मुझे इसका कोई कारण नज़र नहीं आता, आप मुझे बतलायें। यदि हम लोग आपके लिए कुछ कर पाये तो स्वयं को कृतार्थ मानगें।,

इसपर ब्राह्मण की पत्नी ने कहा—बहन आप का हमारे दुःख से दुःखी होना है तो उचित, पर आप लोगों से हमारा संकट टाला नहीं जा सकता। इस बस्ती के लोग वास्तव में बन्दियों का सा जीवन व्यतीत कर रहें हैं। यहाँ से कुछ दूर 'बक नाम का एक राक्षस रहता है। वह प्रतिदिन इस बस्ती के आदमियों को खा जाता था। बस्ती के लोगो ने उसके लिए प्रतिदिन एक आदमी का भोजन बाँध दिया। बारी बारी से हर घर में से एक एक आदमी जाता रहा। दुर्भाग्य से आज हमारे घर की बारी है। हमारी तो समझ में नहीं आता कि

किस को अप्रिय जानकर मरने के लिए भेजें। हे कुन्ती माँ! सारे घर में इसी से कुहराम मचा हुआ है।

कुन्ती बोली—हे देवी! आप चिंतित न हों। मेरे पाँच महाबली पुत्र हैं। उनमें से एक को कुछ फल इत्यादि देकर भेज दूंगी। कितना भी बड़ा राक्षस हो, पर मेरे पुत्रों को नहीं जीत सकता। आज वह राक्षस भी मारा जायेगा। आप हमें इस सेवा का अवसर दीजिये।

तब ब्राह्मण पहले तो तैयार नहीं हुआ क्योंकि वह अपने घर आये अतिथि को मौत के मुंह में नहीं भेजना चाहते थे, लेकिन जब कुंती ने हठ किया और इसका पूरा पूरा आश्वासन दिला दिया कि मेरे पुत्र को कुछ न होगा, तब उन्होंने स्वीकृति दे दी। कुन्ती ने भीम को बुलाया और कहा—महबली भीम! दूसरों का उपकार करने से बड़ा कोई कर्म नहीं है। इसलिए आज जब इस घर पर मौत की चील मंडरा रही है तुम जाकर उस राक्षस को सदा के लिए सुला दो जो इस बस्ती के लोगों को तंग किया करता है।

भीम ने माँ से सब बात सुनी तत्काल जाने को तैयार हो गया। माँ ने कुछ फल इत्यादि भी दिये जो कि उस राक्षस के लिए थे। भीम उस जंगल में पहुँचे और एक पेड़ के नीचे बैठ कर उन्होंने अपने झोले से वह सारे फल निकाले और मजे मजे से खाने लगे। राक्षस ने पेड़ पर से जो यह देखा कि आज जो आदमी उसके लिए आया है वह उसी के भाग के फल खाये जा रहा है तो उसके क्रोध का पारावार न रहा। वह चिंघाड़ता हुआ नीचे आ गया। भीम ने एक नजर राक्षस को देखा और फिर फल खाने में तल्लीन हो गया। राक्षस आग बबूला हो उठा। उसने गरज कर कहा—ओ मानवपुत्र! क्या तुझे नहीं मालूम कि मैं कौन हूँ। इस वन में मुझसे आज्ञा लिये बिना कोई पत्ता तक भी नहीं हिल सकता। तुम कौन धृष्ट इस वन में आगये हो। भीम ने उसकी यह बातें भी अनसुनी कर दीं। वह अपना फल खाता रहा। तब तो राक्षस से रहा नहीं गया। उसने एक पेड़ उखाड़ लिया और भीम को

मारने दौड़ा। वेग से आते हुये राक्षस को देख कर भीम अपने स्थान से हट गया। पेड़ जमीन पर आ रहा। तब तक भीम ने उठ कर राक्षस को दबोच लिया। दोनों के घोर युद्ध के शोर से सारा जंगल आतंकित हो उठा। भीषण युद्ध कुछ ही देर में मल्लयुद्ध में परिवर्तित हो गया। थोड़ा देर तक तो जैसे पृथ्वी भी कांपती रही। तब भीम ने राक्षस को नीचे पटक दिया और उसकी छाती पर चढ़ बैठा। भीम ने उसकी गर्दन को अपनी विशाल बाहों में लपेट लिया और जोर जोर से झटके देकर उसको मृतप्राय कर दिया। जब वह बेहोश सा होने लगा तब भीम ने उसे अपनी दोनों बाहों पर उठा कर इतनी जोर से घुमाया और उठा कर फेंक दिया कि वह नगर के फाटक पर जा गिरा और उसके श्वांस गिरते ही निकल गये। उस जंगल के दूसरे राक्षसों ने जब अपने राजा के इस प्रकार प्राण निकलते देखे तो वह उस जंगल को छोड़ कर भाग खड़े हुये।

भीम उस राक्षस को मार कर जब लौट रहे थे तब उन्हें रास्ते में चारों भाई उन्हें ढूंढते हुए मिल गये। शाम के समय जब चारों भाई घर लौटे थे और उन्हें माँ कुंती ने जब सारी कहानी सुना दी थी तब वह चारों अपने भाई की सहायता करने के लिए जंगल की ओर चल पड़े थे। पर रास्ते में ही उन्होंनें देखा कि भीम विजय के नशे में झूमते से चले आ रहे थे। भ्रातृ प्रेम से वह भीम से लिपट गये। सभी को गले लगाने के बाद भीम और चारों भाई घर में लौट आये।

उधर प्रातः होते ही नगर निवासियों ने जब नगर के फाटक पर राक्षस को मरा पाया, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी। वह सभी ब्राह्मण के घर पर पूछने के लिए आये। पर कुंती ने ब्राह्मण के सभी सदस्यों को मना कर दिया कि वह उनके बारे में किसी को कुछ न बतायें क्योंकि हम गुप्त रहना चाहते हैं। तब ब्राह्मण ने उन लोगों को यही कह कर शांत कर दिया कि राक्षस को मारने का प्रबंध राज्य की तरफ से हुआ था।

घर में तब सभी सुख पूर्वक रहने लगे। सारी बस्ती जैसे प्रसन्नता से खिल उठी थी। ब्राह्मण के घर के सभी लोग पांडवों का बड़ा आदर मानते थे इसलिए वह हर समय उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखते थे।

धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी उत्पत्ति

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! तब कथा इस प्रकार आगे बढ़ती है कि द्रोणाचार्य से परास्त होकर राजा द्रुपद उधर इस भ्रम में पड़ गये कि यदि उनके भी कोई सन्तान होती तो उन्हें एक ब्राह्मण से युद्ध में हारना नहीं पड़ता। सन्तान के मोह में पड़कर वह यात्रा पर निकल खड़े हुए अनेक स्थानों पर घूम घूमकर जब उन्होंने ब्राह्मणों की सेवा की और तीर्थस्थानों के दर्शन किये तब उनकी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन याज्य और उपयाज नाम के दो ब्राह्मणों ने उससे कहा—वर माँग।

राजा द्रुपद बोले—महाराज! पुत्र अभाव से मेरा हिया फटा जा रहा है। मैं द्रोणाचार्य से अपने अपमान का बदला लेना चाहता हूँ आप कृपापूर्वक मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरे मन को शांति हो।

ब्राह्मण बोले—आप दुःखी नहीं होइये। आप हमें अपने राज्य में ले चलिये। हम वचन देते हैं कि हम आप के दुःख दूर कर देंगे।

तब राजा द्रुपद उन दोनों ब्राह्मणों को अपने साथ पांचाल में ले गये। ब्राह्मणों ने वहाँ एक यज्ञ का आयोजन किया जिससे काफी दिनों तक वहाँ धूपदीप, नैवेद्य जलते रहे और तब एक दिन बहुत से विद्वानों की उपस्थिति में यज्ञ समाप्त हुआ। ब्राह्मणों ने हवि, रानी से लेने को कहा। पर चूंकि रानी ने उस समय तक स्नान नहीं किया था इसलिए हवि अग्नि कुंड में अर्पित करदी गई। हवि के गिरते ही अग्नि में से एक वीर तथा शस्त्र विभूषित युवक का प्रादुर्भाव हुआ जिसके तेज को सभी आश्चर्यचकित से देखते

रह गये। ब्राह्मणों ने राजा द्रुपद से कहा–यह लड़का तुम्हारे अपमान का बदला लेगा। राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए।

उसके बाद अग्नि कुंड से एक लड़की की भी उत्पत्ति हुई। तब ब्राह्मणों ने कहा–यह लड़की कौरवों हँसेगी। इस प्रकार राजा द्रुपद पुत्र तथा पुत्री को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र चूंकि शस्त्र धारे हुये उत्पन्न हुआ था इसलिए उसका नाम धृष्टद्युम्न रखा गया और लड़की का रंग चूंकि कृष्ण था इसलिये उसका नाम कृष्णा रखा गया।

पाण्डवों का पांचालगमन

पांडवों को एकचक्रा में उसी ब्राह्मण के आतिथ्य में रहते हुए जब काफी दिन व्यतीत होगये तब एक दिन दूर देश पांचाल की यात्रा करते हुए एक बटोही उधर आ निकला। उसने जब अपनी यात्रा का बर्णन सुनाना शुरू किया तब उसने बातों बातों में पांचाल नरेश द्रुपद की नवयुवती कन्या कृष्णा का भी जिक्र किया और बतलाया कि वह कन्या अत्यन्त रूपवती है और शीघ्र ही उसका स्वयंवर होने जा रहा है। उसके रूप की चर्चा तथा स्वयंवर की बात सुनकर पांडवों के मन में बड़ी उत्कण्ठा पैदा हुई। उन्होंने अपनी माता से कहा। वह पाँचों माता के परम आज्ञाकारी थे। माता ने उनकी उत्कण्ठा जानकर तथा यह सोचकर कि एकचक्रा में रहते हुए बहुत दिन भी हो गये हैं, प्रस्थान करने की अनुमति दे दी।

तभी वहा मुनि वेदव्यास जी भी आ पहुँचे और उन्होने पाँचों पांडवों से कहा कि आप लोग स्वयंवर में अवश्य सम्मिलित होइये। चूँकि द्रुपदकन्या द्रोपदी ने शिव जी की तपस्या करके उनसे पाँच बार अपने लिए सुन्दर पति पाने की इच्छा को प्रगट किया था। इसलिए शिव जी ने उसे पाँच पति मिल जाने का वरदान दे दिया। अब द्रोपदी आप लोगों से ब्याह रचायेगी। पर आप वहाँ पर भी स्वयं को गुप्त ही रखियेगा। व्यास जी इतना कहकर चले गये।

भविष्य की सुन्दर परिकल्पना करते हुए वह रात को ही वहाँ से चल पड़े। पर गंगा नदी को पार करते समय उनके सामने एक संकट आ खड़ा हुआ। रात्रि का समय जान कर वहाँ पर एक गंधर्व ने अपनी प्रेयसी 'कुम्भीनसी' से विहार करने की सोच कर डेरा डाल रखा था। और वह उस समय विहार कर रहा था जब पांडव उस स्थान से गुजरे उनके यहाँ आजाने से उसके विहार में विघ्न पड़ा जिससे अप्रसन्न हो कर उसने उनको युद्ध के लिए ललकार दिया। पांडव भला कब हार मानने वाले थे। भाइयों की आज्ञा से अर्जुन ने भी तत्काल अपना धनुष संभाल लिया। युद्ध छिड़ गया। गंधर्व ने जो बाणों की वर्षा की उसे अर्जुन ने मृगछाला पर रोक लिया और स्वयं एक अग्निबाण छोड़ा। पहले ही बाण से गंधर्व चित्ररथ का खूबसूरत रथ जलने लगा। इससे व्याकुल हो कर चित्ररथ ने अपने शस्त्र डाल दिये। अर्जुन ने उसे बाँधा और माँ कुंती के चरणों में डाल दिया। माता कुंती बहुत दयालु थीं। उन्होंने उसे क्षमादान दे दिया। प्रसन्न हो कर गंधर्व चित्ररथ ने चाक्षुषी' नाम की विद्या दी जिसके बल पर वह कभी भी आकाश में उड़ सकते थे। गंधर्व चित्ररथ ने दूसरे पांडवो को भी सौ सौ घोड़े देने चाहे पर उन्होंने वह सब नहीं लिये। कह दिया जब आवश्कता होगी तब ले लेंगे। चित्ररथ ने अर्जुन को एक अग्नि अस्त्र भी दिया जिससे अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए।

अब चित्ररथ से विदा हो कर पांडव वहाँ से चल पड़े और गंगा के पार उत्कोचकों तीर्थ पर महात्मा धौम्य के आश्रम में पहुँच गये। धौम्य ऋषि की उन्होंने बहुत सेवा की जिससे प्रसन्न हो कर उन्होंने पांडवों का पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया और तब वह सब लोग पांचाल देश की तरफ चल पड़े।

शीघ्र ही जब वह पांचाल देश में पहुँचे तो मुनि व्यास जी के आदेशानुसार एक कुम्हार के घर निवास किया और ब्राह्मणों के से ही वेष में रह कर स्वयंवर के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

द्रौपदी स्वयंवर

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! उस दिन सारे पांचाल में स्वयंवर का बड़ा आयोजन हो रहा था। जगह जगह केवड़े के तथा गुलाब जल के छिड़काव हो रहे थे और बन्दनवारों से सारे रास्तों को सजाया जा रहा था। जगमग जगमग करते दीपकों से लगता था जैसे किसी ने आसमान के सितारे तोड़ कर रख दिये हैं। सुगंधि और संगीत की लहरियाँ इस प्रकार सारे वातावरण में व्याप्त हो गई थी जैसे होली का गुलाल सारे वातावरण में छा जाता है।

लोगों की भीड़ की भीड़ स्वयंवर मंडप की ओर तेज़ तेज़ भागे जा रही थी। सभी बहुत व्यस्त थे। सभी ने नये नये कपड़े पहन रखे थे। शीघ्र ही सारा स्वयंवर मंडप लोगों की भीड़ से सम्पूर्ण भर गया। हर कोई यथास्थान पर बैठ गया। दूर दूर से राजे महाराजे अपने अपने लश्कर के साथ आकर वहाँ विराजमान हो चुके थे। दूर्योधन भी अपने पक्षपातियों समेत वहाँ पर बैठे हुए थे पांडव नीचे के आसनों पर ब्राह्मणों के साथ ब्राह्मणों के वेष में बैठे हुए थे।

जब सभी आगये तब राजा द्रुपद भी अपनी पुत्री द्रोपदी तथा पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ सभामंडप में आ गये। तुरही बजने लगी और नक्कारों पर चोटें पड़ने लगीं। ढोलों और दमाकों की अवाज ने समां ही बाँध दिया। तब राजा द्रुपद की आज्ञा से उनके पुत्र धृष्टद्युम्न ने खड़े हो कर स्वयंवर की शर्त पढ़ कर इस प्रकार से सुनाई।

हे सभासदो ! आज आप लोगों में बड़े बड़े महाबली बैठे हैं। आज का दिन आप सबके लिए परीक्षा का है। जो भी व्यक्ति आप लोगों में से इस सामने वाले जल-कुंड में देख कर ऊपर घूमते चक्र में टंगी मछली को अपने बाण से बेध देगा वह द्रोपदी को पाने का अधिकारी होगा।

ऐसा सुनकर कई वीरों की भुजाएँ फड़कने लगीं। पर यथासमय पूजा

इत्यादि से मुक्त होकर राजा द्रुपद ने संकेत किया और जलकुण्ड के निकट पड़े धनुष पर से कपड़ा हटा दिया गया।

कई राजे तो धनुष का आकार देखकर ही हार मान बैठे। धनुष यज्ञ शुरू हो हुआ। बड़े बड़े राजे अपनी बाहों को तोलते हुए वहाँ जाते और अपनी पूरी शक्ति से भी धनुष को हिला नहीं पाते। यदि कोई राजा धनुष उठा भी लेता जलकुण्ड में देखकर बाण चलाने में असमर्थ रहता और दूसरों की हँसी का पात्र बनता। इस प्रकार मंडप के सभी राजा अपने अपने स्थान से उठे और धनुष पर अपना बल आजमा कर निराश से अपने अपने आसनों पर आ बैठे। जब सभी को इस प्रकार असफल होते देखा तो द्रुपद चिंतित होने लगे। उन्होंने पांडवों की वीरता स्वयं अपनी आँखों से भी रखी रखी थी और उनकी कीर्ति भी यशेष्ट सुनी थी इस लिए उन्होंने उन्हें भी देख कौरवों के साथ निमंत्रण भेजा था लेकिन उन्हें मंडप में न देख कर वह भी निराश से होने लगे। तभी सबने देखा कि मंडप के मध्य में कर्ण कूद कर आ गये। उन्होंने बहुत सरलता से धनुष को उठा लिया। सभी जानते थे कि वह सफल होजायेंगे जब वह उस चक्र के नीचे पहुँचे तब सहसा ही द्रौपदी ने जोर से आवाज में कहा—

मैं सूत पुत्र से विवाह नहीं करूंगी। पल को सारी सभा में सन्नाटा छा गया। पर बात यह सच थी। कर्ण को सर झुकाये वापिस लौटना पड़ा।

अब ब्राह्मणों की पंक्ति में से अर्जुन अपने स्थान से उठे और धनुष की ओर बढ़ने लगे। उस सुकुमार से नवयुवक को देखकर कई राजे आश्चर्य चकित हुए। बड़े ब्राह्मणों ने मन में सोचा कि यह छोकरा आज ब्राह्मणों का अपमान कराके मानेगा।

पर अर्जुन जब धनुष को सरलतापूर्वक उठाकर जल-कुण्ड में देखते हुए निशान लगाने लगे तो सभी स्तम्भित रह गये। अर्जुन ने बाण छोड़ा और मछली कटकर नीचे आ गिरी। ब्राह्मण पुत्र की इस विजय पर जयजयकार

होने लगी शहनाइयाँ बजने लगीं। नक्कारों पर चोटें पड़ने लगीं और इस सब शोर में द्रौपदी ने आगे बढ़कर अर्जुन के गले में वरमाला डाल दी।

विवाह में युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! मानव स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। मंडप के सभी राजाओं ने जब सुकुमारी द्रौपदी को अपने हाथ से जाते देखा तो उन्होंने बड़ी वितृष्णा उत्पन्न हुई। तब उन्होंने मिलीभगत करके उस सुकुमारी को छीनने का षड्यंत्र रचा। उन्होंने राजा द्रुपद से कहा— ऐसा कभी नहीं हो सकता कि क्षत्रियों के होते हुए कोई ब्राह्मण क्षत्रिय की सुपुत्री को लेजाये। द्रुपद उनकी इस बात पर चुप रहे, पर वह सब मिलकर राजा द्रुपद को ही समाप्त करने की सोचने लगे।

जब अर्जुन ने उन लोगों के ऐसे तेवर देखे तो वह द्रुपद की तरफ से उन सभी राजाओं से लड़ने को तत्पर हो गये। उन्होंने राजा द्रुपद को सांत्वना दी और कहा कि घबराने की कोई बात नहीं। इन कायरों के लिए तो मैं अकेला काफी हूँ। इतना कहकर अर्जुन ने अपना धनुष बाण संधान लिया। शेष चार भाइयों ने भी अर्जुन की सहायता करनी चाही पर अर्जुन ने उन्हें रोक दिया।

पल भर में ही घमासान युद्ध छिड़ गया। अर्जुन महाबली थे। उन्होंने शीघ्र ही युयुत्म, वायुवेग, भीमवेग, चित्रसेन तथा सुवर्चा इत्यादि राजाओं को परास्त कर दिया। तब अर्जुन के रण कौशल को देखकर कर्ण उनके सामने आ गया।

संयोग से उस स्वयंवर में द्वारका से श्रीकृष्ण और भैया बलराम भी आये हुए थे। वह यह सब तमाशा देख रहे थे। जब उन्होंने कर्ण और अर्जुन का सामना होते देखा तो वह समझ गये कि आज कुछ अनर्थ जरूर हो कर रहेगा। अनिष्ट होने की आशंका जानकर तब श्रीकृष्ण अपने आसन से उठ कर उन दोनों के मध्य जा खड़े हुए और ऊंची आवाज़ में बोले—अरे क्षत्रियो इस ब्राह्मण ने इस लड़की को स्वयंवर में अपने बाहुबल से जीता है। अब

आप लोगों की छाती पर साँप क्यों लोटता है। यह अधर्म है। आप इस युद्ध को रोकिये और अपने अपने घरों को लौट जाइये।

कृष्ण के ऐसे वाक्य सुन कर सभी शांत हो गये और अपने अपने घरों को चले गये। तब पांचों पांडव भी द्रौपदी को साथ लेकर कुम्हार के घर लौट आये। वह द्वार अन्दर से बन्द था। अर्जुन ने द्वार खटखटाते हुए कहा कि मां जरा द्वार तो खोल! देख हम आज कैसे प्रसाद को ले आये हैं।

मां कुंती अन्दर व्यस्त थीं। उन्होंने वहीं से उत्तर दिया—सभी बांट करखालो।

मां की इस उक्ति से सभी भाई धर्म संकट में पड़ गये। द्वार खोल कर जब कुंती ने द्रौपदी को देखा तो वह भी बड़ी चिंतित हुईं। अब क्या हो? सभी साचने लगे। दो भाइयों ने यह कहा कि विवाह अर्जुन के साथ ही होना चाहिये क्यों कि उन्होंने ही उसे स्वयंवर में विजित किया है। पर सभी को इस बात की चिंता भी थी कि इससे मां कुंती का आशीर्वाद व्यर्थ चला जायेगा। जब वह इसी चिंता में थे तब मंडप में से श्रीकृष्णचन्द्र उन पांचों भाइयों को ढूंढते हुए उन के उसी घर में आगये। उनके स्वागत सत्कार के पश्चात् पांडवों ने उनके सामने अपनी समस्या रखी। उन्होंने कहा कि आप प्रगट रूप से तो अर्जुन के साथ ही द्रौपदी का पाणिग्रहण संस्कार करा दीजिये, लेकिन मौन रूप से पांचों भाइयों का विवाह द्रौपदी से हो जायेगा। यह समाधान पांडवों को बहुत पसन्द आया। तब कृष्णजी चले गये। उनके जाते ही द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न भी उन्हें खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। उनका भी स्वागत सत्कार किया गया। एकांत जा कर द्रौपदी ने अपने भाई से यह कह दिया कि यह तो ब्राह्मण नहीं पांच पांडव हैं। सुन कर धृष्टद्युम्न को बड़ा हर्ष हुआ।

यह समाचार जब राजा द्रुपद को मिला तो वह भी बड़े हर्षित हुए। उन्होंने दूसरे दिन प्रातः ही उन लोगों को दरबार में बुलवा भेजा। पर उनके

सामने भी भाइयों ने यही कहा कि वह द्रौपदी के साथ विवाह तभी करेंगे जब आप इस बात पर सहमत हो जायेंगे कि पांचों भाइयों के साथ द्रौपदी का विवाह करदेंगे। राजा द्रुपद बोले—ऐसा नहीं हो सकता। पर तभी उधर से व्यास जी आ निकले। उन्होंने राजा द्रुपद को समझाया और द्रौपदी के शंकर जी से पाँच बार सुन्दर पति माँगने वाली बात कही और कहा कि इन पाँचों का द्रौपदी के साथ विवाह कर देने में कोई हानि नहीं है। आप द्रौपदी का विवाह इन से कर दें।

यह कह कर व्यास जी चले गये। तब राजा द्रुपद ने उनके साथ अपनी बेटी का विवाह करने में कोई आपत्ति न जानी और आयोजन करने का आदेश दे दिया।

सारे नगर में आतिशबाज़ी छोड़ी गई। जगह जगह खेल तमाशे किये गये। हर जगह पांडवों का बड़ा सत्कार हुआ। राजा द्रुपद ने उनको अपने राज्यमहल में ठहराया। कुंती को तथा उनको खूब बढ़िया २ वस्त्र तथा आभूषणों से अलंकृत किया गया। उस अपूर्व समारोह से सारे नगर में आनन्द की लहर लहरा उठी। यथोचित समय पर द्रौपदी का पांचों पांडवों से विवाह हो गया। दहेज में राजा द्रुपद ने उन्हें बहुत सा सामान दिया। उस समय माता कुंती की प्रसन्नता का पारावार न रहा जब पांचों भाइयों को उसने दूल्हे बने देखा।

इन्द्रप्रस्थ-निवास

शीघ्र ही यह समाचार सब जगह फैल गया कि पांडव लाक्षागृह में जले नहीं हैं, वह अभी जीवित हैं। यह समाचार जब कौरवों को मिला तो उनके पांवों तले से धरती निकल गई। उन्होंने अपनी तरफ से बड़ा आयाजन किया था लेकिन पांडवों बाल बाल बचे तो बचे, साथ ही उन्होंने द्रुपद कन्या द्रौपदी से विवाह भी कर लिया था जिससे उनके मन में ईर्ष्या सर उठाकर खड़ी होगई।

वह सब एक स्थान पर एकत्र हुए और दोबारा पांडवों के विनाश का उपाय सोचने लगे। बहुत देर तक सोच विचार करते रहे। पर कोई भी षड्यंत्र उनकी समझ में नहीं आया।

उधर जब समय हो गया तो द्रुपद ने बहुत सी सेना के साथ पांडवों को विदा किया। सभी पांडव अपनी माता तथा लश्कर के साथ हस्तिनापुर के लिए चल पड़े। पांडव हस्तिनापुर आ रहे हैं, यह जानकर कौरवों की और भी क्रोध आया। उन्होंने एक षड्यंत्र सोचा जिसके अनुसार वह रास्ते में ही पांडवों को समाप्त कर देते। पर किसी प्रकार उनके षड्यन्त्र की खबर भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य को मिल गई। वह तत्काल धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और उसे समझाया। पहले तो वह माना नहीं पर जब पितामह ने यह कहा कि इस शत्रुता से तुम्हारे अपने ही कुल का नाश हो जायेगा तब उसे भी चिंता हुई और उसने अपने सभी बेटों को बुलवा भेजा। कौरव जब धृतराष्ट्र के सामने उपस्थित हुए तब धृतराष्ट्र ने उनसे कहा कि आप यह षड्यन्त्र करने का विचार त्यागिये और अपने भाइयों से शत्रुता मोल नहीं लीजिये। इस राज्य में जितना भाग आपका है उतना उनका भी है। इसलिए आप उनका भाग उन्हें दे दीजिये और राज्य की अशान्ति फैलाने का उपाय नहीं कीजिए। कौरवराज दुर्योधन ने क्रोध से अपने बाप से कहा-हे पित! किसने आपको यह उल्टी पट्टी पढ़ाई है, शत्रुओं से भी कभी मित्रता का हाथ बढ़ाया जाता है, उन्हें तो सांप की तरह पांव के तले कुचल देना चाहिये, यही राजनीति होती है।

तभी विदुर ने दुर्योधन को उत्तर दिया—हे कुरुराज! राजनीति का यह सिद्धान्त नहीं है। राजनीति में प्रमुख बात यह है कि जिस शत्रु का आप नष्ट करना चाहते हैं उसे अपना मित्र बना लीजिये, या यूं कि शत्रु को नष्ट करने का सरलतम उपाय यह है कि उसे मित्र बना लिया जाये।

दुर्योधन को इस पर और भी क्रोध आया। कर्ण ने भी उसका साथ दिया। धृतराष्ट्र बोले—बेटा मैं जानता हूँ कि आप लोग वीर हैं पर अपनों से लड़ना अपनी ही शक्ति का क्षय करना है। इसलिए आप लोग उन्हें कुछ भूमि देकर सन्तुष्ट कीजिये और सबसे बड़ी बात यह है कि राज्य में अशान्ति फैलाने से बचाइये।

तब कर्ण और दुर्योधन ने एकांत में जाकर परामर्श किया और यह निश्चिय हुआ कि हस्तिनापुर के उत्तर में जो बंजर भूमि है वह पांडवों को दे दी जाये। तब उन्हों ने अपने बाप तथा दूसरे गुरुजनों से भी कह दिया कि ठीक है, हम पांडवों को उनका भाग देने को तैयार हैं।

तब उनकी ऐसी घोषणा सुनकर सारे नगर में पांडवों के स्वागत का आयोजन किया जाने लगा। जब पांडव नगर के द्वार पर पहुँचे तो उनके स्वागत के लिए कृपाचार्य तथा दूसरे विद्वद्जन खड़े हुए थे जो उन्हें अपने साथ राजभवन में ले आये। उनके स्वागत में एक बड़ा समारोह हुआ और प्रीति-भोज दिया गया।

तब कुछ दिन वहीं राजभवन में रहकर पांडवों ने सुख भोगा और फिर कौरवों ने उन्हें उनके भाग में आयी हुई बंजर भूमि को उन्हें सौंप दिया। पांडव खांडवप्रस्थ के उस बंजर क्षेत्र में चले गये। पांचाल से पांडवों के साथ श्री कृष्ण भी आये थे। इसलिए जब पांडवों को उनके भाग की भूमि दे दी गई तो वह भी उनके साथ खांडवप्रस्थ चले गये।

कौरवों की इस चाल से पांडवों ने हार नहीं मानी। उन्हों ने खांडव-प्रस्थ की बंजर भूमि पर परिश्रम किया और वह परती जमीन कुछ ही दिनों में लहलहाने लगी। तब पांडवों ने वहाँ पर एक खूबसूरत नगर इन्द्रप्रस्थ नाम से बसाया और सुखपूर्वक उसमें रहने लगे। उस नगर में और देशों से भी कई लोग आकर बस गये और शीघ्र ही वह नगर अच्छे नगरों में गिना जाने लगा। उस सारे भाग पर पाण्डवों का राज्य होगया।

अर्जुन निर्वासन

पाण्डवों के धर्म पूर्वक राज्य करने से कौरवों के देश में से भी सैंकड़ों नागरिक वहाँ आकर इन्द्रप्रस्थ में बस गये। जिन दिनों पांडव इन्द्रप्रस्थ का राज्य बड़ी योग्यता से चला रहे थे उन्हीं दिनों वहाँ नारद जी आये। उनका बहुत आदर सत्कार हुआ। जब उन्हें पता चला कि पांचों पांडव की एक ही पत्नी है तो उन्होंने उनसे पूछा कि इससे तो आपको बहुत कष्ट होता होगा। एक स्त्री के होने से पांच पुरुषों में कहीं द्वेषभाव न उत्पन्न हो जाये, इस लिए आपलोग एक उपाय कीजिये। पांडवों ने पूछा—क्या? तब नारद जी ने कहा कि आप लोग एक वर्ष के पांच भाग बना लीजिये। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी अवधि बांट ले और उसके अनुसार द्रौपदी के पास रहे और विहार करे। यह युक्ति सभी पांडवों को बहुत पसन्द आई। नारद जी के जाने के बाद वह उसी प्रकार रहने लगे। नारद जी ने जाते समय उन्हें यह भी बता दिया था कि पांचों में से यदि कोई प्रतिज्ञा भंग करे और दूसरे के विहार करने के समय भवन में चला जाये, तो उसे दंड स्वरूप बारह वर्ष की तीर्थ यात्रा पर भेज दिया जाये।

काफी दिन तक वह उसी नियम में सुखपूर्वक रहते रहे। पर होनी बहुत प्रबल है। एक दिन जब युधिष्ठिर अन्दर भवन में द्रौपदी के साथ विहार कर रहे थे उस समय अकस्मात् बाहर अर्जुन के पास एक ब्राह्मण आया और उनसे कहने लगा कि मेरी गाओं को दो चोर लेकर भागे जा रहे हैं, मैं आपकी प्रजा हूँ। आप मुझे बचाइये। तब अर्जुन अनजाने में अन्दर भवन से अपने शस्त्र निकालने चले गये। उस समय तो युधिष्ठिर ने कुछ न कहा पर जब वह चोरों को मार कर लौटा तो भी युधिष्ठिर ने परिस्थिति को समझते हुए अर्जुन से कुछ नहीं कहा। पर अर्जुन स्वयं बड़े धार्मिक थे। उन्होंने भाइयों और मां से कहा कि वह बारह वर्ष तक की तीर्थयात्रा पर जायेंगे। सभी ने

उन्हें रोका, पर वह माने नहीं। शुभ मुहूर्त देखकर वह तीर्थयात्रा के लिए चल पड़े। उनके गमन पर सभी नगरनिवासी रो रहे थे। पर वह बिना हिचकिचाये सब कुछ छोड़ कर चले गये।

तीर्थभ्रमण

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन ! अर्जुन जब विभिन्न तीर्थों सेहोता हुआ हरिद्वार पहुँचा तो उसके साथ वहां नहाते समय एक विचित्र घटना घटित हुई। नहाने के लिए वह ज्यों ही गहरे पानीमें गये कि उन्हें एक नागकन्या जिसका नाम उलूपी था खींच कर पाताल लोक में ले गई। वहाँ उसने अर्जुन से गंधर्व विवाह कर लिया। कुछ दिन वहां रहने से उलूपी से जब एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसका नाम इरावान रखा गया, तब अर्जुन ने वहां से जाने की अनुमति मांगी। उलूपी अर्जुन को गंगा तट पर दोबारा पहुँचा गई।

हरिद्वार से चल कर अर्जुन पहले तो पहाड़ी प्रदेश में घूमते रहे फिर वह मणिपुर गये। मणिपुर के राजा की एक सुयोग्य कन्या थी। जिसका नाम चित्रांगदा था। चित्रांगदा ने एक दिन अर्जुन को बाग में घूमते देखा तो अपना दिल हार बैठी। चित्रांगदा की स्थिति समझ कर उसके बाप ने अर्जुन से कहा कि वह उसकी बेटी से शादी कर ले। अर्जुन ने उससे विवाह कर लिया। प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन वहीं रहने लगे। तीन वर्ष बीत गये। चित्रांगदा के घर भी एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था जिसका नाम बभ्रुवाहन रखा गया। अब अर्जुन ने उन लोगों से भी एक दिन विदा ली और सौभद्र नामक तीर्थस्थान पर जा पहुँचे। वहां एक बहुत बड़ा सरोवर था। अर्जुन उसमे नहाने के लिए नीचे उतरे। पर उसमें इन्द्र की एक अप्सरा एक ऋषि द्वारा शापित मगरमच्छ बन के उसमें रहती थी। उसने अर्जुन का पांव पकड़ लिया और विनती की कि वह उसे इस शाप से मुक्ति दिलाये। तब अर्जुन

उसे पानी से बाहर खींच लिया। पानी से बाहर आते ही वह मगरमच्छ एक सुन्दर युवती बन गया। इस की विनती पर अर्जुन ने उसकी दूसरी सहेलियों को भी छुड़ा दिया जिस से वह सब उस का धन्यवाद करती हुई खुश खुश चली गईं। अर्जुन उन्हें आकाश में उड़ कर जाते देखता रहा।

सुभद्रा से ब्याह

हे राजन्! वैशम्पायन जी बोले—तब अर्जुन घूमता फिरता एक दिन द्वारका के निकट प्रभास क्षेत्र में आ निकले। उन दिनों वहां एक मेला लगा हुआ था। समस्त चन्द्रवंशी श्रीकृष्ण जी के साथ वहां आये हुए थे। श्रीकृष्ण से अकस्मात् अर्जुन की भेंट हो गई। श्रीकृष्ण जी अर्जुन को अपने डेरे पर लिवा ले गये। अर्जुन का बड़ा सत्कार हुआ। अर्जुन खुशी खुशी वहां रहने लगे। पर एक दिन क्या हुआ कि श्रीकृष्ण की मुँह बोली बहन सुभद्रा कहीं अर्जुन के सामने पड़ गई। दोनों ने एक दूसरे को देखा और पसन्द कर लिया। अर्जुन जब रात को डेरे पर लौटे तो उन्होंने कृष्ण जी से कहा कि हम तो सुभद्रा से ब्याह करना चाहते हैं। कृष्ण जी बोले—ऐसा होना तो कठिन है। कारण बलराम ने सुभद्रा का विवाह कौरवराज दुर्योधन से तय कर दिया है। अर्जुन बोले—हम तो सुभद्रा से विवाह अवश्य करेंगे, चाहे हमें उसे हरण करके लेजाना पड़े। कृष्ण चुप होरहे।

उसी रात अर्जुन ने सुभद्रा को अपने रथ पर बिठाया और हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। सुबह जब यदुवंशियों को पता चला तो वह अर्जुन से घमासान युद्ध की तैयारी करके अर्जुन के पीछे चल पड़े। पर उस समय कृष्ण ने उन्हें समझाया कि जो हो गया सो होग या। अब हुए हुए को वापस नहीं किया जा सकता। अब तो यही उचित है कि आप लोग अर्जुन को वापिस बुला लें और सुभद्रा का विवाह उसी से करदें। कृष्ण जी के ऐसा कहने पर सभी यदुवंशियों ने समझ लिया कि यह सबकुछ इन्हीं के संकेत पर हुआ है। इसीलिए वह सब चुप हो रहे।

तब एक दूत तीव्रगामी रथ पर जाकर अर्जुन को वापिस बुला लाया और एक शुभ मुहूर्त में उन दोनों का--सुभद्रा तथा अर्जुन का--पाणिग्रहण संस्कार करा दिया गया।

अर्जुन की वापसी तथा अभिमन्यु का जन्म

अंत में बारह वर्ष समाप्त हुए। अर्जन ने द्वारका से विदा ली। श्री कृष्ण ने सहस्रों घोड़े तथा हाथी लश्कर समेत सुभद्रा को भी अर्जुन के साथ कर दिया। अर्जुन जब इन्द्रप्रस्थ लौटे तो इनका बड़ा स्वागत हुआ। चारों भाई इनके गले मिले। माता कुन्ती की आंखों में आंसू भर आये। सारा नगर उत्साह में डूब गया।

इन्द्रप्रस्थ में फिर काफी समय जब बीत गया तब अर्जुन को सुभद्रा से एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम अभिमन्यु रक्खा गया। यह बालक अत्यंत तेजवान तथा होनहार था। बहुत शीघ्र उसने सभी विद्याओं में कुशलता तथा दक्षता प्राप्त कर ली।

समयानुसार शेष चारों भाइयों के घर भी द्रोपदी से चार पुत्र जनमे। जिनके नाम--युधिष्टिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से सुतसोम, नकुल से शहतानीक तथा सहदेव से श्रुतसेन हुए। काफी समय पश्चात् अर्जुन से भी द्रोपदी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम श्रुतिकर्मा पड़ा। पांचों बालक अत्यंत कुशाग्र बुद्धि थे।

कई वर्ष पश्चात् एक दिन श्री कृष्ण जी अर्जुन से तथा अपनी बहन सुभद्रा से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ आये। युधिष्ठिर ने उनका बड़ा सम्मान किया सारा सारा दिन अर्जुन और कृष्ण जङ्गलों में घूमते रहते और आनन्द मनाते

खाण्डव वन दहन

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! इससे आगे की कथा इस प्रकार कि प्रतिदिन की भांति एक दिन अर्जुन और श्री कृष्ण वनों में घूम रहे

कि उन के सामने साक्षात अग्नि देव एक ब्राह्मण का भेष भर के आये और कहा–हे योद्धाओ! हम भूखे हैं। हमारा उद्धार करो। कृष्ण बोले–आप जो कहें सो प्रस्तुत किया जाये। वह ब्राह्मण बोले–हम अग्नि देव हैं। हमारी भूख मनुष्यों की भूख नहीं है कि थोड़ा सा भोजन पाने से शांत हो जाये। यदि आप वादा करें तो हम कहें।

श्री कृष्ण जी के वादा करने पर अग्निदेव दोबारा बोले–हम खाण्डव वन को जलाना चाहते हैं। पर जब जब हम यह प्रयास करते हैं, इन्द्रदेव हमें असफल बना छोड़ते हैं। इसलिये आप लोग कोई ऐसा उपाय कीजिए कि इन्द्र अपने प्रयास में सफल न हो पाये। तब कृष्ण जी ने कहा कि हमारे मित्र अति बलवान हैं। आप यदि कोई अच्छा सा अस्त्र लाकर दे दें तो इन्द्र को असफल कर सकते हैं। तब अग्निदेव ने वरुण से माँग कर अर्जुन को गाण्डीव धनुष और दो ऐसे तरकस दिये जो कभी भी बाणों से खाली नहीं होते थे। अग्निदेव ने उन्हें एक कपिध्वज नाम का रथ भी दिया, जो हवा से भी तेज चलता था।

रथ में बैठ कर कृष्ण जी ने अग्निदेव को आज्ञा दे दी कि जाकर खाण्डव वन जला दो और अपनी क्षुधा शांत करो।

पल भर में ही अग्निदेव खाण्डव वन को भस्म करके अपने पेट की आग बुझाने लगा। सारे जंगल में हा हा कार मच गया। आकाश में जब देवताओं के घरों में भी उस जंगल का धुआं पहुँचने लगा तो उन्हों ने इन्द्र से प्रार्थना की। इन्द्र पानी बरसाने लगा। पर अर्जुन ने बाणों की छत बना कर पानी रोक दिया। धीरेधीरे सारा जंगल जल गया। जंगल के सारे वनचर भस्मीभूत हो गये। लेकिन कृष्ण जी की विनती पर उस वन में से सात प्राणी सही सलामत निकल आये। क्रमशः जिनके नाम यूं हैं––चनचेरा पक्षी के चार बेटे, तक्षक सर्प, अश्वसेस और मय दानव, जो कि प्रसिद्ध शिल्पी था।

जब सारा जंगल जल गया और पानी की एक बूंद भी नीचे न टपक पाई तो इन्द्र प्रसन्न होकर स्वयं को उनके सामने प्रगट हुए और कहा कि मैं आप लोगों से बहुत खुश हूँ। आप लोग बहुत कुशल हैं।

अर्जुन ने कहा—हे देवराज! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं तो कोई ऐसा सम्पूर्ण अस्त्र हमें प्रदान कीजिये, जिसका वार कभी खाली न जाता हो।

इन्द्र ने कहा—इसके लिए आप शिवजी की तपस्या कीजिये। वह यदि प्रसन्न होगये तो ऐसा अस्त्र आपको मिल जायेगा। यह कह कर इन्द्र लोप हो गये।

इति आदि पर्व समाप्त

सभा पर्व

सभा-भवन का निर्माण

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! अब मैं तुमसे इसके आगे का कथा कहता हूँ। तुम मन लगा कर सुनो।

जब सारा खांडब वन जल गया और बचे हुए सात प्राणी भी जाने को उद्यत नज़र आने लगे तब कुशल शिल्पी मयदानब ने आगे बढ़ कर अर्जन से कहा—हे अर्जुन! आपने मेरे प्राणों की रक्षा की है, इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ! पर आप मुझ सेवक को भी अपने योग्य कोई कार्य बतावें ताकि मैं स्वयं को कृतकृत्य करूँ। अर्जुन ने कहा—तुम खुशी रहो, यही मेरे लिए काफी है। अब मैं आपसे कोई भी काम क्या बताऊँ जब कि मेरा कोई काम है ही नहीं। इसलिए आप सानन्द अपने घर जाइय और सुख भोगिये। पर शिल्पी अड़ा रहा। अन्त में श्री कृष्ण के कहने पर अर्ज़ुन ने कहा कि चलिए आप हमारे लिए कोई अपूर्व भवन ऐसा तैयार कर दीजिए कि जिसे देखकर लोग दाँतों तले उँगली दबावें। मयदानव ने कहा—यह मेरा सौभाग्य है कि आपन मुझे सेवा करने का अवसर दिया है। अब मैं आपको एक अत्यंत सुन्दर भवन बनाकर दिखाता हूँ जिसे आप निर्शचत रूप से पसन्द करेंगे।

तब मयदानव एक बड़ी जमीन को घेरकर भवन निर्माण में जुट गया। कैलाश पर्वत के निकट बिन्दुसर नामक सरोवर से वह कई प्रकार के रत्न इत्यादि तथा दूसरे हीरे जवाहरात ले आया और उन्हें उसने भवन में जड़ दिया, जिससे भवन की शोभा द्विगुणित हो गई। संगमरमर पर उसने ऐसी कारीगरी दिखाई थी कि जहाँ रास्ता बन्द होता था वहाँ द्वार दिखाई पड़ता था और जहाँ द्वार होता था वहाँ रास्ता बन्द नजर आता था। थल जल दिखता था और जल थल होता था।

जिन दिनों वह भवन निर्माण में लगा था उन्हीं दिनों श्री कृष्ण जी ने द्वारका लौट जाने की इच्छा प्रगट की और पांडवों से विदा माँगी। कृष्ण जी की इच्छा जान कर युधिष्ठिर ने उनके जाने का प्रबन्ध शीघ्र ही करा दिया। प्रेमवश युधिष्ठिर स्वयं उनके सारथी बनकर उन्हें नगर के बाहर तक छोड़ने गये। नगर के सभी नर नारी व्याकुल से कृष्ण के पीछे ही पीछे चलने लगे। नगर के बाहर पहुँचकर कृष्ण ने युधिष्ठिर समेत सभी ग्रामवासियों को विदा किया और स्वयं रथ चलाते हुये आगे निकल गये।

जब युधिष्ठिर इत्यादि घर लौटे, तब मयदानव फिर आवश्यक सामग्री लेने के लिए बिन्दुसर गया हुआ था। वहाँ से वह इस बार आवश्यक सामग्री के साथ वृषपर्व की रखी हुई गदा और वरुण का शंख भी ले आया। गदा उसने भीम को दे दी और शंख अर्जुन को। इसके पश्चात् वह चौदह मास तक निरंतर उस भवन के निर्माण काम में लगा रहा। जब सभाभवन तैयार हो गया तो उसने युधिष्ठिर इत्यादि को उसके देखने का निमंत्रण दिया। सभाभवन का नाम "विमानप्रतिम" रखा गया।

मयदानव का निमंत्रण पाकर युधिष्ठिर ने एक दिन सभी राजाओं को बुला भेजा कि आकर हमारा सभाभवन देख जाओ। जब सभी लोग आ गये तब एक शुभ मुहूर्त देखकर सभी सभाभवन के द्वार पर पहुँचे। बहुत बड़े प्रवेश द्वार देखकर सभी चकित रह गये। मयदानव ने इस सभा भवन

की निगरानी के लिए एक सहस्र राक्षस तथा राक्षसनियाँ भी नियुक्त कर दी थीं, जो कि उस समय सर झुका कर निवेदन करती सी खड़ी हुई थीं। ऊँचे मेहराब और रंगबिरंगे चित्रों की छटा देखते ही बनती थी। छतों पर विचित्र मीनाकारी की गई थी। वह मीनाकारी ऐसी थी कि जैसे तारों भरा आसमान हो। सारा सभाभवन देखकर युधिष्ठिर भवन में बने दरबार के अन्दर अपने सिंहासन पर आ बैठे। दूसरे सभासदों ने भी यथोचित आसन ग्रहण किया और इस प्रकार राज्य कार्य शुरू हुआ।

देवर्षि नारद का आगमन

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! इसके आगे की कथा इस प्रकार है कि जब वहाँ सभाभवन में युधिष्ठिर दरबार लगाये बैठे थे तभी देवर्षि नारद का वहाँ आगमन हुआ। नारद जी को देखकर युधिष्ठिर अपने स्थान से उठ खड़े हुए। उन्होंने नारद जी का पादार्चन किया और उन्हें अपने निकट आसन दिया। नारद जी ने सारे सभाभवन पर दृष्टि डाली और युधिष्ठिर से बोले—हे राजन् तुम बड़े भाग्यशाली हो। जैसा सुन्दर सभाभवन तुम्हारा है ऐसे भवन सारे संसार में कुल पहले पाँच थे। अब एक तुम्हारा और हो गया। पाँच में से भी साधारण आदमी केवल एक देख सकता है। और वह भी बहुत जप तप के बाद। वह भवन है इन्द्र का। वहाँ की सुन्दरता अवर्णनीय है। शेष चार यमराज, वरुण, कुबेर, तथा ब्रह्मा के भवनों में तो मर्त्य लोक का प्राणी जा ही नहीं सकता। इसलिये हे राजन् मर्त्य लोक में ही तुमने यह सुन्दर भवन बनवाकर बहुत शुभ काम किया है। इस भवन ने तो स्वर्ग के महत्त्व को भी कम कर दिया है। मैं स्वर्ग से ही आ रहा हूँ। वहाँ मैं पांडु जी से मिला था। उनकी तथा मेरी यही इच्छा है कि तुम सभी यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करो और अपनी कीर्ति को अक्षुण्ण कर दो। तुम्हारे भाई भी वीर पुरुष हैं। तुम्हारे लिए यह कार्य कठिन भी नहीं है अपने मन्त्रियों से सहायता लेकर किसी शुभ मुहूर्त में यज्ञ समाप्त कर डालो।

अब मुझे आज्ञा दो। मैं चलता हूँ। मैं तो एकमात्र तुम्हें यह संदेश देने आया था इनता कह कर नारद जी चले गये।

यज्ञ का आयोजन

युधिष्ठिर जी को नारद जी का विचार बहुत पसन्द आया। उन्हों ने अपने मंत्रियों और दूसरे सभासदों से परामर्श लिया। सभी राजसूययज्ञ के होन पर सहमत हो गये। यज्ञ की तैयारी की जान लगी। पर उन दिनों चूँकि कृष्ण जी वहाँ पर थे नहीं इसलिए युधिष्ठिर ने नकुल को भेजा कि वह द्वारका जाकर श्री कृष्ण जी को बुला लाये। नकुल द्वारका गये। वहां उन्हें कृष्ण जी मिल गये। उन्होंने नकुल से आने का कारण पूछा तो नकुल जी ने कहाकि आपको बड़े भाई साहब ने बुलाया है। तब कृष्ण जी अपने रथ में बैठे और इन्द्रप्रस्थ के लिए चल पड़े। जब वह युधिष्ठिर के दरबार में पहुँचे तो युधिष्ठिर ने उन्हें उच्च आसन पर बिठाया और कहा कि मैंने आपको इसलिये बुलवाया है, क्योंकि हमने यहां पर राजसूय यज्ञ करने का विचार किया है। इसलिये हमने आपसे परामर्श लेना उचित समझा। अब आप बताइये कि यह कार्य हमारा सम्पूर्ण होगा या नहीं!

श्री कृष्ण जी तब युधिष्ठिर का विचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप राजसूय यज्ञ करने जा रहे हैं। पर इसमें एक बाधा मुझे नजर आती है। वह यह कि मगध में एक जरासंध नामक राजा बैठा है जिसने पाप करने का कसम खा रक्खी है। उसने कई राजाओं महाराजाओं को भी अपने यहाँ कैद कर लिया है। राजसूय यज्ञ में चूंकि वह जरूर कोई विघ्न खड़ा करेगा इसलिए हम लोगों को उसे पहले ही आधीन कर लेना चाहिये। इसके लिए आप पहले मेरे साथ भीमसेन और अर्जुन को भेजिये। मैं मगध देश में जाकर किसी भी उपाय से जरासंध को बस में करूँगा। और जब मैं वहां से लौट आऊँगा तब आप यज्ञ का आयोजन कीजियेगा।

कृष्ण के इस कथन पर सभी ने यही उचित जाना कि पहले जरासंध को आधीन किया जाना चाहिये सो इसी लिए कृष्ण अर्जुन और भीमसेन को साथ लेकर मगध देश के लिए चल पड़े।

जरासंध-वध

वैशम्पायन जी कहते हैं--अब कई नदियों व पर्वतों और बनों को पार करते हुए अन्त में श्री कृष्ण अर्जुन और भीमसेन समेत मगध देश पहुँच गये। मगध देश की राजधानी के प्रवेश द्वार पर जब वह तीनों पहुँचे तो कृष्ण के आदेश पर भीमसेन ने बड़े फाटक को गिरा दिया। आगे बढ़े तो जरासंध के विशेष बाग को उजाड़ दिया। रास्ते में जरासंध का निजी मन्दिर था उसके भीमसेन ने कंगूरे तोड़ दिये। इस प्रकार सारे नगर को क्षति पहुँचाते हुए जब वह तीनों ब्राह्मण वेष में जरासंध के दरबार में पहुँचे तो वह उन्हें साधु ब्राह्मण समझ कर अपने महल में लिवा ले गया। और उसने इनका बड़ा स्वागत सत्कार किया। जब वह बैठे हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे थे तब जरासंध के अनुचरों ने आकर सूचना दी कि कोई तीन व्यक्ति शत्रुरूप में नगर में घुस आए हैं और सारे नगर को हानि पहुँचा रहे हैं। तब जरासंध ने उन तीनों ब्राह्मणों को देखा। उन में कृष्ण पर उसे सन्देह हो गया। कृष्ण को वह पहले से ही जानता था। कृष्ण जी भी जब समझ गये कि स्वयं को छुपाना कठिन है तो उन्हों ने भी स्वयं को प्रगट कर दिया और जरासंध को मल्ल-युद्ध के लिए ललकारा।

जरासंध बोला--तुम से तो मैं लड़ नहीं सकता क्योंकि तुम एक बार मुझ से लड़ कर भाग गए थे। अर्जुन मेरी आयु का नहीं। हाँ, यदि भीम लड़ना चाहे तो लड़ सकता है।

इतना सुनते ही भीम अपने स्थान से उठा और उसने जोर से अपने ताल ठोंके। भीम को ताल ठोंकते देख कर जरासन्ध को आग ही तो लग

गई। उसने भी तत्काल अपना राजसी वेष उतार डाला और लड़ने को मैदान में आ कूदा। दोनों में भयंकर मल्ल युद्ध होने लगा। सारा दिन वह एक दूसरे को गिराने का प्रयास करते रहे पर कोई भी जीत नहीं पाया। रात होने पर युद्ध कल के लिए स्थगित कर दिया गया। दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ। और इसी तरह तेरह दिन तक युद्ध होता रहा चौदहवें दिन लड़ते समय कृष्ण के संकेत पर भीम नें जरासंध की टाँगें पकड़ कर चीर दीं। एक जोर का गर्जन करता हुआ जरासंध मृत्यु को प्राप्त हो गया। सारे नगर में कुहराम मचगया। पर श्री कृष्ण ने अपनी नीति से सब जगह से अशांति दूर करदी और जरासंध के पुत्र सहदेव को राज्य दे दिया। सहदेव ने युधिष्ठिर के आधीन होकर रहना स्वीकार कर लिया। जितने राजा जरासन्ध के बन्दी थे सबको छोड़ दिया गया।

फिर कृष्ण ने सभी को राजसूय यज्ञ पर आमन्त्रित किया और स्वयं वहाँ से विदा चाही। सभी ने निमंत्रण स्वीकार किया और आने का वादा किया। कृष्ण, अर्जुन और भीम सहित वहाँ से चल दिये।

बहुत सा धन लेकर जब वह इन्द्रप्रस्थ पहुँचे तो उनका बहुत बड़ा स्वागत किया गया। अब राजसूय यज्ञ को तैयारियाँ होने लगीं। तब कृष्ण जी युधिष्ठिर से कुछ समय के लिए अनुमति माँगकर द्वारका चले गये।

राजसूय यज्ञ

वैशम्पायन जो बोले--हे राजन्! क्योंकि राजसूय यज्ञ करने से पूर्व दिग्विजय करना आवश्यक होता है इस लिए युधिष्ठिर ने भारत के चहुँओर अपने चारों भाइयों को दिग्विजय करने के लिए भेजा। अर्जुन उत्तर में, भीम दक्षिण में, नकुल पूर्व में और सहदेव पश्चिम में, गये। काफी समय लगा कर जब चारों भाई अपने २ प्रदेशों में विजय प्राप्त करके लौटे तो बड़ा समारोह किया गया। अर्जुन कलिंग, कालकूट, आनर्त और प्राग्य ज्योतिष देश के राजा

क्रमानुसार भगदत्त, वामदेव, सुदामा, उलूक, और पंचगढ़ को परास्त कर के आया था। लौटते हुए वह परे से कुल्त, चोल, काम्बोज, दरहे और हाटक को भी अपने आधीन बना आया था। इसी प्रकार गंडक, विदेह, दशार्ण, चन्देरी, अयोध्या, गोपाल, कच्छ और कोशल इत्यादि नगरों को भीम विजित करके आया था। इसी प्रकार से नकुल और सहदेव भी जीत कर बहुत सा द्रव्य लाये थे।

राजा युधिष्ठिर के सामने मणि मुक्ता का एक ढेर सा लग गया था। उन्हों ने शीघ्र ही तब राजसूय यज्ञ के आयोजन तथा प्रबन्ध का आदेश जारी कर दिया। साथ ही उन्होंने सभी देशों के राजाओं को भी आमंत्रित किया। उन्हों ने यदुवंशियों और कौरवों को भी निमन्त्रित किया। शीघ्र ही सारे इन्द्रप्रस्थ में दूर दूर से लोग एकत्र होने लगे। देश २ के राजा, मुनि, अधिकारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, भांड, नट, नचइये, और व्यापारी दूर दूर से आकर वहाँ एकत्र होने लगे। दुर्योधन समेत कौरव, बलराम समेत यादव, द्रुपद समेत पांचाली, तथा चंदि देश के राजा शिशुपाल, जरासंध के पुत्र सहदेव कृष्ण के साले रुक्म, काश्मीर, चीन, कोचीन, हूण, म्लेच्छ, तथा दूसरे भी सभी देशों के प्रतिष्ठित सज्जन ठीक समय पर इन्द्रप्रस्थ में आ गये। द्वारका से श्री कृष्ण भी आगये। हस्तिनापुर से महात्मा विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि, दुशासन और दुर्योधन भी आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने सभी का सत्कार किया।

सभी को उनका काम बाँट दिया गया और राजसूय यज्ञ के प्रारम्भ के दिन का इन्तजार किया जाने लगा। कार्यभार दुर्योधन अश्वत्थामा, द्रोणाचार्य श्री कृष्ण और भीष्म पितामह ने भी अपने जिम्मे लिया। सभी अत्यंत व्यस्त नज़र आते थे।

अब राजसूय यज्ञ का आयोजन शुरू हुआ। बहुत बड़ा कुण्ड बनाया गया। जिसके चहुँओर सभी आकर आसनों पर बैठ गये। ब्राह्मणों ने वेद पाठ

किया और कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करदी। युधिष्ठिर ब्राह्मणों के निकट के आसन पर कुण्ड के पास बैठे। यज्ञ शुरू करने से पूर्व यह पूछा गया कि सर्व प्रथम किसकी पूजा हो। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह ने कहा-श्री कृष्णजी की।

सो, सर्वसम्मति से कृष्ण जीकी पूजा की गई। यह बात दुर्योधन इत्यादि को बहुत बुरी लगी। पर वह कुछ कर नहीं सकता था। चूंकि उसे खजाने का भार दिया गया था इसलिये वह उसी को चुराने लगा। जहाँ एक मुद्रा देनी होती, वहाँ पाँच देता। लेकिन इसमे कुछ भी हानि नहीं हुई। क्यों कि दुर्योधन के हाथ में एक रेखा थी जिसके अनुसार वह जितना देता उसका दुगुना खजाने में स्वयं फिर आ जाता। यह बात स्वयं दुर्योधन को भी मालूम नहीं थी। पर कृष्ण जी जानते थे। इसीलिए उन्होंने दुर्योधन को कोषाध्यक्ष बनाया था।

शिशुपालवध

अवभृथ पूजन के समय जब दोबारा कृष्ण जी की पूजा की गई तो कई क्षत्रिय राजे आग बबूला हो उठे। सभी को समझा दिया गया कि इस के एकमात्र अधिकारी श्री कृष्ण ही हैं। पर राजा शिशुपाल नहीं माना। उसने आखें लाल करके कहा--यह कैसा यज्ञ है जिसमें क्षत्रियों की बजाय यादवों को पूजा जा रहा है। लगता है भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य सभी अन्धे हो गये हैं? वर्ना इस ग्वाले की पूजा करके हमारा अपमान नहीं किया जाता। राज्य विस्तार क्षत्री करते हैं। पूजा क्षत्रियों की भुजाओं की होनी चाहिए। यह दही और दूध खाने वाला क्या जाने कि शक्ति क्या होती है। इस बाँसुरी बजाने वाले मिरासी की पूजा करनी थी तो हम लोगों को बुलाया ही क्यों था? और युधिष्ठिर की भी मति मारी गई है जो अपनी प्रतिष्ठा खोकर इस प्रकार इस रास रचाने वाले नचइये की पूजा की जा रही है।

शिशुपाल के इस प्रकार गालियाँ देने पर सारे मण्डप में खलबली सी मच गई। भीम और अर्जुन तो उसे मारने तक के लिए दौड़ पड़े। लेकिन

कृष्ण जी ने उन्हें रोक दिया। वह बोले--जबतक यह मुझे सौ गालियों से ऊपर नहीं देगा तब तक मैं इसे कुछ नहीं कहूँगा। क्योंकि मैंने इसको मां श्रुतिश्रवा को इसके अपराध क्षमा करने का वचन दिया है।

कृष्णजी के ऐसा कहने पर, सभी चुप हो गये। लेकिन शिशुपाल उसी तरह गालियाँ बकता गया। जब गालियां सौ से ऊपर होगईं तो श्रीकृष्ण जी ने अपने सुदर्शनचक्र को चलाया और शिशुपाल की गर्दन कट कर नीचे गिर गई और तड़पने लगी। तब कृष्ण जी के कहने पर शिशुपाल का सिर उसका बेटा वहाँ से ले गया।

यज्ञ फिर आरम्भ हुआ। तब किसी ने कोई विघ्न खड़ा नहीं किया और इस प्रकार यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया। सभी लोगों ने और राजाओं ने युधिष्ठिर का जय जय कार किया और अपने अपने देशों को लौट गये। इन्द्रप्रस्थ में तब सिर्फ कौरव ही रह गए जिनका सत्कार उसी प्रकार पाण्डव करते रहे।

दुर्योधन का अपमान

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! तब ऐसा हुआ कि एक दिन दुर्योधन ने पूरा सभा भवन देखने की इच्छा प्रकट की। युधिष्ठिर ने भीम को आदेश दिया कि वह जाकर दुर्योधन को सारा सभाभवन दिखा लाये। भीमसेन दुर्योधन को सभाभवन के अन्दर ले गया। वहाँ पर विचित्र संयोग हुआ। दुर्योधन सभाभवन की चित्रकारी के धोके में आ गया। जहाँ पर जमीन थी वहाँ, उसे पानी का भ्रम हुआ और वह कपड़े उठाकर चलने लगा। जहाँ पर जल था वहाँ उसे जमीन नजर आई और वह बेधड़क आगे बढता गया, जिससे वह पानी में गिरा और अपने कपड़े भिगो लिये। खिड़की में बैठी द्रौपदी को इस पर बड़ी हँसी आई और वह ठठा कर हँस पड़ी। भीम मन ही मन में अपनी हँसी पी गया। पर कुछ आगे चलने पर जब रास्ता बन्द जानकर दुर्योधन ठिठक कर रुका तो भीम ने आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया और कहा-

यह दरवाज़ा है, रास्ता बन्द नहीं है। दुर्योधन को इससे बड़ी लज्जा उठानी पड़ी। कुछ आगे चलने पर जब दुर्योधन एक बन्द रास्ते को दरवाज़ा समझ कर आगे बढ़ा तो दीवार से उसका सर टकरा गया। अब तो भीम को भी अपनी हँसी रोकनी कठिन हो गई। द्रौपदी, जो ऊपर खिड़की में बैठी अब भी देख रही थी फिर जोर से हँस पड़ी और वहीं से बोली–अंधे के पुत्र की आँखें यदि हों भी तो भी उन्हें नज़र नहीं आता।

इससे दुर्योधन ने मन में अब बहुत अपमान अनुभव किया और गुस्से में वहाँ से चला गया। अपने डेरे पर पहुँच कर उसने तत्काल हस्तिनापुर जाने को सामान बाँधा और बिना किसी को सूचना दिये वहाँ से चला गया। जब युधिष्ठिर को पता चला तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने वहीं नगर में आये हुए व्यास जी से इसका उपाय पूछा। व्यास जी बोले–अब जो हुआ सो हुआ, पर आगे से ख्याल रखो। कहीं ऐसा न हो कि आप सभी को किसी भयंकर युद्ध में उलझना पड़जाय। और मैं आपको पहले से ही सावधान कर दूँ की यदि भाइयों भाइयों में युद्ध छिड़ गया तो विनाश काल आजाना है। प्रलय हो जाना है। इसलिए जो हुआ सो हुआ, अब आप सतर्क रहिये। कोई ऐसी बात न होने दीजिये जिससे वैमनस्य बढ़े। आप अपने भाइयों से शपथ ले लीजिये कि वह आपके आदेश के बिना कोई काम न करें। इससे वह बंधन में पड़ जायेंगे और झगड़ा बढ़ेगा नहीं।

युधिष्ठिर को व्यास जी की यह बातें जँच गई और उसने तत्काल ही चारों भाइयों को बुला कर उनसे तेरह वर्ष तक की शपथ ले ली कि वह कोई काम भी कार्य उनकी अनुमति के बिना नहीं करेंगे।

जुए में पांडवों की हार

वैशम्पायन जी बोले–हे राजन्! हस्तिनापुर पहुँच कर दुर्योधन को किसी कद्र चैन नहीं पड़ता था। उसे प्रतिशोध की भावना ने घर दबाया और वह

हर क्षण इसी चिन्ता में रहने लगा कि पांडवों से अपने अपमान का बदला कैसे लें ? उसने अपने मामा शकुनी से परामर्श किया। शकुनी बोला—मैं तो एक ही चीज जानता हूँ। जुआ। पांडवों को किसी प्रकार मेरे साथ जुआ खेलने पर सहमत करलो, अगर उनके कपड़े तक न उतरवा लूं तो शकुनी नाम नहीं।

और यही हुआ। पांडवों को आमंत्रित किया गया। पहले तो पांडव तैयार नहीं हुए लेकिन जब शकुनी ने युधिष्टिर को ताना दिया कि हाँ खेलोगे भी कैसे ! यह कोई राजसूय यज्ञ तो है नहीं कि निर्बलों को दबाकर चक्रवर्ती बन बैठे। इसमें बुद्धि का चमत्कार दिखाना पड़ता है। तब युधिष्टिर होनी के जाल में फंस गये और जूआ खेलने की अपनी स्वीकृति दे दी। फिर क्या था शीघ्र ही मंडप तैयार हो गया और एक दिन खेल भी जम गया। गुरुजनों और बूढ़ों ने बहुत मना किया पर वहाँ ऐसा कोई नहीं था जो रुक जाता।

जुआ शुरू हुआ। सर्व प्रथम युधिष्टिर ने अपने गले का हार लगाया और शकुनी ने स्वयं मुद्राओं से भरा थाल। युधिष्टिर हार गये। तब युधिष्टिर ने चाँदी से भरे एक सौ थाल दाव पर लगाये लेकिन फिर हार गये। शकुनी ने फिर पांसा फेंका और युधिष्टिर ने एक हज़ार नवजवान लड़कियाँ दाव पर बिटाई और वह फिर हार गये। इस प्रकार अपना पूरा राजपाट धन सम्पति भाई और अन्त यहाँ तक हुआ कि अपनी प्यारी पत्नी द्रौपदी तक को हार गये। दूसरे भाइयों ने शपथ ले रखी थी कि वह भाई के किसी कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे जब द्रौपदी को दाव पर लगाया गया तब सारे मण्डप के लोगों ने बड़ा शोर मचाया लेकिनशकुनी ने युधिष्टिर से कहा——लगाओ। डरो मत ! शायद द्रौपदी के ही भाग्य से पासा पलट जाये।

पर हाय रे भाग्य ! युधिष्टिर हार गये। दुर्योधन अट्टहास कर उठा। शकुनी ने कहकहे लगाये और पांडवों के सर झुक गये। दुर्योधन ने दुःशासन को भेजा कि जाओ द्रौपदी को दरबार में पकड़ कर ले आओ। जिस भी अवस्था

में बैठी हो खींच कर ले आओ। चाहे वहां क्यों न रही हो, तुम परवाह नहीं करना। आज यह सभी हमारे दास हैं।

द्रौपदी--चीर--हरण

द्रौपदी से जब दुःशासन ने जाकर कहा कि सभा-बीच चलो, तुम्हें दुर्योधन बुलाते हैं तो पहले तो द्रौपदी नहीं मानी और सारी बात सुन कर बोली कि हारे हुए धर्मराज को अपनी स्त्री हारने का कोई अधिकार नहीं, लेकिन नीच दुःशासन मानने वाला नहीं था। उसने कहा कि अपना दुखड़ा वहीं चल कर रोना। मुझे तो जो आदेश दिया गया है मैं उसका पालन करूँगा। इस पर भी जब द्रौपदी नहीं मानी तो वह उसे बालों से पकड़ कर घसीटता हुआ दरबार में ले आया। दरबार के बाहर भी द्रौपदी ने उससे विनती की कि अरे नीच! मुझे छोड़ दे। अन्दर मेरे गुरुजन बैठे हैं, मैं उन्हें नमस्कार कैसे करूंगी। पर दुःशासन उस दिन नीचता पर ही उतरा हुआ था। दरबार में उसने उसे ला पटका। पहले तो द्रौपदी ऊँचे-ऊँचे विलाप करने लगी, जिस से दुर्योधन के सब से छोटे भाई विकर्ण को क्रोध आ गया और उसने सारे सभा मंडप को फटकारा, लेकिन उसे कर्ण ने डाँट कर बिठा दिया कि अभी तुम बच्चे हो। फिर द्रौपदी ने ऊंच आवाज़ में वही प्रश्न दुहराया कि हारे हुए व्यक्ति को अपनी पत्नी हारने का क्या अधिकार है?

लेकिन सभा में किसी ने उसकी बात नहीं सुना। नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। दुर्योधन ने चीख कर कहाकि जिस प्रकार उस दिन अपने विमानप्रतिम भवन में यह मुझ पर हँसी थी उसी प्रकार आज मैं भी यहां पर वह तमाशा करूंगा कि सारे लोग खूब हँसें।

इसके बाद उसने दुःशासन को आदेश दिया कि द्रौपदी की साड़ी उतार दो। दुःशासन आगे बढ़ा। सारे दरबार में खलबली मच गई। पर किसी को भी इतना साहस न हुआ कि उसे रोक दे। जब दुःशासन ने द्रौपदी का

साड़ी का छोर पकड़ा तब द्रौपदी ने सभी सभासदों को सम्बन्धित करते हुए कहा--आज पता चला कि यहां सभी निर्जीव व्यक्ति बैठे हैं। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह आज से मेरे लिए मर चुके हैं। विदुर जी का आज से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आज इस सारे अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाल कोई नहीं। इस देश में नारी का इतना अपमान आज तक नहीं हुआ। आपा सभी लोग आज नारी को नग्न देखना चाहते हैं। आज इस संसार में यदि कोई मेरा सहाई है तो वह केवल श्री कृष्ण हैं। आज मैं सिर्फ उन्हें पुकार सकती हूँ।

और तब द्रौपदी ने भगवान कृष्ण को स्मरण किया। दुःशासन द्रौपदी का चीर खींचता गया, पर न जाने क्या हुआ कि द्रौपदी निर्वसना नहीं हुई। श्री कृष्ण जाने कब आ गये थे, अपनी भक्तिन की व्यथित पुकार सुन कर और खड़े उसके चीर को बढ़ाये जा रहे थे। मंडप में द्रौपदी का साड़ी का ढेर लग गया। दुःशासन कपड़ा खींचते खींचते थक गया, पर द्रौपदी वस्त्र हीन न हुई। अन्त में थक कर वह बैठ गया।

उसको असफल होते देख कर दुर्योधन ने द्रौपदी को वितृहरण के मारे अश्लील संकेत करने शुरू किये और अपशब्द कहते हुए बोला--हे द्रौपदी! मैं तुम्हें महलों की रानी बना दूंगा, तू आ, और आकर मेरी इस जंघा पर एक बार बैठ जा। दुर्योधन के ऐसे वचन सुनकर द्रौपदी लज्जा से जमीन में गड़ गई। अब भीम से नहीं रहा गया। वह उठ कर खड़ा हो गया और गरज कर बोला--ओ दुष्ट दुर्योधन! आज तुमने जो यह अश्लील संकेत किया है तो सुन लो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपनी गदा से तुम्हारी इसी जंघा को न तोड़ूं तो पांडवपुत्र न कहलाऊं। और नीच दुःशासन! तू भी सुन ले! जिन हाथों से तुमने द्रौपदी के बाल खींचे हैं उन्हीं को कुचल कर जब तक तुम्हारे खून से द्रौपदी के बाल नहीं धोऊंगा तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा।

इतना कह कर भीम बैठ गया। दुःशासन और दुर्योधन कुछ कहना ही चाहते थे कि उसी समय भूकम्प सा आ गया। दुर्योधन का सिंहासन डोल उठा। दरबार के बाहर गीदड़ और उल्लू बड़े जोर से रोने लगे। इतने सारे अपशकुन और भीम की उस प्रतिज्ञा को सुन कर सारी सभा में त्राहि-त्राहि मच गई। सभी समझ गये कि कुछ न कुछ अनिष्ट होने वाला है। तब धृतराष्ट्र की बुद्धि लौट आई और उन्होंने द्रौपदी को अपने पास बुला कर कहा कि बेटी! यह सब जो हुआ सो हुआ, मैं तुम्हारे सतीत्व से बहुत प्रसन्न हूँ तू वर मांग।

तब द्रौपदी ने वर मांगा कि मेरे पतियों को दासता से मुक्त किया जाये और उनका राज्य लौटा दिया जाये। धृतराष्ट्र ने 'तथास्तु' कहा और युधिष्ठिर को बुला कर उसका राज्य पाट उसे दोबारा सौंप दिया और कहा कि तुम मुक्त हो। जाओ और इन्द्रप्रस्थ में सुखपूर्वक रहो।

दोबारा जुआ

पांडव इन्द्रप्रस्थ में सुखपूर्वक रहने लगे। पर इधर दुर्योधन ने फिर धृतराष्ट्र के सामने रोना रोया और कहा कि आप यह क्यों नहीं समझते कि अब भीम हमसे अपने अपमान का बदला लेंगे और शत्रु का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। उसे सर उठाने से पहले ही कुचल देना चाहिये। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि यदि आप हमारी रक्षा चाहते हैं तो उन्हें फिर बुलवाइये। आपने उन्हें दासता से मुक्त करके अच्छा नहीं किया। पर अभी भी समय बीता नहीं है। वह आप पर विश्वास कर के चले आयेंगे। तब हम उन्हें फिर जुए पर निमांत्रित करेंगे और अबकी वार उन्हें हटा कर वनों को भेज देंगे।

धृतराष्ट्र फिर पुत्र स्नेह में अंधे हो गये और पांडवों को बुला भेजा। पांडवों के आने पर वही हुआ। युधिष्ठिर पहले तो माने नहीं; पर अधिक आग्रह करके और उन्हें जाल में फंसा कर शकुनी ने चौसर पर उन्हें बिठा

लिया। लेकिन भाग्य युधिष्ठिर के साथ नहीं था। वैसे भी शकुनी छल से खेलता था। इस से शीघ्र ही युधिष्ठिर फिर सब कुछ हार गये। और अन्त में एक दाव और रखकर शकुनी ने उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करा दिया। युधिष्ठिर सब कुछ गवाँ-लुटा कर फिर इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

वन-गमन का प्रथम चरण

वैशम्पायन जी ने कहाकि हे राजन्! पांडवों को छोड़ने के लिये विदुर जी नगर के बाहर तक उनके साथ गये। माता कुन्ती को उन्होंने वनों में जाने नहीं दिया। उसे उन्होंने अपने ही घर में रख लिया। पांडवों के साथ नगर के कई लोग रोते बिलखते गये पर धर्मराज ने सभी को सांत्वना देकर बड़ी कठिनता से घरों को लौटाया।

पांडवों को छोड़ कर जब विदुर जी लौटे तो धृतराष्ट्र ने उनसे पूछा—विदुर जी, जरा मुझे वह दृश्य तो बताइये जिस में पांडवों ने वन गमन किया।

विदुर जी ने कहा—सभी पांडव अत्यन्त बुद्धिमान हैं। वन गमन करते समय धर्मराज ने अपने नेत्र बन्द कर लिये थे जिसका आशय था कि वह नगर के लोगों को रोता नहीं देख सकते थे और उन्हें भय था कि कहीं उन्हें वह सब देख कर क्रोध न आ जाये।

भीम अपनी बाहों को बार बार देखते जा रहे थे, जैसे कहते हों कि इन्हीं बाहों से एक दिन कौरवों का नाश करूंगा।

अर्जुन पांवों से धूल उड़ाते जा रहे थे जिसका मतलब था कि एक दिन इसी तरह रण-क्षेत्र में बाणों से सभी को धूल धूसरित कर दूंगा।

नकुल ने मुंह पर कालिख पोत रखी थी ताकि उन्हें कोई पहचान ही न सके। सहदेव ने अपने शरीर पर राख मली हुई थी। सहदेव का शरीर बड़ा तेजवान है। वह अपने तेज को छुपाये जा रहे थे।

द्रौपदी ने अपने मुख को अपने बालों से ढांप रखा था जिसका मतलब यह था कि एक दिन इसी प्रकार कौरवा की पत्नियां विधवाओं का सा भेष धारण कर के विलाप करेंगी।

धौम्य ऋषि आगे आगे मंत्रोच्चार करते जा रहे थे, जैसे कहते जा रहे हों कि वह समय दूर नहीं जब इसी प्रकार कौरवों के क्रिया कर्म पर मुझे मंत्र पढ़ने पड़ेंगे।

विदुर जी ने कहा—बस यह था पांडवों के वन गमन का दृश्य। और भी कई अपशकुन हो रहे थे जो अनिष्ट की ओर संकेत करते हैं।

विदुर के ऐसे वचन सुन कर धृतराष्ट्र चिन्ताग्रस्त हो उठे। वह जैसे दूर देखते हुए कुछ सोचने से लगे।

—o—

वन पर्व

काम्यक वन में पांडव

वैशम्पायन जी बोले–हे राजन् ! विधि का खेल देखिये कि राजमहलों में आराम करने वाले पांडव साधुओं का सा भेष बनाये इन्द्रप्रस्थ छोड़ कर वनों को चल पड़े। सैकड़ों नर नारियों ने उनके ही साथ रहने की इच्छा प्रगट की, किन्तु युधिष्ठिर ने उन सब को बड़े निवेदन से समझा बुझाकर वापिस तो कर दिया किन्तु गंगा किनारे रात भर आराम करने के बाद जब सुबह उनकी नींद खुली तो देखा कि कुछ ब्राह्मण उनके निकट ही सोये पड़े हैं। जगाने पर उनसे पूछा गया कि आप लोग क्या चाहते हैं। वह बोले–हम तो आपके साथ ही चलेंगे।

इससे युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए। चूंकि वह जानते थे कि वह स्वयं तो भूखे रह लेंगे पर उनके सामने विप्र भूखे रहें यह वह सहन नहीं कर सकते उन्होंने ब्राह्मणों को अपनी समस्या बतलाई भी, लेकिन वह धर्मराज समेत पांडवों को किसी भी मूल्य पर छोड़ने को तैयार नहीं थे। तब धौम्यऋषि ने युधिष्ठिर की चिन्ता दूर की। उन्होंने धर्मराज को एक मंत्र बतलाया जिस के द्वारा उन्होंने सूर्यदेव को बुला कर उन्हें अपनी समस्या बतलाई। भगवान सूर्य ने तब धर्मराज को एक ताम्र-पात्र दिया और कहा कि इस पात्र में से आप जितना चाहें उतना अन्न प्राप्त कर सकते हैं। उस पात्र को देकर सूर्य-भगवान अन्तर्ध्यान हो गये।

अब युधिष्ठिर को कोई चिन्ता न रही और वह उन ब्राह्मणों को साथ लेकर आगे बढ़े। शीघ्र ही वह काम्यक वन के रमणीक स्थान पर पहुँच गये। पर सँसार के अन्दर हर फूल के साथ कोई न कोई कांटा भी होता है, सो काम्यक वन के सुन्दर तथा रम्यस्थल पर भी एक दैत्य काम राक्षस रहता

था जिसका नाम किर्मीर था। वह बड़ा भयानक राक्षस था। उसके भय और आतंक से सारे वन से ऋषि तथा साधुजन चले गये थे। उसने जब पांडवों को तथा ब्राह्मणों को आते देखा तो उसकी क्षुधा उसे प्रताड़ित करने लगी। उसने जोर की एक गरजदार आवाज़ मुँह से निकाली और इन लोगों को मारने के लिए पेड़ से नीचे उतर आया। उसके सामने आने पर पहले तो युधिष्ठिर ने उसे रोका और कहा कि तुम लौट जाओ और हमें आराम से कुछ दिन यहाँ रहने दो, पर जब वह नहीं माना तो उन्होंने भीम को संकेत किया और भीम ने आगे बढ़कर तत्काल उस राक्षस की गर्दन पकड़ ली। अब तो उन दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। काफी देर तक उठा-पटक होती रही, पर अन्त में भीम ने किर्मीर को अपनी दोनों बाहों पर उठाया और जोर से आकाश में घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया। किर्मीर के मुंह से एक भयानक चीख निकली और पल भर को वह तड़पा और फिर ढेर हो गया। भीम की इस विजय से शीघ्र ही आकाश में देवताओं ने दुन्दभीवादन किया और फूल बरसाये। सारा काम्यक वन जैसे प्रसन्नता से झूम उठा। अब पांडवों ने वहीं पर अपना डेरा जमा दिया। शीघ्र ही वहाँ से गये हुए ऋषि भी वहाँ लौट आये और काम्यक वन का जीवन आनन्दमय हो उठा।

विदुर निर्वासन

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन! पांडव हस्तिनापुर में भी अत्यंत लोकप्रिय थे। इसलिए जब पांडवों को वनवास जाना पड़ा तो जनता में विद्रोह की आग भड़क उठी। द्रोपदी के दरबार में हुए अपमान से लोग क्षुब्ध तो पहले से थे ही इसलिए जब पांडवों को देश से भी निर्वासित किया गया तो वह उठ खड़े हुए। धृतराष्ट्र के लिए जनता को सम्भालना कठिन हो गया। उन्होंने विदुर जी को बुलाया और कहा कि आप जनता को शांत करें। विदुर जी ने जाकर जनता के बीच कहा कि राजाओं के परस्पर के विवाद

में जनता को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। यह सभी जानते हैं कि पांडवों पर अत्याचार हुआ है, लेकिन अन्यायी को दंड देने का हमें कोई अधिकार नहीं है। जो जैसा करता है वैसा भरता हैं। कौरवों ने जो कर्म किये हैं, उसका फल वह अवश्य भुगतेंगे।

विदुर जी की ऐसी नीतिपूर्ण बातें सुनकर जनता शांत हुई और उन्होंने विद्रोह को समाप्त कर दिया। विदुर जी धृतराष्ट्र के पास आये और उनसे कहा—महाराज! जनता अभी तो शांत हो गई हैं लेकिन यदि पांडवों को वापिस नहीं बुलाया गया तो संभव है लोग फिर राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हों, और तब उनका दबाना भी कठिन हो जायेगा। इसलिए मैं आपसे यही निवेदन करता हूँ कि आप पुत्रमोह में नहीं पड़िये और पांडवों को बुला कर उनका राज्ज लौटा दीजिये।

विदुर जी की बातें सुनकर धृतराष्ट्र को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा—विदुर जी! आप हमारे राज्य में रहते हुये भी और हमारा नमक खाते हुये भी पांडवों के पक्ष की बात कहते हैं इसलिए लगता है आप हमारे साथ धोखा कर रहे हैं।

विदुर जी ने कहा—मैं तो न्याय की बात कहता हूँ। जो कोई अन्याय की बात कहेगा, उसका विरोध करना मेरा धर्म है! चाहे वह राजा हो या प्रजा। विदुर जी का यह नीतिपूर्ण वाक्य धृतराष्ट्र के लिए कटूक्ति से कम नहीं था। उन्होंने कहा—यदि आप अपने आपको बड़ा न्याय प्रिय समझते हैं तो पांडवों के साथ ही जाकर रहिये। यहाँ रहेंगे तो यहीं के पक्ष की बात कहनी होगी।

विदुर जी ने कहा—महाराज धृतराष्ट्र! चला तो जाता हूँ पर समय पर आपकी आँखों पर से पट्टी खुलेगी और तब आप भले बुरे की बात सोचकर पछतायेंगे।

इतना कहकर विदुर पांडवों के पास काम्यक वन में चले गये। वहाँ उनका बड़ा सत्कार हुआ और वह वहीं आराम से रहने लगे।

इधर हस्तिनापुर में विदुर जी के जाने से फिर विद्रोह उठ खड़ा हुआ जब धृतराष्ट्र ने देखा कि जनता राज्य ही उलट देगी तब उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई और उन्होंने संजय मंत्री के हाथों विदुर जी को बुला भेजा। उन्होंने तो पांडवों को भी बुलाया पर वह नहीं आये। युधिष्ठिर ने कहा कि वह तो अब तेरह वर्ष बिता कर ही आयेंगे। विदुर जी लौट आये और उन्होंने जनता को फिर शांत कर दिया। पर विदुर जी के लौट आने से दुर्योधन इत्यादि को बड़ा दुःख हुआ। वह चाहते थे कि किसी प्रकार पांडवों से सदा के लिए पिंड छूट जायें। इसके लिए दुर्योधन ने एक दिन दुःशासन तथा कर्ण इत्यादि को बुला कर कहा कि अभी पांडव काम्यक वन में ही हैं। वहाँ वह अकेले हैं। क्यों न हम वहाँ जाकर उन्हें सदा के लिए ही समाप्त कर दें ताकि यह काँटे हमारे रास्ते से हमेशा के लिए हट जायें। सभी इस बात पर सहमत हो गये और तत्काल ही काम्यक वन की ओर चल पड़े। पर दैवयोग से रास्ते में उन्हें व्यास जी मिल गये और वह तत्काल उन के आशय को भाँप भी गये। उन्होंने उन्हें समझाया बुझाया और वापिस ले आये। फिर व्यास जी ने धृतराष्ट्र को भी समझाया कि इस प्रकार का उपद्रव अपने बेटों को नहीं करने दो वर्ना इतना भयानक युद्ध होगा कि दिग् दिगन्त काँप उठेंगे। व्यास जी ने धृतराष्ट्र को यह भी बतलाया कि पांडवों से मिल कर ऋषि मैत्रेय संधि का संदेशा लेकर आ रहे हैं। उनसे संधि कर लेना वर्ना तुम्हारा अपयश के साथ अनिष्ट भी होगा। इतना कह कर व्यास जी चले गये। उनके जाने के कुछ देर बाद ऋषि मैत्रेय वहाँ आये और उन्होंने धृतराष्ट्र के सामने कौरवों को बुलाकर संधि का प्रस्ताव रखा। पर कौरवों ने उनके संधि प्रस्ताव को ठुकरा दिया और दुर्योधन ने तो यहाँ तक कि अपनी जंघा पर हाथ मारते हुए कहा कि हम शक्तिशाली व्यक्ति हैं हमें संधि करने की

कोई आवश्यकता नहीं! ऋषि को इस पर क्रोध आगया और उन्होंने शाप दिया-- ऐ दुर्योधन जिस जंघा पर तू हाथ मार रहा है वही जंघा संग्राम में भीम अपनी गदा से तोड़ देगा और तुम्हारे कुल का नाश होगा। शाप देकर मैत्रेय जी क्रोध में फुफकारते हुए वहाँ से चले गये।

पाण्डव तथा कृष्ण मिलन

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! इस प्रकार शीघ्र ही पाण्डवों के वनवास का समाचार दूर दूर तक पहुँच गया, जिस से सभी को दुःख हुआ। द्रुपद तक जब यह समाचार पहुँचा तो वह काम्यक वन जा पहुँचा श्री कृष्ण को भी यह समाचार मिला तो वह भी काम्यक वन पहुँचे। और भी कई लोग वहाँ पहुँच गये। सभी पाण्डवों से गले लग कर मिले। राजा द्रुपद ने सबको अपने साथ पांचाल ले जाना चाहा पर युधिष्ठिर ने कहा--यह अधर्म होगा। जब तक बारह वर्ष सम्पूर्ण नहीं होते, तब तक हम किसी भी नगर में नहीं जा सकते। राजा द्रुपद निराश से लौट गये।

कृष्ण जी ने भी समवेदना प्रगट की और कहा--खेद इस बात का है कि आप लोगों ने मुझे पहले सूचित नहीं किया वर्ना यह स्थिति ही नहीं पैदा होती मैं अपनी नीति से उन के सभी छल काट देता। पर खैर, अब आप किसी प्रकार यह तेरह वर्ष की अवधि तो काटिए फिर देखा जायगा। चूँकि मुझे लगता है कि अब भी जब आप के तेरह वर्ष पूर्ण हो जायेगें तब भी कौरव आप को यूँ ही राज्य नहीं देदेंगे। युद्ध अवश्य होगा। पर आप तब तक धर्म पर डटे रहिए।

कृष्ण जी जब यह कह रहे थे तब द्रोपदी अन्तःपुर से निकल आई और ज़ोर ज़ोर से विलाप करते हुए कहने लगी-- हे कृष्ण जी! आप अन्तर्यामी हैं। सर्व शक्तिमान् हैं। जरा आप यह तो बताइये कि हम लोग क्यों इतना कुछ सहन कर रहे हैं? क्या मेरे पति वीर नहीं हैं? क्या मेरे भाई पितृवंश के लोग बली नहीं हैं? क्या आप जैसे महापुरुष हमारे सहायक

नहीं हैं। तब क्यों हम लोग इस प्रकार भटक रहे हैं ? आखिर हमारी यह दुर्दशा क्यों है ?

कृष्ण जी ने कहा—हे देवी ! सारा संसार जान चुका है कि आप धर्म पर हैं और कौरव अन्याय कर रहे हैं। इसलिए यही उचित है कि आप तब तक धर्म से न हटें जब तक कि आपकी अवधि पूरी न हो जाए। आप धैर्य रखिये। यदि आपने इस समय राज्य को प्राप्त करने के लिये युद्ध छेड़ दिया तो अपयश के भागी होंगे। तेरह वर्ष का समय बीत जायेगा तो मैं भी आप लोगों की सहायता करूँगा और कौरवों से युद्ध में लड़ूँगा। अभी आप धैर्य रखिये।

इतना कह कर कृष्ण चले गये। उनके जाने के बाद शेष लोग भी चले गये। जब पांडव अकेले रह गये तो एक दिवस उन्होंने अपने साथ के ब्राह्मणों से कहा कि आप लोग यहीं रहिये, हम द्वैत वन में जाकर अब ठहरेंगे। चूंकि साधु को एक ही स्थान पर अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिये। पहले तो ब्राह्मणों ने साथ चलने का हठ किया पर युधिष्ठिर ने फिर उन्हें समझा लिया और एक विशेष मुहूर्त में काम्यक वन छोड़ कर द्वैत वन में आ पहुँचे।

तब एक दिन वहां व्यास जी पधारे और पांडवों ने उनका बहुत आदर सत्कार करके उन्हें आसन दिया। व्यास जी ने उनसे कहा—मैं आप लोगों के धैर्य और सन्तोष से बहुत प्रसन्न हूँ। पर आपका और कौरवों का युद्ध अवश्य होगा, इसलिए मैं आपको बताता हूँ कि आप में से अर्जुन चूंकि श्रेष्ठ धनुर्धारी हैं इसलिए यदि वह भगवान् शंकर और इन्द्रदेव की उपासना करें तो उन्हें ऐसे शस्त्र प्राप्त हो सकते हैं जो महाविनाशकारी हों और शत्रु पर विजय प्राप्त करने में सहायता देने वाले हों। इसलिए यदि अर्जुन उन को तपस्या करके अस्त्र प्राप्त करले तो आपलोगों की विजय निश्चित है।

व्यास जी की ऐसी बातें सुनकर चारो भाइयों ने अर्जुन से कहा कि आप तपस्या कीजिए और जैसा व्यास जी ने कहा है वैसा ही कीजिए। अर्जुन तैयार हो गये। जब व्यास जी चले गये तो अर्जुन भी हिमालय पर्वत की ओर तपस्या करने के लिए चल दिया।

अर्जुन की तपस्या

वशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! इसके बाद जब अर्जुन बीहड़ वनों से होता हुआ हिमालय पर्वत की कन्दराओं में जाकर इन्द्र भगवान के लिए तपस्या करने लगा तो बड़े बड़े भी चकित रह गये। ऐसा तपस्वी उन्होंने आज तक नहीं देखा था। अर्जुन की अविकल, तपस्या देख कर शीघ्र ही इन्द्रदेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने अर्जुन के आगे प्रगट होकर कहा—वरं ब्रूहि। वर माँगो।

अर्जुन ने कहा—ऐसा अस्त्र चाहता हूँ जिससे शत्रु बच नहीं सके। जिसपर चला दूं उसका नाश हो जाये। अर्जुन की ऐसी इच्छा सुन कर इन्द्र ने कहा ऐसा मैं कर नहीं सकता। पहले आप शिव जी की तपस्या कीजिये वह आपको जब वर दे देंगे तब मैं भी आपकी सहायता कर दूंगा।

अर्जुन को इससे कुछ विक्षोभ तो हुआ पर वह शांत रहे और उन्होंने शिव शंकर की अटूट तपस्या करने का निश्चय कर लिया। इन्द्र जब अन्तर्ध्यान हो गये तब अर्जुन भी हिमालय के और भी बीहड़ जंगलों के अन्दर प्रवेश कर गये। एक उचित स्थान देखकर अर्जुन ने आसन जमाया और समाधिस्थ हो गये।

तपस्या की उपलब्धि

हिमालय पर्वत पर बीहड़ जंगल में अर्जुन की भयानक तपस्या देख कर सभी देवता तक काँप उठे। उन्हें निश्चय हो गया कि अर्जुन अब देवत्व को प्राप्त कर लेगा। उन्होंने जाकर शिव जी से प्रार्थना की कि मर्त्यलोक का

एक व्यक्ति ऐसी कठोर तपस्या कर रहा है कि इन्द्र का सिंहासन तक खतरे में पड़ गया है। शिव जी तो अन्तर्यामी थे। वह सब कुछ जानते थे। उन्होंने देवताओं को सांत्वना दी, और कहा की आप निश्चिन्त रहिये, अर्जुन इन्द्रासन के लोभ में तपस्या नहीं कर रहे हैं। देवता शिवजी के इस आश्वासन से निश्चिन्त हुए और चले गये।

शिवजी ने तब एक आखेटक का भेष बनाया और धनुषबाण ले कर उसी स्थान पर आकर विचरण करने लगे जहाँ अर्जुन बैठा तपस्या कर रहा था। पर अर्जुन उन्हें उस भेष में भी पहचान गया और उसने उन्हें दंडवत् प्रणाम किया। शिव जी इससे अत्यधिक प्रसन्न हुये और उन्होंने अर्जुन से वर माँगने के लिए कहा। अर्जुन ने कहा--महाराज, मुझे तो और कुछ भी नहीं चाहिए। मेरे भाइयों का मुझे आदेश है कि मैं ऐसे अस्त्र शस्त्र प्राप्त करूँ जो कि किसी के काटे भी कट न सकें। इन्द्रदेव की मैंने तपस्या की थी उन्होंने मुझे आज की तपस्या करने को कहा। हे देवों के देव! आपही अब मुझ पर कृपा कीजिये।

शिवजी बोले--हे अर्जुन! हम तुम्हारी इस भक्त से परम प्रसन्न हुए हैं। इसलिये हम तुम्हें पाशुपत अस्त्र देते हैं, इससे तुम जो चाहोगे, वही होगा। यह कह कर भगवान शंकर ने अपना दिव्य रूप प्रकट किया। अर्जुन शिवजी के उस रूप को जिसमें कि वह पार्वती को संग लिये, सांपों की मालाएँ लपेटे नन्दी पर बैठे थे--देख कर अभिभूत हो गया और उसका मस्तक झुक गया। तब शिव जी ने उसे पाशुपत अस्त्र दिया और कहा--अब हम जाते हैं। पर हमारे जाने के बाद यहाँ और भी देवता आयेंगे और वह भी तुम्हें विभिन्न अस्त्र देंगे। इतना कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये। उनके जाने के कुछ ही देर बाद सचमुच सभी देवता प्रगट हुए और उन्होंने अर्जुन को भाँति भाँति के अस्त्र देकर संतुष्ट किया। अर्जुन ने भी सभी की वन्दना करके सभी को प्रसन्न किया।

सबके पश्चात् इन्द्रदेव आये और उन्होंने कहा कि हे अर्जुन! अब तुम देवताओं की कोटि में आ गये हो। अब तुम सशरीर स्वर्ग में आ सकते हो। इस लिए मैं तुम्हें स्वर्ग में निमन्त्रित करता हूँ। मेरे जाने के कुछ देर बाद यहाँ एक रथ तुम्हें लेने आयेगा तुम उस पर बैठ कर आ जाना।

इतना कहकर इन्द्रदेव चले गये। उनके जाने के कुछ देर बाद, अर्जुन अभी कुछ सोच भी न पाया था कि एक अति वेगवान रथ उस के निकट आकर रुक गया। अर्जुन समझ गया कि यह वही रथ है। अर्जुन तत्काल उस में बैठ गया। वायु से भीते ज दौड़ने वाले अश्व शीघ्र ही उसे लेकर स्वर्ग पहुँच गये। अर्जुन इन्द्रपुरी की उस शोभा को देख कर विमुग्ध हो गया। उस ने आज तक ऐसा अनुपम सौन्दर्य नहीं देखा था। और वहाँ की अप्सराओं को देख कर तो वह रीझ ही गया। इतनी सुन्दरता उसने अपने जीवन काल में कभी नहीं देखी थो। वहाँ पर उस का बड़ा स्वागत किया गया। एक बहुत बड़े राजमहल में उसे ठहराया गया। अब तो अर्जुन के दिन इन्द्र पुरी में इतनी शान्ति और आराम से बीतने लगे कि वह सभी कुछ भूलने लगा। प्रतिदिन की दिनचर्या उसकी बड़े-बड़े महाराजाओं जैसी थी। वहाँ के गन्धर्वों से उस की बड़ी मित्रता हो गई। और उन्हीं की संगत में धीरे-धीरे वह नृत्यकला में निपुण हो गया। शीघ्र ही जब वह गंधर्वों के साथ नृत्य करने लगा तो उस की ख्याति सारे स्वर्ग में फैल गई।

एक दिन उर्वशी ने कहीं अर्जुन को नाचता देख लिया। उस का मन उस की ओर खिंच सा गया। कुछ दिन तक तो उर्वशी ने किसी प्रकार स्वयं को संयत रखा पर शीघ्र ही उसे महसूस हो गया कि वह अर्जुन पर मोहित हो गई है और उसके बिना रह नहीं सकती। तब एक दिन वह अर्जुन के राजमहल में रात्रि के समय घुस गई और जहाँ अर्जुन सोये हुए थे, वहाँ उसने अपना मोह पाश फैला दिया। अर्जुन की नींद खुली और उस ने जब उर्वशी को मोह पाश फैलाकर अर्धनग्नावस्था में नृत्य करते देखा तो

चौंक उठा । उसने स्वयं को सँभाला और उर्वशी को जोरदार शब्दों में डाँटा और अपने शयन कक्ष से निकल जाने को कहा ।
इससे उर्वशी को बहुत दुःख हुआ । उसने एक बार और प्रयत्न किया कि किसी प्रकार अर्जुन रीझ जाये पर अर्जुन अडिग रहे । उर्वशी की जब कोई युक्ति सफल नहीं हुई तो वह अपने नारी सुलभ स्वभाव के साथ क्रोधित हो उठी और उसने गुस्से में गरज कर कहा--हे अर्जुन ! तुम्हें अपने पौरुष और संयम पर बहुत विश्वास है न ? इसलिए मैं तुम्हें शाप देती हूँ--जिस प्रकार मुझ कामाकुल नारी को तुम्हारे सामन नृत्य करना पड़ा है इसीप्रकार तुम भी अपना पौरुष खो कर स्त्रियों के समान भेष बनाये, नपुंसक बनें; रानियों के बीच नाच करते फिरोगे ! तुमने मुझ कामाकुल को सताया है, इसलिए तुम भी इसी प्रकार सताये जाओगे । मेरे वाक्य कभी असफल नहीं होगे ।

उर्वशी यह शाप देकर अर्जुन के शयनालय से निकल गई ।

प्रातः होने पर अर्जुन ने सारी घटना देवेन्द्र से बतलाई और कहा—अब क्या होगा ? मुझे तो नपुसंकता का शाप दिया गया है ?

इन्द्र बोले--घबराने की आवश्यकता नहीं । भगवान जो करता है अच्छा करता है । उर्वशी का यह शाप भी तुम्हारे लिए वरदान से कम प्रमाणित नहीं होगा । बारह वर्ष के वनवास के पश्चात् जब तुम अज्ञातवास करोगे तब यह रूप तुम्हारे काम आयेगा । एक वर्ष पश्चात् तुम्हारा पौरुष फिर लौट आयेगा और नपुसंकता समाप्त हो जायेगी । तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं ।

युधिष्ठिर और बृहदश्व

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन् ! इधर तो अर्जुन स्वर्ग में थे उधर अर्जुन के बिना चारों भाई चिंतित हो रहे थे। अर्जुन को उनसे बिछुड़े पांच वर्ष का समय हो चुका था । एक दिन तो भीम अत्यधिक रुष्ट हो

गये और युधिष्ठिर से बोले—यदि मुझे आपकी अवज्ञा का विचार न होता मैं कब का इन कौरवों को यमपुर पहुँचा चुका होता। मुझे तो आप किसी प्रकार इन से लड़ने की अनुमति दे दीजिये।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम! मैं तुम्हारी स्थिति को खूब समझता हूँ। पर मैं अधर्म का युद्ध कभी नहीं लड़ सकता। समय आने पर मैं स्वयं तुम्हें आदेश दूँगा कि कौरवों का नाश कर दो पर अभी जब तक वनवास के बारह वर्ष और अज्ञात वास का एक वर्ष व्यतीत नहीं होता तब तक राज्य करने की बात दूसरी है मैं हस्तिनापुर नगर में पाँव तक भी नहीं रख सकता।

युधिष्ठिर की ऐसी बातें सुन कर भीम चुप हो गये। तभी वहाँ पर अकस्मात् ऋषि बृहदश्व आ निकले। उन्होंने युधिष्ठिर का मलिन मुख देखा तो बोले—हे राजन्! तुम उदास क्यों हो? जब युधिष्ठिर ने उन्हें शुरू से ले कर अन्त तक की सारी घटनाएँ कह सुनाईं और बोले—अब अर्जुन तो तपस्या कर रहे हैं और हम इस इंतज़ार में हैं कि शीघ्रता से वनवास का यह समय बीत जाये ताकि हम कौरवों से अपने मन की भड़ास निकाल सकें।

ऋषि बृहदश्व बोले—हे युधिष्ठिर! समयानुसार सभी काम स्वयंमेव हो जाता है। अब जब तक तुम्हारे दिन दोबारा नहीं फिरते, तब तक तुम प्रतीक्षा करो। धीरज का फल सदा मीठा होता है। और रही तुम्हारे हारने की बात तो मैं तुमसे कहूँ कि दिन बुरे हों तो आदमी को गिरने के बहाने मिल ही जाते हैं।

प्राचीन काल में एक निषधराज नल भी गुज़र चुके हैं। उन्हें भी जूये ने इसी प्रकार बरबाद कर दिया था। पर समय आने पर वह भी अपने राज्य को प्राप्त हो गये थे। तुम्हारा भी समय आ जायेगा।

पर युधिष्ठिर ने जब निषधराज नल के बारे में कुछ और जानना चाहा तब ऋषि बृहदश्व ने उन्हें राजा नल की पूरी कथा सुनाई। युधिष्ठिर ध्यान से सुनने लगे।

नल-दमयंती

ऋषि बृहदश्व ने कहा---हे युधिष्ठिर ! निषध देश में बहुत समय पूर्व एक राजा वीरसेन नामक राज्य करते थे । उनके एक अत्यन्त रूपवान् तथा गुणवान् लड़का था जिसका नाम नल था । समय आने पर जब वह निषधदेश का राजा बना तब उन्हीं दिनों उसने एक अत्यंत लावण्यमयी तथा रूपवती लड़की दमयंती की चर्चा अपने अनुचरों के मुख से सुनी तथा कइयों को प्रशंसा करते देखा । दमयंती विदर्भ देश के राजा की पुत्री थी । दमयंती ने भी अपने देश में राजा नल के शौर्य और रूप की चर्चा सुनी । दोनों ने मन ही मन एक दूसरे को अपने दिल दे दिये ।

तब एक दिन क्या हुआ कि राजा नल जब आखेट करने एक जंगल में गये हुए थे, तब उन्हें वहाँ पर एक खूबसूरत हंस दिखा, जिसे उन्होंने किसी युक्ति से पकड़ लिया । वह हंस बहुत खूबसूरत था । पर राजा नल को तब बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि वह हंस तो मनुष्यों की तरह बोलता था । उस हंस ने राजा नल से कहा---तुम मुझे यदि छोड़ दो तो मैं तुम्हें एक बहुत अच्छा संदेश दूँ ।

राजा नल ने हंस को छोड़ दिया । हंस उड़ कर ऊपर जा बैठा और बोला---राजन् ! मैं रूपवती दमयंती के सरोवर का हंस हूँ । मैं तुम्हें रहस्य की बात बताता हूँ कि दमयंती तुम्हें मन ही मन प्यार करती है । जब सरोवर पर कोई नहीं होता तब वह घंटों मुझसे तुम्हारे बारे में बातें करती है ।

हंस की बातें सुनकर राजा नल बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी हंस के हाथों संदेश भिजवा दिया कि मैं भी उससे बहुत प्रेम करता हूँ । इस प्रकार बाद में बहुत दिनों तक यह संदेशों का आवागमन चलता रहा और तब एक दिन सब ने जाना कि दमयंती के स्वयंवर का दिन आ पहुँचा है । बड़ी दूर-दूर के देशों से राजेमहाराजे विदर्भ में उस दिन आ एकत्र हुए । राजा नल

भी अपने अत्यन्त वेगवान् रथ पर चढ़कर स्वयंवर में दमयंती को जीतने के लिए चल पड़े।

पर तभी एक विचित्र संयोग हुआ। दमयंती के रूप की प्रशंसा सुनकर चार देवता इन्द्र, कुबेर, वरुण अग्नि भी स्वयंवर में सम्मिलित होने जा रहे थे। पर रास्ते में जब उन्हें नल भी स्वयंवर में जाते मिले तब वह निराश हो गये। उन्हें लगा कि जहाँ इतना रूपवान् राजा बैठा होगा वहाँ उन्हें कौन पूछेगा। तब उन्होंने एक चाल चली। राजा नल को रोककर उन्होंने अपना असली रूप दिखाकर उससे वचन ले लिया। वचन दे देने के बाद राजा नल ने जब सुना कि वह यह चाहते हैं कि मैं जाकर दमयंती से स्वयं उनके साथ विवाह कर लेने की सिफारिश करूँ तो नल को बहुत दुःख हुआ। पर चूँकि वह वचन हार चुका था इसलिए उसे दमयंती के पास जाना पड़ा। इन्द्र ने उसे एक मंत्र बता दिया था जिसके प्रभाव से उसे कोई भी देख नहीं सकता था। दमयंती के आगे राजा नल ने स्वयं को देवताओं का दूत बताया और कहा कि तुम उनसे विवाह करलो। पर दमयन्ती ने राजा नल को पहचान लिया। दमयंती ने साफ इनकार कर दिया। राजा नल ने आकर देवताओं से बता दिया।

दूसरे दिन जब स्वयंवर की सभा आयोजित हुई तो समय पर दमयंती अपनी सखियों सहित मंडप में आई। वह जानती थी कि राजा नल भी आया हुआ होगा, इसलिए वह उसे खोजती हुई राजाओं के आगे से चल पड़ी। साथ चलते चारणों ने प्रत्येक राजा के सामने रुककर परिचय दिया लेकिन जैसे दमयंती ने कुछ नहीं सुना। वह आगे ही आगे बढ़ती गई। पर एक स्थान पर वह यह देखकर चौंक पड़ी कि वहाँ पाँच नल बैठे हुए थे। पर शीघ्र ही वह समझ गई कि इन में चार वही देवता हैं और एक असली नल है। चूँकि वह जानती थी कि देवताओं की आँखों की पुतलियाँ नहीं झपकतीं और उनके पाँव भी धरती से नहीं लगते, इसलिए उसने वास्तविक राजा नल को झट से पहचान कर उसके गले में वरमाला डाल दी।

अब तो देवताओं को भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ, और वह उन दोनों को सुखी रहने का आशीर्वाद देकर देवलोक में गमन कर गये।

नल का वनों को जाना

ऋषि बृहदश्व ने कहा--हे युधिष्ठिर! इस प्रकार जब नल और दमयंती का विवाह होगया तो सभी देवता निराश से अपने देवलोक को लौट पड़े। लेकिन जब वह जा रहे थे। रास्ते में उन्हें कलियुग मिला। वह भी दमयन्ती से विवाह करने जा रहा था। पर जब उसने सुना कि राजा नल को दमयंती ने वर लिया है तो वह बड़ा क्रोधित हुआ। वह जल्द से नगर में पहुँचा और उसने तत्काल आकाश से द्वापर को बुलाया और उससे सहायता करने कहा। पहले तो द्वापर ने उसे समझाना चाहा, लेकिन जब कलियुग उसी को नष्ट करने की धमकी देने लगा तब उसे विवश हो कर उसका साथ देना पड़ा। सच है, बुरे आदमी अपनी बुराई के भय से सब कुछ करा लेते हैं। कलियुग ने कहा--जिस प्रकार मुझे दुःख हुआ है, उसी प्रकार यदि राजा नल को भी चौगना दुःख न दिया तो कलियुग नाम नहीं।

राजमहल में जाकर दोनों जब राजा नल और उसके भाई पुष्कर के सामने पहुँचे तो कलियुग ने द्वापर को तो नल में प्रवेश कर जाने का संकेत किया और स्वयं पुष्कर के शरीर में चला गया। जब कलियुग और द्वापर दोनों भाइयों के शरीर में जा बैठे तो पहले बड़े भाई पुष्कर की मति मारी गई और उसने राजा नल को अपने साथ जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया। राजा नल की बुद्धि को भी द्वापर ने वश में कर रखा था इसलिए वह भी तत्काल तैयार होगया।

दोनों ने जुआ खेला। राजा नल शीघ्र ही सर्वस्व हार गये। पुष्कर तो कलि के वश में थे ही उन्होंने तत्काल राजा नल को नगर छोड़ कर वनों में जाने का आदेश दे दिया। राजा नल विवश थे। उन्होंने अपने दो पुत्रों

और एक कन्या को तो दमयंती के नैहर भेज दिया और स्वयं दमयंती को लेकर वन गमन कर गये।

कई दिन तो उन्होंने जिस-तिस प्रकार गुजार लिये लेकिन शीघ्र ही उनकी दशा असहनीय हो उठी। दमयंती से तो वनों की भूख सहारी नहीं गई। तब एक दिन दमयंती को एक पेड़ तले बिठा कर नल एक नदी के किनारे गये और किसी प्रकार एक मछली प्राप्त कर लाये। मछली दमयंती को पकड़ा कर वह जब पानी लेने गये तो पीछे से मछली दमयंती के हाथ से चील झपट्टा मार कर ले गई। जब राजा नल लौटे तो इससे बड़े दुःखी हुए तब वह दोनों अन्त में थक हार कर पानी ही पीकर लेट गये। प्रातः जब जागे तो फिर वही भूख सताने लगी। दमयंती तो सोई हुई थी पर नल की नींद उचट चुकी थी। राजा नल ने देखा कि निकट ही कुछ पंछी बैठे दाना चुग रहे हैं। तब राजा नल ने कुछ सोच कर अपनी धोती उतारी और उन पंछियों पर डाल दी। राजा नल ने सोचा था कि इस प्रकार वह उन पंछियों को पकड़ पाने में सफल हो जायँगे और अपनी प्राण प्यारी दमयंती की भूख मिटा सकेगें। पर वह पंछी उसकी धोती को ही लेकर आकाश में उड़ गये। वास्तव में वह कलियुग द्वारा फैलाई गई माया थे। जब दमयंती की आँख खुली और उसने अपने स्वामी को नग्न देखा तो उसने अपनी धोती आधी फाड़ कर उन्हें दे दी। इस से राजा नल का आवरण हो गया। तब वह दोनों भूखे प्यासे आगे बढ़े। फिर सारा दिन उन्हें भूखे रहना पड़ा। रात हुई तो राजा नल नें यह सोचकर कि मेरे कारण से दमयन्ती भी दुख भोग रही, उसे तो वहाँ सोती छोड़ दिया और स्वयं उठकर चला गया। वह जानता था कि जब सुबह वह उसे अपने पास नहीं देखेगी तब अपने माँ बाप के घर लौट जायेगी। और यही हुआ। सुबह जब दमयन्ती की आँख खुली तो वह बड़ी व्याकुल हुई। स्वयं को उस घोर वन में अकेली समझ कर उसकी समझ में नही आया कि क्या करे? अन्त में सोच विचार करके उसने भी अपने नैहर

जाना ही उचित समझा। पर जब वह कुछ दूर आगे बढ़ी तो यह देख कर काँप उठी कि एक बहुत बड़ा अजगर मुंह बाये उसकी ओर बढ़ा आ रहा था। निकट था कि अजगर उसे निगल ले तभी वहीं से एक शिकारी ने आकर उस अजगर पर अपने खड्ग से प्रहार किया और अजगर अपनी गति को प्राप्त हो गया। लेकिन दमयंती तो जैसे आकाश से गिर कर खजूर में अटकी उस शिकारी ने दमयंती के रूप पर मोहित हो कर उसे अपने बाहुपाशे में आबद्ध करलेना चाहा, लेकिन जब वह आगे बढ़ा और वसने वसका स्पर्श करना चाहा, तब दमयंती के शरीर से सतीत्व की लपटें निकलीं और वह वहीं जल मरा। अब दमयन्ती थोड़े से चीथड़ों में लिपटी सिमटी सी कई जंगलों को पार करती तथा कष्ट सहती अन्त में एक नगर में पहुँच गई। नगर के बच्चों ने जब उस फटे कपड़ों में लिपटी नवयौवना को देखा तो वह उसे पगली समझे और पत्थर उठा कर मारने लगे।

वह नगर चन्देरी के राजा का था। चन्देरी के राजा दमयंती के सम्बंधी थे। पर यह बात दमयंती नहीं जानती थी। वह जब बच्चों के पत्थरों से बचती भागती फिर रही थी तब एक दुमहले के कोठे पर बैठी स्त्री ने उसकी व्यथा को देख कर उसे अनुचर भेज कर ऊपर बुला लिया। वह स्त्री चन्देरी के राजा की पत्नी थी। उसने दमयंती को अपने महल में सुख सुविधा से रखलिया।

भाग्योदय

ऋषि बृहदश्व ने कहा—हे युधिष्ठिर! जब इधर विदर्भ नरेश को यह पता चला कि उनकी सुपुत्री दमयंती और दामाद राजा नल वनवन में भटक रहे हैं तो उन्होंने चहुँ ओर दूत दौड़ा दिये। शीघ्र ही दमयन्ती तो उन्हें चन्देरी नरेश के यहाँ मिल गई पर राजा नल बहुत खोज करने पर भी उन्हें नहीं मिले। कुछ दिन रुक कर विदर्भ नरेश ने फिर कुछ दूतों और ब्राह्मणों को बुला कर चहुँओर जाकर नल को ढूंढने का आदेश दिया। जब ब्राह्मण जाने लगे तो

दमयंती ने उन्हें बुला कर एक दोहा बतलाया और कहा कि इस दोहे का अर्थ जो व्यक्ति बतला दे उसे नल समझना। ब्राह्मण चले गये। उन ब्राह्मणों में एक प्रहर्णाद नाम का ब्राह्मण भी था। उसने एक दिन आकर दमयंती को संदेश दिया कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण का एक निजी सारथी है, जिसका नाम बाहुक है, उसने इस दोहे का अर्थ बतला दिया है। तब दमयंती ने अपने पिता के साथ सोचविचार करके राजा ऋतुपर्ण के पास एक निमंत्रण भिजवाया, जिसमें कहा कि दमयंती का दूसरा स्वयंवर होने जा रहा है, आप शीघ्राति शीघ्र पधारिये।

जब राजा ऋतुपर्ण को संदेश मिला, उस समय काफी समय निकल चुका था और अब दमयंती के स्वयंवर को थोड़ा सा ही समय शेष रह गया था। उन्होंने अपने सारथी बाहुक को बुला कर कहा कि हमें शीघ्र विदर्भ पहुँचना है, क्या तुम हमें वहां अति शीघ्र पहुँचा सकते हो। बाहुक ने कहा—हां! और तब बाहुक ने दो अत्यन्त वेगवान घोड़ों को रथ में जोत दिया। राजा ऋतु पर्ण को बिलकुल बिश्वास नहीं था लेकिन वह सचमुच ही समय से पूर्व वहाँ पहुँच गये। पर विदर्भ में उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वहाँ स्वयंवर की कोई तैयारी ही नहीं थी।

जब दमयंती के पिता राजा ऋतुपर्ण को अपने साथ राजमहल में लिवा ले गये तब दमयंती ने अपनी एक विशेष दासी को अस्तबल में सारथी बाहुल के पास भेजा। चतुर दासी न पल भर में ही प्रश्नोत्तर करके जान लिया कि वह सारथी नहीं, वास्तव में राजा नल हैं। तब राजा नल के पास दमगंती स्वयं आई। दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया और दोनों की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। तब दमयंती अपने पति को महल में लिवा ले गई। राजा नल का वहाँ बहुत स्वागत हुआ और उन्हें शीघ्र ही उजले वस्त्र पहना कर अलंकृत कर दिया गया। इधर जब ऋतुपर्ण को पता चला कि उनका सारथी स्वयं राजा नल थे तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने राजा

नल से आकर क्षमायाचना की। फिर ऋतुपर्ण अयोध्या लौट गये और राजा नल वहीं आराम से रहने लगे।

काफी समय गुज़र जाने के बाद राजा नल ने अपने श्वसुर के आगे यह इच्छा प्रगट की कि मैं अब अपने देश में लौटना चाहता हूँ। शीघ्र ही उनके श्वसुर ने उन्हें मणि-माणिक इत्यादि ऊँटों पर लदवा दिया और राजा नल का कारवाँ अपने देश के लिए चल पड़ा।

जब राजा नल अपने देश पहुँचा तो उसके भाई पुष्कर ने उसका स्वागत नहीं किया। पर उस समय तक चूँकि कलि और द्वापर उन दोनों के शरीर से निकल चुके थे इसलिए जब राजा नल ने अपने भाई को जुये पर आमंत्रित किया और पुष्कर सहमत हो गया तो इसबार जब उन्होंने जुआ खेला तो राजा नल जीत गये और पुष्कर सब कुछ हार गये। पर राजा नल ने अपने भाई पर दया करके उसे उसका राज्य लौटा दिया और स्वयं आराम से रहने लगे।

इतनी कथा सुनाकर ऋषि बृहदश्व ने युधिष्ठिर से कहा किजिस प्रकार राजा नल के बुरे दिन फिर गये थे इसी प्रकार तुम्हारे दिन भी फिर जायेंगे। समय आने पर सब ठीक हो जायेगा।

युधिष्ठिर ने बृहदश्व को कथा सुनाने के लिए धन्यवाद दिया और बृहदश्व उसे आशीर्वाद देकर चले गये।

नारद और लोमष

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन् ! ऋषि बृहदश्व के चले जाने के पश्चात् पांडव फिर इसी चिन्ता में लीन हो गये कि अर्जुन को कहाँ से प्राप्त किया जाये। द्रौपदी को भी अर्जुन की बहुत याद सता रही थी और चारों भाई भी अपने प्रिय भ्राता के बिना व्याकुल हो रहे थे।

उसी समय घूमते घामते वहाँ पर संयोग से नारद जी आ निकले। उन्होंने पांडवों को व्याकुल देखा तो कारण पूछा। युधिष्ठिर ने बतलाया कि

हम लोग भाई अर्जुन के बिछुड़ जाने और उसका पता न मिलने के कारण संचिंतित हैं और समझ नहीं पा रहे कि क्या किया जाये। तब नारद जी ने उन लोगों को सांत्वना दी और कहा कि कुछ ही घड़ी में यहाँ से महर्षि लोमष गुज़रने वाले हैं। वह बड़े घुमक्कड़ हैं। उन्हें सब जगह का पता रहता है। वह तुम्हें अर्जुन के बारे में भी बता देंगे कि वह कहाँ है।

नारद जी के ऐसे वचन सुनकर चारों भाई अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। उन्होंने नारद जी का हर प्रकार से स्वागत किया और उनके चले जाने पर महर्षि लोमष की प्रतीक्षा करने लगे।

जब काफी समय बीत गया तो लोमष महर्षि आये। पांडवों ने उनका भी यथोचित आदर सत्कार किया और उन्हें उच्च आसन पर बिठाया। कुशल मंगल के बाद युधिष्ठिर अपने भाई अर्जुन का हाल उनसे कहा और पूछा कि महाराज कृपा करके हमें बतायें कि अर्जुन किस हालत में हैं और कहाँ रह रहे हैं।

तब महर्षि लोमष ने उन से कहा— अर्जुन तो बहुत प्रसन्न हैं। वह तो सशरीर स्वर्ग में जा पहुँचे हैं और वहाँ इन्द्र के साथ रह रहे हैं। उन्होंने गंधर्वों से गायन विद्या और नृत्य कला सीख ली है। इन्द्र लोक की और भी सभी कलाओं में वह पारंगत हो गये हैं। तपस्या करके उन्होंने भगवान शंकर से महास्त्र पाशुपत की भी प्राप्ति करली है। वहाँ पर वह बहुत सुख से रह रहे हैं मैं स्वयं उनसे मिलकर आ रहा हूँ।

महर्षि लोमष की ऐसी बातें सुनकर पांडव बहुत प्रसन्न हुए। पर जब लोमष जाने लगे तब युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर कहा--महाराज! ऐसा कौन सा उपाय हो सकता है जिससे हम अर्जुन को प्राप्त कर लें। तब महर्षि ने कहा कि इसके लिए तो सरलतम उपाय यही है कि आप लोग मेरे साथ तीर्थों में भ्रमण करने चलिये। वहाँ अर्जुन भी आयेंगे, तब आप उनसे मिल जायेंगे

महर्षि लोमष का ऐसा विचार सुनकर सभी पांडव तथा द्रौपदी तत्काल उनके साथ जाने को तैयार हो गये। सभी को उन्होंने वहीं छोड़ा और महर्षि के पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे चल पड़े।

तीर्थ-यात्रा

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! तब विभिन्न वनप्रांतरों, पर्वतों, तीर्थों तथा उपत्यकाओं में घूमते घामते चारों पांडव, द्रौपदी तथा लोमष ऋषि प्रभास क्षेत्र में आ निकले। वहीं पर उन दिनों संयोग से सभी यादव-पुत्रों के साथ श्री कृष्ण भी बलराम समेत आये हुए थे। इससे दोनों का मिलन होगया। कृष्ण जी ने युधिष्ठिर को गले से लगाया और हाल चाल पूछा। युधिष्ठिर ने उनसे भी अर्जुन की तपस्या की बात कही जिसे सुनकर उन्होंने भी पांडवों को सांत्वना दी तथा द्रौपदी को आश्वस्त किया कि अब शीघ्र ही अर्जुन तुम लोगों से मिलने वाले हैं। कौरवों के अन्याय का हाल जानकर बलराम तथा सात्यकि तो युद्ध करने को तत्पर हो गये पर युधिष्ठिर के तथा कृष्ण जी के कहने पर तब तक रुकने को सहमत हो गये, जब तक कि उनकी बनवास की अवधि समाप्त नहीं हो जाती।

इस प्रकार आश्वस्त हो कर पांडव फिर आगे बढ़े। विभिन्न तीर्थों के दर्शन करते हुए सभी पांडव द्रौपदी सहित लोमष ऋषि के नेतृत्व में बद्रिकाश्रम के पुण्य धाम पहुँच गये।

कमल की खोज

वैशम्पायन जी कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार बद्रिकाश्रम में जब वह लोग आराम से रह रहे थे तब एक दिन द्रौपदी जब एक एकांत स्थान पर बैठी कुछ सोच रही थी तब उसके निकट हो एक अत्यंत सुगंधकारी कमल पुष्प आकर गिरा। द्रौपदी ने उसे उठा कर देखा तो उसकी विभोर कर देने वाली सुगंधि पर मुग्ध हो गई। वह उस फूल को लेकर युधिष्ठिर के पास गई

और उन्हें फूल देकर बोली—यह कितना सुन्दर फल है। तब उसने भीम को भी जाकर वह फूल दिखाया और उससे कहा—हे भीम। आप महाबली हैं। मुझे ऐसे ऐसे एक सहस्र फूल लाकर दें तो जानूँ। भीम तत्काल तैयार होकर फूल लाने चले गये। द्रौपदी ने उन्हें वह दिशा मात्र बतलाई थी जिधर से फूल आकर गिरा था। भीम पेड़ों को तोड़ते ताड़ते उसी दिशा में आगे बढ़ते गये। बहुत दूर आगे निकल जाने पर भीम का स्वयं पर थोड़ा सा गर्व हुआ। उन्हों ने सोचा मैं ही अपने चारों भाइयों को सदा बचा पाता हूँ। द्रौपदी भी मेरे बाहुबल को जानती है, इसलिए उसने केवल मुझसे ही फूल लाने को कहा। भीम ऐसी गर्वोक्तियाँ सोचते हुए जा रहे थे कि उन्हें रास्ते में एक वृद्ध बन्दर लेटा हुआ नज़र आया। वह बन्दर इतना बड़ा था कि उसके शरीर से सारा रास्ता रुका पड़ा था। भीम ने उसको पूँछ पकड़ कर एक ओर हटाना चाहा, पर वह हटा नहीं पाये। वह बन्दर अत्यंत भारी था। भीम ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी पर तब भी वह उसे टस से मस न कर पाये। जब भीम थक कर पसीने पसीने हो गये तब उस बन्दर ने आँखें खोली और मुस्करा कर बोला—हे भीम! इस संसार में केवल तुम्हीं बलवान् नहीं हो। तुम्हें मैं एक छोटा सा बन्दर मात्र नज़र आता होऊँगा पर मैं हनुमान् हूँ। तुममें कुछ गर्व पैदा हो गया था इसलिये मैंने तुम्हारे भ्रम को तोड़ दिया। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि त्रेता युग में जब राम-रावण युद्ध हुआ था तब ऐसे ऐसे महाबली मारे गये थे जिनका आज शतांश भी संसार में नज़र नहीं आता। अब तुम अपने कार्य से जाओ। कुछ ही दूर दाईं ओर तुम्हें एक कुबेर का सरोवर मिलेगा उसमें तुम्हें तुम्हारे मनोनीत फूल भी मिल जायेंगे।

हनुमान् ने ऐसा कहकर भीम का जाने का रास्ता दे दिया। भीम शीघ्र ही उस सरोवर पर पहुँच गये। सारा सरोवर कमल-पुष्पों से भरा पड़ा था। भीम जल्दी से पानी में प्रवेश कर गये। एक सहस्र फूल उन्होंने तोड़े और

बाहर निकल आये। पर जब वह चलने को उद्यत हो ही रहे थे कि उस सरोवर के रक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया। वह कुबेर द्वारा नियुक्त किये गये थे। उन्होंने भीम को फूल ले जाने से रोका। पर भीम क्रोधी स्वभाव के थे ही, वह तत्काल लड़ने को तत्पर हो गये। पल भर में ही वहाँ घमासान युद्ध होनें लगा। भीम ने बड़े-बड़े पेड़ उखाड़ कर उन लोगों पर फेंके जिस से कई तो कुचले गये और कई डर कर भाग गये। जब उन्होंने जाकर कुबेर को समाचार दिया कि सरोवर पर भयानक युद्ध हो रहा है तो कुबेर ने और सेना भेज दी। पर जब वह भी हार कर लौट आये तो कुबेर स्वयं एक बड़ी सी सेना लेकर वहाँ पहुँच गये। जब उन्होंने देखा कि वहाँ तो केवल एक व्यक्ति सभी को परास्त किये दे रहा है तो वह उस व्यक्ति के बाहु-बल पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे जाकर गले से लगा लिया और उसका नाम इत्यादि पूछा। फिर जब उन्हें पता चला कि वह तो अर्जुन तथा युधिष्ठिर का भाई भीम है तो उन्होंने उसे और भी आदर दिया और फूल ले जाने के लिए अनुमति भी दे दी। पर तब तक शेष चारों पांडव भी भीम को देखते देखते वहाँ पहुँच गये। चूँकि भीम को लौटने में देर हो गई थी इसलिए भ्रातृ-प्रेम के वशीभूत से वह स्वयं ही उसे ढूँढने निकल पड़े थे। उन्होंने भीम को जब लहू में लथ पथ देखा तो उन्होंनें जाकर उसे गले से लगा लिया। जब कुबेर ने उन्हें बतलाया कि भीम तो अत्यन्त बलवान् है तो उन्हें और भी प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर ने कुबेर से भीम की तरफ से क्षमा याचना भी की पर कुबेर ने उन्हें आश्वासन दिया और वह प्रसन्न चित्त लौट आये। द्रौपदी ने उन फूलों को जब देखा तो उसके हर्ष का पारावार न रहा। कुबेर ने उन्हें जाते हुए यह भी आदेश दिया कि जब तक अर्जुन नहीं आते तब तक आप लोग जाकर गन्धमादन नाम के पर्वत पर रहिये।

वह सभी कुबेर की आज्ञानुसार गंधमादन नाम के पर्वत पर जा कर रहने लगे। गंधमादन पर्वत अत्यन्त सुरम्य तथा सुन्दर था।

जटासुर-वध और अर्जुन की वापिसी

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन् ! गंधमादन पर्वत पर जाते समय एक विचित्र घटना घटी । एक राक्षस ने ब्राह्मण का भेष बनाया और एक दिन युधिष्ठिर, नकुल तथा द्रौपदी को अकेला समझ कर उठा ले चला । वह द्रौपदी पर मोहित हो गया था । जब वह वायु वेग से उन सब को उड़ाये लिये जा रहा था तब अकस्मात् दैवयोग से वहाँ पर भीम आ गये । उन्होंने उस राक्षस को ललकारा । उसने उन सब को बिठाया और भीम से जूझ पड़ा । पर भीम की पहली ही पटकनी में उसके प्राण निकल गये । तब निश्चिन्त हो कर वह लोग गंधमान पर्वत पर जा पहुँचे ।

वहाँ पर उन्होंने बहुत से दिन सुखपूर्वक बिताये । और तब एक दिन वह सब जब बैठे पर्वत की शोभा निहार रहे थे तब उन सब ने देखा कि आकाश से एक अत्यंत चमकदार विमान उतरा आ रहा है। वह सब उत्सुक हो उठे । जब विमान नीचे उतर आया तो उन के आश्चर्य और प्रसन्नता का यह देख कर ठिकाना न रहा कि उसमें तो स्वयं उन के भाई महाबली अर्जुन विराजमान थे । वह सब अति प्रसन्न होकर अर्जुन से गले मिलने लगे । द्रौपदी की आँखों से तो आँसू बहने लगे थे । इन्द्रलोक में रहने के कारण से अर्जुन का तेज इतना तीक्ष्ण हो गया था कि उसकी ओर अपलक देखना तक कठिन हो गया था । अर्जुन के सारे शरीर से तप का लावण्य फूटा पड़ रहा था ।

भीम और अजगर

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन् ! इस प्रकार जब उन लोगों को कभी इस वन में और कभी उस वन में भटकते दस वर्ष व्यतीत हो गये तब एक दिन युधिष्ठिर ने वापिस द्वैत वन चलने का विचार प्रगट किया । सभी भाई तत्काल सहमत हो गये । वह विभिन्न कठिनाइयाँ सहते-सहते अन्त में किसी प्रकार द्वैत वन पहुँच गए ।

वहाँ भी कुछ दिन रहकर उन्होंने वह स्थान भी छोड़ने की बात सोची। पर उन दिनों वर्षा बहुत जोरों की हो रही थी। इसलिए यह सोचा गया कि वर्षा ऋतु बीत जाये फिर चला जाय। वह वहाँ रहते हुए प्रति दिन निकट के जंगल में शिकार खेलने जाया करते थे। एक दिन जब भीम शिकार खेलने गये तो वहाँ पर एक बहुत बड़े अजगर ने उन्हें अपने पाश में पकड़ लिया। भीम ने बहुत छुड़ाने की कोशिश की लेकिन छुड़ा नहीं पाये। अजगर ने कहा--मैं बहुत दिनों का भूखा हूँ और आज तुम्हें खाऊँगा। वैसे तो मैं तुम्हारा ही पुरुषा हूँ। मेरा पिछले जन्म का नाम नहुष है। लेकिन सम्बंध रहने पर भी मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। मैं आज तुम्हें अवश्य खाऊँगा। भीम ने उसकी बातों से जान लिया कि आज इस विपत्ति से छुटकारा पाना कठिन है।

भीम तो इधर इस प्रकार आपदाग्रस्त थे, उधर जब शेष पांडवों ने देखा कि शाम हो गई है लेकिन अभी तक भीम लौटे नहीं हैं तो सबसे बड़े युधिष्ठिर ने अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को तो द्रौपदी की रक्षा के लिए छोड़ा और स्वयं भीम की खोज में चल पड़े। भटकते-भटकते अन्त में वह उस स्थान पर पहुच ही गये, जहाँ अजगर भीम को निगलने का उपक्रम कर रहा था। युधिष्ठिर इससे बड़े घबराये। उन्होंने गरजदार आवाज़ में कहा--हे सर्पराज! तुम मेरे भाई को क्यों खाते हो! इसे छोड़ दो। इसके बदले में मेरा शरीर ले लो।

अजगर बोला--ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं तो इसी को खाऊँगा। तुम्हारे छोटे से शरीर से मेरी क्षुधा शांत नहीं होगी। पर यदि तुम इसे छुड़ाने को बहुत ही उत्सुक हो तो मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर दो। उत्तर यदि सही होंगे तो मैं इसे छोड़ दूँगा।

युधिष्ठिर के सहमत होने पर अजगर न पूछा--यदि शूद्र में ब्राह्मणों की सी योग्यता हो तो क्या वह किसी भी ब्राह्मण से कम होगा?

युधिष्ठिर ने कहा--नहीं! किसी भी व्यक्ति में ब्राह्मणों की योग्यता होने

पर उसे शूद्र नहीं कहा जा सकता। तब वह अपने आप ब्राह्मणों की कोटि में आ जाता है। आदमी के कर्मों से ही उसके कुल का पता चलाना चाहिये। जातिगत बंधन तो मनुष्य द्वारा बनाये गये हैं।

युधिष्ठिर के इस उत्तर से अजगर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इसी प्रकार और भी कुछ प्रश्न किये जिनका युधिष्ठिर ने सही-सही उत्तर दे दिया। तब अजगर ने भीम को छोड़ दिया और वह दोनों अपने भाइयों के पास लौट आये।

कृष्ण और पांडव

वैशम्पायन जी बोले--हे राजन्! इस प्रकार जब वर्षा ऋतु समाप्त हो गई तो सभी पांडव द्वैतवन की ओर चल दिये। रास्ते में उनकी भेंट फिर श्री कृष्ण जी से हुई। श्री कृष्ण जी अपनी पत्नी सत्यभामा के साथ थे। युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण जी से कहा कि अब बारह वर्ष तो समाप्त हो चले हैं। अब हमें एक वर्ष अज्ञातवास में बिताना है। यदि अज्ञातवास में हम पकड़े गये तो हमें दोबारा बारह वर्ष वनवास भोगना पड़ेगा। एक वर्ष पश्चात् हमें अवश्य आपकी सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। श्री कृष्ण जी ने उन्हें पूरा तरह से सांत्वना और आश्वासन दिया कि वह अपनी अवधि समाप्त कर लें और तब कौरवों से चल कर हिसाब किया जायेगा।

सत्यभामा ने भी द्रौपदी को ढाढ़स बँधाया और कहा कि किसी प्रकार यह समय बितालो, फिर सुखी जीवन आराम से बिताना।

श्री कृष्ण जी के आश्वासन के पश्चात् वह कुछ दूर--काम्यक वन तक तो साथ-साथ चले, फिर श्री कृष्ण सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका की ओर चले गये। पांडव फिर आगे बढ़ने लगे।

काफी दूर चल आने के बाद एक नगर के निकट से बहुत सी भीड़ उन्हों ने हस्तिनापुर की ओर जाती देखी। एक ब्राह्मण को बुला कर उन्हों ने पूछा कि यह भीड़ कहाँ जा रही है? वह ब्राह्मण पाण्डवों को पहचानता था।

उसने कहा आपके भाई को कौरवोंने एक वैष्णव यज्ञ की तैयारी की है जिसके अनुसार अब वह चक्रवर्ती राजा होगें। फिर ब्राह्मण ने पांडवों से कहा--उनका एक दूत आप को भी निमन्त्रण देने के लिए खोजता फिर रहा था। आप भी हमारे साथ चलिए।

युधिष्ठिर तो इस पर चुप हो रहे, पर भीम से नहीं रहा गया। वह बढ़कर बोला--विप्रवर जाकर कौरवराज दुर्योधन से कह देना कि उनकी हमारी भेंट तो अब युद्ध में ही होगी। और वहीं पर हम उन्हें हमारी अनुपस्थिति में प्राप्त की जाने वाली इस विश्व विजय का मज़ा चखायेंगे।

वह ब्राह्मण चला गया तो पाण्डव भी अपने रास्ते पर बढ़ चले।

कर्ण-प्रतिज्ञा

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! कौरवों ने जो वैष्णव यज्ञ का आयोजन किया था उस में जब उस ब्राह्मण ने पाण्डवों की कही बातें आकर सुनाई तो कर्ण को तथा दुर्योधन के सारे शरीर में आग लग गई। दुर्योधन की आँखों से क्रोध के मारे चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह बोला--यदि मैं भीम को अपनी गदा से जमीन न सुघाऊँ तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं।

फिर उसने कर्ण से कहा कि तुम अर्जुन को समाप्त कर दो तो पांडवों का नाश फिर कोई रोक नहीं सकेगा।

तब कर्ण ने सारी सभा को सम्बोधित करते हुए कहा--मैं आज के दिन प्रतिज्ञा करता हूँ कि अर्जुन को युद्ध में समाप्त करके शेष सब पांडवों को भी जब तक मृत्यु के मुख में नहीं धकेल लूँगा तब तक पाँवों को धोऊँगा नहीं, मांस भक्षण नहीं करूँगा और चैन से नहीं बैठूँगा। जिस प्रकार यह निश्चित है कि पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया था उसी प्रकार से आज से आप यह भी निश्चित समझिये कि मेरे कहे हुए वचन भी सत्य साबित होंगे। यदि मैं यह नहीं कर पाया तो स्वयं भी जीवित नहीं रहूँगा।

तसे

कर्ण को ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर हमी लोगों ने जान लिया कि अब कौरवों और पांडवों का युद्ध अवश्यम्भावी है।

समय व्यतीत होता रहा। कौरवों ने अपना वैष्णव यज्ञ समाप्त कर लिया। अब उनको हर समय बड़ी प्रसन्नता सी रहती थी।

द्रौपदी-हरण

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! सभी पांडव जिन दिनों काम्यक वन में निवास कर रहे थे उन दिनों एक विचित्र घटना घटी। एक दिन जब सभी पांडव आखेट करने गए हुए थे तब उधर से गुजरते हुए दुर्योधन के बहनोई जयद्रथ की नज़र द्रौपदी पर पड़ी। वह उसी मार्ग से शाल्व देश को जा रहा था। वह द्रौपदी पर आसक्त हो गया और सोचने लगा कि इसे किसी प्रकार प्राप्त करना चाहिए। उस समय उसके साथ उसका दास कोटिकास्य था। वह दोनों द्रौपदी की पर्णकुटी में गये। द्रौपदी ने उन्हें देखा तो उसने उन्हें समुचित आसन पर बिठाया और बोली कि पांडव तो अभी हैं नहीं। आप लोग विराजिये, वह अभी लौटते ही होंगे। वह दोनों परस्पर कुछ संकेत करने लगे। जयद्रथ ने कोटिकास्य को आँख के संकेत से कहा कि तुम बाहर पहरा दो मैं द्रौपदी को अपने जाल में फँसाता हूँ उसके बाहर चले जाने पर जयद्रथ ने द्रौपदी के शरीर को हिरस की नज़र से देखते हुए कहा—हे सुन्दरी ! तुम तो महलों में रहने योग्य हो। इस प्रकार वन में क्यों भटक रही हो। तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अपनी पटरानी बना कर सुखपूर्वक रखूँगा।

जयद्रथ की ऐसी बातें सुनकर द्रौपदी के तन-बदन में आग लग गई। वह अत्यन्त क्रोधित स्वर में बोली नीच ! तुझे ऐसे वचन कहते लाज नहीं आती। अकेली स्त्री को देखकर ऐसा प्रस्ताव करता है। पांडव लोग यहाँ होते तो अभी तेरी जिह्वा खींच लेते। अब तेरी भलाई इसी में है कि यहाँ से निकल जा। वर्ना उनके आने पर तेरी कुशल नहीं। पर जयद्रथ तो कामांध हो रहा था। उसने द्रौपदी को क्रोधित अवस्था में देखा तो समझ गया कि यह

यूँही नहीं जायेगी। वह बोला तुम सीधे-सीधे चली चलो, वर्ना मैं तुम्हें जबरदस्ती ले जाऊंगा।

पर इस पर जब द्रौपदी उसे अपशब्द कहने लगी तो उसने बढ़कर उसे पकड़ा और बल से खींचता हुआ अपने रथ की ओर ले चला। द्रौपदी जोर जोर से पुकारने लगी। उसने पांडवों को आवाजें दीं। पर वह तो उस समय वहाँ थे नहीं, लेकिन निकट की कुटी से धौम्य ऋषि निकल आये। उन्होंने आगे बढ़ कर जयद्रथ के साथ संघर्ष करना चाहा, लेकिन कोटिकास्य ने उन्हें पकड़ लिया। असमर्थ से वह द्रौपदी के ले जाते हुए देखते रहे। जब जयद्रथ अपने रथ में भाग चला तब कोटिकस्य ने भी धौम्य ऋषि को धक्का देकर गिरा दिया और अपने रथ में बैठ कर जयद्रथ का अनुसरण करने लगा।

लेकिन दैवयोग से ऐसा हुआ कि उसी समय पांडव आ गये। उन्होंने धौम्य ऋषि की घायलावस्था देखी और भाग कर उनके निकट पहुँचे। धौम्य ऋषि ने उन्हें सब घटना बता दी। सभी जयद्रथ के पीछे भागे। वायुवेग से भी तीव्र भागने वाले भीम ने अत्यन्त तीव्रता के साथ भाग कर पल भर में ही जयद्रथ को पा लिया। उसने जयद्रथ को पकड़ कर नीचे गिरा लिया। तब तक शेष पांडव भी पहुँच गये। पहले तो जयद्रथ ने खूब मुकाबिला किया, पर शीघ्र ही उसे हार कर भागना पड़ा। वह रथ इत्यादि सब कुछ छोड़ कर भाग गया। कोटिकास्य पहले ही भाग चुका था। लेकिन अर्जुन ने जयद्रथ को फिर जा पकड़ा और उसे मारने को तैयार हो गया। लेकिन युधिष्ठिर के कहने पर उसने उसे छोड़ तो दिया, लेकिन खड्ग से उसका सर मूड़ दिया।

अब जयद्रथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। बहुत दूर जा कर उसने शांति का साँस लिया। अब उसे इस बात से बड़ी घुटन होने लगी कि पांडवों ने उसका अपमान किया है। उसको अब सिर्फ यही चिन्ता सताने लगी कि किसी प्रकार पांडवों को नीचा दिखाना चाहिये। वह ऐसी अवस्था में अपने देश भी नहीं जाना चाहता था। तब उसने कैलाश पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की जिससे

शंकर भगवान प्रसन्न हुए और प्रगट होकर जयद्रथ से वर माँगने को कहा। जयद्रथ के मन में आग तो लगी ही हुई थी। उसने कहा मैं पांडवों को हराना चाहता हूँ। शिवजी ने कहा--यह तो असंभव है। पर एक दिन के लिए मैं तुम्हें पांडवों को हराने का वरदान देता हूँ। जयद्रथ उसी से सन्तुष्ट हो गया।

युधिष्ठिर और धर्मराज

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन्! कुछ दिन तक वहीं रह कर तब पांडव द्वैत वन पहुँच गये। वहाँ वह काफी दिन तक सुखपूर्वक रहते रहे और तब एक दिन वहाँ रोता हुआ एक ब्राह्मण आया। युधिष्ठिर ने उससे रोने का कारण पूछा। वह बोला–मेरे यज्ञ की अरणी लेकर एक हिरन भाग गया है, मैं उसी के लिए रो रहा हूँ। अब मैं यज्ञ किससे करूँगा। उसकी कथा सुनकर पांडवों ने उसे आश्वासन दिया कि हम जंगल में जाते हैं और उस अरणी समेत हिरन को खोज कर लौटते हैं। इस प्रकार पांडव जब घोर जंगल में पहुँच कर हिरन खोजने लगे तो भटक गये। संध्या समय तक वह उसे खोजते रहे। पर वह नहीं मिलना था सो नहीं मिला। सारा दिन की भूख तो उन्होंने किसी प्रकार सहन करली लेकिन प्यास के मारे अब उनके प्राण गले में आ अटके। उन्होंने पानी के बिना जब अपनी जान पर बनते देखी तो नकुल को पानी की तलाश में भेजा। नकुल कुछ ही दूर चला था कि उसे एक जलाशय नजर आया। जल्दी जल्दी उसने पानी में हाथ डुबो दिया। अभी वह पानी पी भी नहीं पाया था कि उसे एक गरजदार आवाज सुनाई दी। वह रुक गया। कोई कह रहा था–पानी पीने से पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। पर नकुल को चूँकि बड़ी प्यास लगी हुई थी इसलिए वह रुका नहीं। उसने पानी पी लिया। पर यह क्या? अभी पानी उसके गले के नीचे उतर भी न पाया था कि वह बेसुध होकर नीचे गिर गया।

इधर जब दूसरे भाइयों ने नकुल को लौटने में देर लगती देखी तो उन्होंने सहदेव को उनकी खोज में भेजा। सहदेव भी उसी जलाशय पर पहुँच गया। उसने देखा नकुल वहाँ किनारे पर गिरा पड़ा था। उसने उसे पल भर देखा पर फिर पानी पीने के लिए किनारे पर जा बैठा। उसने भी ज्योंही पानी में हाथ डाले कि वही आवाज फिर सुनाई दी--रुक जाओ। पानी से पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, वर्ना तुम्हारी भी वही हालत होगी जो तुम्हारे भाई नकुल की हुई है। पर प्यास के मारे चूँकि सहदेव के पेट में आग सी लगी हुई थी इस लिए वह पानी लेकर पीने में तल्लीन हो गया। लेकिन पानी के होंठों को छूते ही उसकी भी वही हालत हुई।

यही हालत अर्जुन और भीम की भी हुई। तब युधिष्ठिर स्वयं उस सरोवर के किनारे आये। उन्होंने भी पहले पानी पीना चाहा लेकिन जब आवाज ने उनसे कहा कि पहले प्रश्नों का उत्तर दो, फिर पानी पीना, वर्ना तुम्हारी हालत भी इन्हीं की तरह से हो जायेगी, तब युधिष्ठिर रुक गये और उन्होंने कहा आप जो भी हैं पहले मेरे सामने आइये तब मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा। युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर एक बगुला उड़कर उनके सामने आ गया। पर युधिष्ठिर बोले आप अपने असली रूप में आइये। तब बगुले ने अपना असली रूप प्रगट किया। वह एक यक्ष था। उसने कहा--इस सरोवर पर जो मेरे पाँच प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी पीता है उसे मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है। इसलिए अब आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये। युधिष्ठिर ने सहमति में सर हिलाया।

यक्ष ने पाँच प्रश्न किये।

प्रथम प्रश्न था—मनुष्य को सभी खतरों से बचाने वाली कौन सी वस्तु है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया--सभी खतरों से मनुष्य को बचाने वाली एक मात्र वस्तु साहस है।

प्रश्न २ किस शास्त्र के पढ़ने से मनुष्य बुद्धिमान् बनते हैं ?

उत्तर--किसी भी शास्त्र के अध्यन से मनुष्य बुद्धिमान नहीं बनता। विद्वान व्यक्तियों की संगत से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

प्रश्न ३ संसार में कौनसी चीज पृथ्वी से अधिक पूज्यनीय है ?

उत्तर--माँ ! जो कि अपने पुत्रों के लिये जान दे देती है।

प्रश्न ४ मृत्यु के बाद मनुष्य के साथ क्या जाता है?

उत्तर--धर्म।

प्रश्न ५ संसार में सब से बड़ी अचरज की बात क्या है ?

उत्तर-केवल शोक ! और वह यह कि मनुष्य प्रतिदिन सैकड़ों लोगों को मरते देखता है, लेकिन फिर भी उसका अमरता का लोभ समाप्त नहीं होता।

इस प्रकार जब यक्ष पाँच प्रश्न कर चुका और युधिष्ठिर के उत्तर सुन चुका तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने युधिष्ठिर को पानी पीने की अनुमति देदी। पानी पीकर युधिष्ठिर शांत हो गये। तब यक्ष ने उनसे कहा-मैं तुम्हारे विवेक, बुद्धि, शीलता तथा धर्म पर बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए तुम वर माँगो।

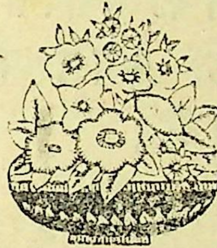
युधिष्ठिर बोले—यदि आप मुझसे प्रसन्न ही हैं तो आप उस हिरण को ढूँढ़ दीजिये जो कि ब्राह्मण की अरणी लेकर भागा है।

यक्ष ने कहा--वह तो सब मेरी माया थी। अरणी ब्राह्मण को मिल चुकी है। तुम और वर माँगो। बताओ तुम अपने कौन से भाई को जीवित कराना चाहते हो।

युधिष्ठिर बोले--नकुल को आप जीवित कर दीजिये। इस पर यक्ष को बड़ा आश्चर्य हुआ वह बोला--इस का क्या कारण है कि अर्जुन और भीम से अत्यंत स्नेह होने पर भी तुमने नकुल को जीवित कराने की इच्छा प्रगट की है।

युधिष्ठिर ने कहा--इस कारण से क्यों कि माता कुंती के लिए तो मैं जीवित हूँ ही, लेकिन माद्री का कुल चलाने वाला कोई नहीं है। मैं समता में विश्वास करने वाला हूँ। इसलिए स्नेह रहते हुए भी मैंने नकुल को माँगा है।

यक्ष युधिष्ठिर की इस बात से और भी प्रसन्न हो गये। उन्होंने चारों भाइयों को जीवित कर दिया। अब तो सभी ने भर पेट पानी पिया और खुश खुश लौट आये। यक्ष ने उन्हें इस बात का भी विश्वास दिला दिया था कि आप विराट नगर में जाकर अज्ञात वास कीजिये। इससे आप को वहाँ कोई भी पहचान न सकेगा।



वनपर्व

अज्ञात वास

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन् ! अब जो कथा हम आप से कहते हैं वह है पांडवों के अज्ञातवास को। यक्ष की कही हुई बात के अनुसार युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों से कहा कि हमलोग विराट नगर में चल कर रहते हैं। वह नगर यहाँ से काफी दूर भी नहीं है, दूसरे वहाँ हम भेष तबदील करके रहेंगे जिससे हमारे पहचाने जाने की संभावना भी समाप्त हो जायेगी । भीम अर्जुन, नकुल और सहदेव को युधिष्ठिर की यह युक्ति पसन्द आई और उन्होंने अपनी सहमति प्रगट कर दी ।

तब उनलोगों ने जो भेष धारण किये वह इस प्रकार थे । युधिष्ठिर ने तो कंक नाम के एक ब्राह्मण जैसा भेष बना लिया, और अर्जुन चूँकि गाना तथा नाचना जानते थे इसलिए उसने सोचा कि मैं विराटनगर में राजसी नृत्यशाला में स्थान प्राप्त कर लूँगा । भीम ने रसोइये का सा भेष धारण कर लिया और अपना नाम बल्लव रख लिया । नकुल ने ग्रंथिक नाम से स्वयं को घुड़शाला का घुड़सर बना लिया और सहदेव गोपाल नाम से गोशाला के संरक्षक सरीखे बन गये ।

इसके बाद सभी जंगलों को पार करते हुए विराटनगर के विराट द्वार पर पहुँच गये। वहाँ पर बाहर ही एक ऊँचे से पेड़ पर चढ़ कर अर्जुन ने सभी के अस्त्र शस्त्र एक बड़ी सी टहनी से बाँध कर छिपा दिये । अर्जुन को अपना गांडीव छोड़ते हुए और भीम को अपनी गदा जुदा करते हुए बड़ा कष्ट हुआ । नकुल ने भी अपनी प्यारी तलवार को म्यान समेत उस टहनी में छुपा दिया । इस डर से कि कहीं कोई उस पेड़ पर चढ़ कर उनके इन अस्त्रों

को न ले जाये, भीम ने निकट के श्मशान घाट से एक मुर्दे को उखाड़ लाकर उस पेड़ की एक लटकी टहनी से बाँध दिया, जिससे कि वह पेड़ कुछ रहस्यमय तथा भयानक सा हो उठा। अब तो जो व्यक्ति उस पेड़ को देखता तो भय से निकट से ही न गुज़रता।

इसके बाद सभी लोग विराटनगर में प्रविष्ट हो गये।

विराटनगर में पांडव

वशम्पायन जी ने कहा—हे राजन! विराट नगर में राजदरबार लगा था। बड़े-बड़े सभासद् बैठे थे। तभी दूत ने आकर सूचना दी कि एक दीन हीन ब्राह्मण सभा में आना चाहता है। विराटनगर के राजा ने आज्ञा दे दी। यह ब्राह्मण, युधिष्ठिर थे जो कि योजना के अनुसार भेष बदल कर उपस्थित हुए थे। युधिष्ठिर ने नमस्कार किया और फिर सर उठा कर बोले—महाराज! मैं दीन हीन ब्राह्मण हूँ, आश्रय चाहता हूँ। विराटराजा ने पूछा—कुछ काम धाम भी जानते हो? युधिष्ठिर बोले—महाराज! मैं तो पांडवों के यहाँ पहले नौकर था और वहाँ उनकी तरफ से जुआ खेला करता था। जुआ खेलने में दक्ष हूँ। आप भी मुझे अपने पास इसी कार्य के लिए नौकर रख लीजिये। विराटराज को चौसर खेलने का बहुत शौक था। उन्होंने युधिष्ठिर को अपने साथ जुआ खेलने के लिए नौकर रख लिया।

तभी दूत ने आकर खबर दी कि एक नर्तक द्वार पर आया है। आज्ञा हुई और वह अन्दर आ गया। नर्तक के भेष में वह अर्जुन था। वह बोला—महाराज! मेरा नाम बृहन्नला है। मैं पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ का बहुत प्रसिद्ध नर्तक था, किन्तु जब पांडवों को वनवास के लिए जाना पड़ा तो मैं बेकार हो गया। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे कोई कार्य दीजिये। विराटराज ने अर्जुन को भी रनिवास में रानियों को गायन विद्या तथा नृत्य कला सिखाने के लिए और विशेष रूप से अपनी पुत्री उत्तरा को ललित कलाओं में निपुण बनाने के लिए नौकर रख लिया।

इसके बाद भीम हलवाइयों जैसे भेष किये और कड़छे इत्यादि लिये आये और उन्होंने भी उसी तरह से नौकरी की माँग की। राजा ने उन्हें भी दक्ष जानकर मुख्य रसोइया बना दिया। इसी तरह नकुल सहदेव भी वहां आकर घुड़साल और गोशाला में स्थान प्राप्त करने में सफल होगये।

इस प्रकार पाँचों भाइयों की वहाँ पर नियुक्ति हो गई तो उन्हें द्रौपदी की चिन्ता होने लगी। पर द्रौपदी चतुर थी। उसने रनिवास में रानियों की शृंगार प्रसाधन में सहयोग देने के कार्य में स्थान प्राप्त कर लिया और जब सभी इस तरह अपने अपने स्थान पर लग गये तो उन्हें चिन्ता के दानव से छुटकारा मिल गया। सभी अपना कार्य बड़ी तत्परता से करते थे जिससे सभी उनसे प्रसन्न रहते और उन्हें अधिक कष्ट नहीं होने देते।

जीमूत का अन्त

वैशम्पायन जी कहते हैं---हे राजन्! इस प्रकार जब पांडवों को रहते हुए काफी समय बीत गया तो एक दिन वहाँ बड़ी विचित्र घटना घटी। उस दिन विराट नगर में वर्ष के सम्पूर्ण होने के तथा नये वर्ष के शुभारम्भ होने के उपलक्ष में एक बड़ा समारोह हो रहा था। दूर दूर से लोग वहाँ आकर अपने चमत्कार दिखा रहे थे। नगर के सभी लोग एक बिशाल मंडप में एकत्र हुए थे और कुछ तो खेल तमाशे कर रहे थे और कुछ देख रहे थे। विराटराज अपने सिंहासन पर बैठे लोगों के उपहार स्वीकार कर रहे थे और लोगों द्वारा खेल देख कर आनन्दित हो रहे थे। उस अवसर पर ऐसा हुआ कि पहलवानों ने परस्पर मल्लयुद्ध किया। वहीं पर एक जीमूत नाम का पहलवान था जिसने बारी-बारी से सभी पहलवानों को हरा दिया। वह कहीं किसी दूसरे नगर से आया था। उसने विराट नगर के ख्यातिप्राप्त पहलवान सिंधुवर्ण को भी एक ही मुष्टिका में हरा दिया। सब के हार जाने पर उसने जोर से ललकारा कि कोई इस नगर में और है, जो मुझसे मल्ल युद्ध करे। पर उस समय कोई भी

पहलवान ऐसा न बचा था जिसे जीमूत ने न हराया हो। जो थोड़े बहुत थे भी, वह भय के मारे ऐसा साहस भी न कर सकते थे। जब कोई भी जीमूत के सामने नहीं आया तब उसने ज़ोर से ललकार कर विराटराज से कहा—महाराज! अब आप के नगर में कोई ऐसा पहलवान नहीं है जो मुझे हरा सके, इसलिए आप मुझे विजय-पत्र प्रदान कीजिए। अब राजा बड़े संकट में पड़े। कोई दूसरे देश का पहलवान आकर इस प्रकार उनके नगर से विजयश्री का हार ले जाये, यह उन्हें सह्य नहीं था। वह चिंतित हो उठे। पर युधिष्ठिर ने उन्हें इस संकट से बचा लिया। उसने कहा—महाराज वैसे तो मुझे आपके कार्यों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं लेकिन मैं एक निवेदन करता हूँ। वह यह कि आपका जो रसोइया बल्लव है वह बहुत अच्छा पहलवान भी है। आप उसे बुलाकर इस से लड़ाइए। आप निश्चित रूप से जान लीजिए कि वह जीमूत को हरा देगा।

युधिष्ठिर की बात पर पहले तो विराटराज को विश्वास नहीं हुआ लेकिन अपने विशेष अनुचर कंकभट्ट (युधिष्ठिर) का आग्रह देखकर उन्होंने बल्लभ को बुला भेजा। बल्लभ ने अपने भाई की आज्ञा को शिरोधार्य किया और अखाड़े में कूद गया। जीमूत और बल्लभ (भीम) जब परस्पर मल्लयुद्ध करने लगे तो आकाश को हिला देने वाला एक जोर का गर्जन हु-। और पृथ्वी हिल उठी। पहले तो भीम ने जीमूत को ढील दी, जिससे लोगों ने समझा कि बल्लभ हार जायगा, लेकिन शीघ्र ही जब जीमूत थक गया तो भीम ने उसे मुष्टिकाओं के प्रहार से पहले तो अधमरा कर दिया और फिर उसे दोनों हाथों से उठाकर इतनी जोर से जमीन पर पटका कि वह सदा के लिए इस संसार से उठ गया।

अपने रसोइये के अद्भुत पराक्रम को देख कर पहले तो विराटराज बड़े चकित हुये पर फिर प्रसन्न हो कर उन्होंने भीम से कहा—हम तुम्हारे पराक्रम से बहुत खुश हैं। हमें और भी कुछ चमत्कार दिखाओ।

बल्लभ ने सर झुका कर कहा—महाराज! आप जो आज्ञा करें, सो मैं करने को तैयार हूँ।

विराटराज बोले—क्या तुम हाथियों से युद्ध कर सकते हो?

बल्लभ (भीम) जो कि सहस्रों हाथियों का सा बल रखता था, भला इस छोटी सी बात से क्यों घबराने लगा। उसने कहा—महाराज! आप हाथी को बुलवाइये।

हाथी आ गया और भीम निहत्था उससे जूझ पड़ा। हाथी को भी पहले तो भीम ने थका दिया और फिर उसकी सूँड़ मरोड़ कर इतनी जोर का झटका दिया कि हाथी पीड़ा के मारे जोर से चिंघाड़ता हुआ जंगल की ओर भाग गया।

इससे विराटराज और भी प्रसन्न हुए। तब उन्होंने भीम से कहा कि तुम सिंह से भी लड़ कर दिखलाओ। उनके लिए अब एक खेल जैसा हो गया था। पर इससे ऊपर चिकसारी में बैठी रानियों के साथ इस तमाशे को देखती द्रौपदी को बड़ा दुःख हुआ। वह वहाँ बैठी बैठी करवटें लेने लगी। उसकी इस व्याकुलता को देख कर सभी रानियाँ उसे सताने लगीं। रानियाँ चूँकि इस खेल से बहुत खुश हो रहीं थीं इसलिए उन्होंने द्रौपदी की आकुलता से यह जाना कि यह उस महाबली व्यक्ति पर आसक्त हो गई है। वह उसे ताने देने लगीं। पहले तो द्रौपदी का जी चाहा कि स्वयं को प्रगट कर दे पर फिर समय की गति को पहचान कर मौन हो रही और उनके ताने सहती रही।

भीम ने उस सिंह को भी युद्ध में पछाड़ दिया। जब उसने सिंह का जबड़ा पकड़ कर बीच में से फाड़ दिया तो सारी जनता हर्ष के मारे पागल हो कर करतल ध्वनि करने लगी। तब तक संध्या हो चुकी थी। राजा विराट के आदेशानुसार तब उस विजय के साथ ही वर्ष का अभिनय समारोह समाप्त कर दिया गया। कई दिन तक सारे नगर में रसोइये के भेष में भीम की प्रशंसा होतीर ही।

कीचक-वध

वैशम्पायन जी बोले--हे राजन् ! इस प्रकार पांडवों को विराट के यहां रहते दस मास व्यतीत हो गये। इस बीच में कोई ऐसी घटना नहीं हुई जो उल्लेखनीय हो। पर दस मास पश्चात्, एक दिन ऐसा हुआ कि रानी सुदेष्णा का भाई कीचक रनिवास में अपनी बहन से मिलने आया। वह विराटराज का सेनापति था। उससे सभी डरते थे। वह जो चाहता था कर लेता था। उस दिन रनिवास में अपनी बहन से मिलकर जब वह वापिस लौट रहा था तब रास्ते में उसे द्रौपदी नज़र आ गई। वह उसकी मोहनी मूरत देख कर उस पर आसक्त हो गया। उसने वापिस लौट कर अपनी बहन से पूछा कि यह सुन्दरी कौन है। सुदेष्णा ने कहा--यह सैरंध्री नाम की मेरी दासी है। कीचक ने कहा--मैं इस पर मोहित हो गया हूँ। इससे विवाह करना चाहता हूँ। सुदेष्णा ने भाई की यह बात सुन कर कहा--मैं इससे कुछ नहीं कह सकती तुम उससे पूछ लो, यदि वह तैयार हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।

तब कीचक द्रौपदी के पास गया और बोला--हे सुन्दरी ! तुम इतना रूप लेकर भी इस प्रकार सेवाकार्य कर रही हो, जिससे मुझे ऐसा लगता है कि तुम जैसी अप्सरा को तो किसी सेनापति की पत्नी होना चाहिए था। मैं चाहता हूँ कि तुम इस दासी वृत्ति को छोड़ दो और मेरे साथ मेरे रनिवास में चलो। वहाँ पर सभी रानियाँ तुम्हारी दासता करेंगी। एक बात जान लो कि यौवन तो अस्थायी है। इसको चले ही जाना है। बस इसी यौवन काल में जितनी चाहो सुखद स्मृतियाँ बना लो ताकि बुढ़ापे के भयानक पंजे में इन्हें याद कर करके सुख अनुभव कर सको। इसलिए हे नवयौवना नारी ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी विनती को स्वीकार करके तुम मुझे कृत कृत्य करदो।

दुराचारी कीचक की ऐसी पापभरी बातों से द्रौपदी को बहुत दुःख हुआ पर उसने स्वयं पर संयम रखते हुए उससे सिर्फ इतना कहा—महाशय ! किसी

पराई स्त्री को देखना अथवा उससे एकांत में बात करना सज्जनों का काम नहीं हैं, सो आप अपना कार्य कीजिये और मुझे इसी प्रकार दासी ही रहने दीजिए। आपको मालूम होना चाहिए कि मैं पाँच गंधर्वों द्वारा एक विवाहित स्त्री हूँ। यदि उनमें से किसी को पता चल गया कि आपके मन में मेरे प्रति कोई बुरा भाव उत्पन्न हुआ है, तो फिर आपकी कुशल नहीं।

द्रौपदी ने स्पष्ट रूप से एक सन्नारी की तरह बुरे व्यक्ति कीचक को समझाया और चली गई। पर कीचक के सर पर वासना का भूत सवार था। उसने द्रौपदी के कमरे की ओर जाकर उसका कुंडा खट-खटाया, पर द्रौपदी ने द्वार नहीं खोला, और उसे फटकार दिया। कीचक उस दिन तो वापिस चला गया, पर दूसरे दिन फिर आ गया। द्रौपदी फिर अपने कमरे में बन्द हो कर बैठ गई। इससे कीचक को बड़ा दुःख हुआ। वह बहुत चतुर था। उसने एक षड्यन्त्र सोचा और अपनी बहन के पास जाकर बोला--बहन, सुदेष्णा! इस कार्य में मुझे आपकी सहायता चाहिए। सुदेष्णा ने पूछा--कैसी सहायता? कीचक ने कहा--द्रौपदी तैयार तो हो गई है, पर वह आपके भय से मेरे महल में आने को तैयार नहीं है। इसलिए ऐसा है कि कल मैं एक भोज का प्रबन्ध कर रहा हूँ। तुम्हें भी निमंत्रण भेजूंगा, पर आना नहीं; तुम सेरंध्री को भेज देना। वह जब पकवान लेने आयेगी तब उसे कोई भय नहीं रहेगा।

भोली बहन, चालाक भाई की इन बातों में आगई। दूसरे दिन निमंत्रण आया। सुदेष्णा नहीं गई। जब संध्या होने को आई तब सुदेष्णा ने सेरंध्री को थाल दिया और कहने लगी कि जाकर भाई कीचक के यहाँ से निमंत्रण के पकवान ले आओ।

सुदेष्णा की बात सुन कर द्रौपदी बहुत घबराई। उसने उससे कहा--महारानी जी! आप वहाँ मुझे नहीं भेजिये, मुझे यहाँ पर और भी कार्य हैं। द्रौपदी की इस बात से सुदेष्णा ने समझा कि यह यंही बात को बढ़ा कर

अपनी सच्चाई प्रगट कर रही है। वह बोली--नहीं। तुम्हें जाना ही होगा। तुम दासी हो। तुम्हारा धर्म है कि स्वामी का कहना मानो। विवश होकर द्रौपदी को वहाँ जाना पड़ा। कीचक तो उसकी इंतज़ार कर ही रहा था। वह उसे पकवान देने के बहाने से अन्दर के कमरे में ले गया और उससे थाल तो लेकर उसने एक ओर रख दिया और फिर उससे अपनी कामवासना शांत करने के लिए आगे बढ़ा। द्रौपदी पापाचारी का आशय समझ गई। उसने गरज कर कहा--ओ पापी नीच! अपना धर्म छोड़ कर जो तूने मुझे इस प्रकार व्यथित किया है, मैं तुझे चेताये देती हूँ कि इसी प्रकार यदि मेरे गंधर्व पतियों ने भी तुम्हें पीड़ित नहीं किया तो मेरा जीवन यूँही असफल रहा। मैं तुम्हें फिर एक बार कहना चाहती हूँ कि तू समझ से काम ले और इस नीच काम को छोड़ दे। वर्ना तेरा नाश निकट ही है।

किन्तु कीचक ने उसकी एक न सुनी। विनाश काले विपरीत बुद्धि। वह कामांध था। आगे बढ़ा। निकट था कि वह द्रौपदी की बाह पकड़ कर उसे अपनी बाहों में भर ले, कि द्रौपदी ने कीचक को जोर का धक्का दिया। वह नीचे गिर गया। द्रौपदी ने निकट रखे थाल को उसके सर पर जोर से मारा और महल से भाग कर सुदेष्णा के पास पहुँच गई। उसने रोते कलपते हुए सुदेष्णा से कहा--मैंने तो आप से पहले ही कहा था कि आप मुझे वहाँ नहीं भेजिये, पर आप नहीं मानीं। अब आप यह सच जान लीजिये कि मेरे गंधर्व पतियों से आपका भाई अब बच नहीं सकता। सुदेष्णा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे द्रौपदी की सच्चाई अब पता लगी। उसे अपने भाई के कुकृत्य पर दुःख भी हुआ, पर उसने कुछ कहा नहीं।

रात को जब सारे लोग सो रहे थे तब द्रौपदी चुपके से अपने शयन-कक्ष से निकली और रसोईघर के निकट भीम के शयनकक्ष में चली गई। भीम उस समय सो रहे थे। द्रौपदी ने धीरे से उसे जगाया और जब भीम जाग गये तो द्रौपदी रोने लगी। वह रोते हुए बोली प्राणनाथ! क्या इसी

दिन के दिखाने को आप जैसे वीरों ने मुझ से विवाह किया था। क्या आपको यह देखकर लाज नहीं आती कि मेरे शरीर को सभी लोग भोगना चाहते हैं। वह मेरा अपमान करते हैं और आप सभी मौन हैं। दुर्योधन ने मुझे अश्लील निमंत्रण दिया और दुःशासन ने मेरे बाल खींचे। अब कीचक ने भी मेरा अपमान किया है। मैं तो यह भी देख रही हूँ कि विराट-राज की नज़र साफ नहीं है। वह भी मुझे लालायित दृष्टि से घूरते रहते हैं। क्या मैं अपमान सहने को ही उत्पन्न हुई हूँ ?

भीम जब सब बात समझ गया तब बोला--द्रौपदी मैं क्या करूँ ? मैं धर्मराज के वचनों में बंधा हूँ। वर्ना तो जब दुःशासन ने तुम्हारा चीर खींचा था, उसे उसी समय यमलोक पठा दिया होता। इसके लिए तुम धर्मराज से जा कर कहो। मैं तो स्वयं उनकी विनम्रता से तंग आ गया हूँ। रही बात, कीचक की, सो तुम अब ऐसा करो कि बिना धर्मराज को बताये, एक षड्यंत्र करें। कल जब तुम्हारे पास कीचक फिर आये, तो उसे तुम नृत्यशाला में रात के समय बुलाओ। वह कामाचारी वहाँ जरूर आयेगा और तब मैं उसे उसके किये का दंड दूँगा।

द्रौपदी भीम की इस बात से सहमत हो कर चली गइ। दूसरे दिन जब उसके पास कीचक पहुँचा तो उसने भीम के कहे अनुसार उससे रात को नृत्यशाला में मिलने को कहा। कीचक बड़ा प्रसन्न हुआ। पल पल को उसने साल साल की तरह किसी प्रकार काटा और रात होते ही नृत्यशाला की ओर चल दिया।

वहाँ जाकर उसने देखा कि भीतर के कक्ष में एक बिस्तर बिछा पड़ा है और उस पर एक स्त्री लेटी है। कक्ष में अँधेरा पहले से ही हो रहा था। कीचक समझ गया कि द्रौपदी लेटी है। उसने आगे बढ़ कर उस स्त्री के शरीर का स्पर्श किया और निकट ही बिस्तर पर बैठते हुए बोला--सेरंध्री ! तुम आ गईं। सच ही तुम कितनी ही सुन्दर हो ! आज तुम्हारे शरीर का

स्पर्श करके मैं सफल हुआ। मेरी प्रसन्नता का आज पारावार नहीं है। पर चेहरे पर से यह घूँघट तो उठाओ ताकि मैं तुम्हारी रूप रश्मि पर स्वयं को न्योछावर कर पाऊँ। यह कहकर उसने ज्योंही उसका वस्त्र खींचा तो यह देख कर चौंक पड़ा कि वह सैरंध्री नहीं, वह तो बड़ी बड़ी मूछों वाला उनका रसोइया है। उसे तब बड़ा क्रोध आया। उसने गरज कर कहा--तुम यहाँ क्या करने आए हो।

तब वल्लव के भेष में भीम ने उसे मुष्टिकाओ के प्रहार से नीचे गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़ कर बोला-- नीच ! अधम ! आज तेरा अन्त निकट आ गया है। जिस स्त्री के स्पर्श की तूने कामना की थी उसी सती के तेज से आज तेरी इह लीला समाप्त हो जायगी।

तब तक दरवाजे के पीछे छुपी हुई द्रौपदी भी बाहर निकल आई। कीचक को युद्ध करते देख कर द्रौपदी ने भीम से कहा--इस नीच को आप समाप्त ही कर दीजिए।

द्रौपदी के ऐसा कहने पर भीम ने कीचक को और हाथ पाँव पटकने का अवसर नहीं दिया। उसने उसका गला दोनों हाथों में लेकर जोर से दबाया और कीचक एक जोर की चीख मारता हुआ ठंडा होगया। जब भीम ने देखा कि यह मर गया है तब वह खड़ा होगया और उसने द्रौपदी से कहा कि तुम जाओ अब। द्रौपदी चली गई तो भीम भी जाकर अपने शयनकक्ष में सो गया। कीचक के वध के बारे में कोई जान नहीं सका।

कीचक का अग्नि-संस्कार

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन् ! सुबह होते ही सारे विराट नगर में खलबली मचगई। सेनापति कीचक के मारे जाने के समाचार ने राज-महल में तहलका मचा दिया। जब सुदेष्णा को यह पता चला तो उसने समझा कि इसमें जरूर उसकी दासी द्रौपदी का हाथ है। उसने उसे बुलाया और

उससे से पूछा। द्रौपदी बोली--उसे मेरे गंधर्व पतिने उसकी नीचता का दंड दिया है। धीरे धीरे इस बात का सब को पता चल गया कि कीचक की मृत्यु सरंध्री के कारण हुई है। इससे कीचक के दूसरे भाइयों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने जाकरद्रौपदी को पकड़ लिया और कहा कि चूंकि तुम्हारे कारण हमारे भाई की जान गई है इस लिए हम तुम्हें ही उसके साथ चितापर बिठायेंगे। द्रौपदी इस बात पर जोर जोर से विलाप करने लगी। पर किसीने उसके विलाप पर ध्यान नहीं दिया और उसे जबरदस्ती अपने साथ शमशान-घाट लेगए। पर द्रौपदी के रोने को आवाज जब भीम के कक्ष में गई और उसने बाहर निकल कर जब सारा समाचार मालूम कर लिया तो शीघ्रता से उसने गंधर्वों का सा भेष बनाया और शमशान घाट तरफ भाग चला।

वहां पहुच कर उसने देखा कि एक बहुत बड़ी चिता बना दी गई है जिस पर कीचक का शरीर पड़ा हुआ है और द्रौपदी को बांध कर उस पर डालने का आयोजन किया जा रहा है। भीमने वहां जाकर एक जोर की गर्जना करके एक पेड़ उखाड़ लिया और उसे चारों ओर घुमा घुमा कर लोगों की हत्या करने लगा। सैंकड़ों को उसने जब मार दिया तो शेष सब भय से डर कर भाग गए। उसने द्रौपदी के बन्धन खोले और उस से कहा--अब तुम वापिस लौट जाओ। अब तुम्हें वहां कोई कुछ नहीं कहेगा। द्रौपदी लौट गई। भीम भी तब चुपके से दोबारा अपने वास्तविक भेष में नगर लौट गया। लेकिन जब द्रौपदी राजमहल में पहुँचो तो सभी उससे डरने लगे। लोग उसकी छाया से भी दूर भागने लगे। विराटराज ने अपनी पत्नी से कह दिया कि तुम इसको अब अपने यहां नौकर नहीं रखो वर्ना फिर नगर में यह कोई उत्पात खड़ा कर देगी जिससे अबकी बार सम्पूर्ण नाश होने की सम्भावना है।

सुदेष्णा को अपने भाई के मारे जाने का पहले ही दुःख था, लेकिन जब द्रौपदी ने उसे पूरी कहानी सुनाई और कहा कि उसके भाई ने उससे जबरदस्ती करनी चाही था तो वह उस पर तरस खा गई। लेकिन फिर भी चूंकि विरा-

राज ने उसे आदेश दिया था इस लिए उसने द्रौपदी से तत्काल वहां से चले जाने को कह दिया। पर द्रौपदी ने उससे विनती की कि आप अभी मुझे नहीं निकालिये। मुझे सिर्फ तेरह दिन के लिए अपने यहाँ और रहने दीजिए। उसके बाद मेरे गन्धर्व पति आकर मुझे ले जायेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि तब तक यहाँ सम्पूर्ण शांति रहेगी। पर आप कृपा करके मुझे तेरह दिन के लिए और यहाँ रहने दीजिए।

पांडवों के अज्ञातवास में केवल तेरह दिन रहते थे।

परामर्श

वैशम्पायन जी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार जब पांडवों के तेरह वर्ष की अवधि समाप्त होने को आई तो हस्तिनापुर के कौरवों को भी चिन्ता सताने लगी। उन्हें अपने राज्य का आधा भाग जाता दिखाई देने लगा। एक दिन दुर्योधन ने इसी का कोई उपाय सोचने के लिए अपने सभी साथियों को बुलाया और उनसे बैठकर परामर्श करने लगा। कर्ण ने कहा--इस में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। जब समय आयेगा तब देखा जायगा पर दुर्योधन पांडवों के शौर्य को जानता था इसलिए उसने अपनी दुश्चिंता व्यक्त करते हुए कहा--नहीं हमें अपने दूतों को तथा गुप्तचरों को चारों ओर भेज कर पांडवों के अज्ञातवास का रहस्य खोल देना चाहिये, जिससे उन्हें दोबारा बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़े। तब सभी दुर्योधन के इस परामर्श पर सहमत हो गये और सारे देश में पांडवों को ढूंढने के लिये अनुचरों और गुप्तचरों को भेज दिया गया।

काफी समय पीछे सभी गुप्तचर निराश से लौट आये। कहीं पर भी उन्हें पांडवों का पता न चला। सिर्फ एक अनुचर ने आकर यह बतलाया कि विराट नगर के राजा का सेनापति एक गंधर्व के हाथों मारा गया है। दुर्योधन

अनुचरों के द्वारा आये यह समाचार सुनकर और भी चिंतित हो गया। उसे इस बात का बहुत दुःख था कि पांडवों का पता नहीं चला।

पर तभी त्रिगर्त राज सुशर्मा वहां पर आया। त्रिगर्तराज सुशर्मा का विराटराज से वर्षों का वैर चला आ रहा था। कई बार वह उससे हार चुका था जिसके कारण से उसके मन में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित हुई थी। सुशर्मा को जब यह समाचार मिला कि विराटनगर का सेनापती कीचक मर गया है तो उसने अवसर अच्छा जाना और कौरवों के पास सहायता लेने पहुँच गया। दुर्योधन से उसने कहा कि इस बार तुम मेरी सहायता करो। इससे विराटराज भी तुम्हारे आधीन हो जायेगा और जब पांडवों से तुम्हारा युद्ध होगा तब मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा।

त्रिर्गतराज की ऐसी बातें सुनकर दुर्योधन पहले तो सोच में पड़ गये लेकिन जब कर्ण इत्यादि ने भी सुशर्मा के विचार से सहमति प्रगट की तो वह तैयार हो गये। राज्यविस्तार के लोभ ने आँखों पर पट्टी जो बाँध दी थी।

विराटराज पर आक्रमण

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! इस प्रकार एक दिन रात्रि के समय कौरवों और सुशर्मा की सेना ने विराटराज के मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। सुशर्मा की सेना तो दक्षिण दिशा से नगर में प्रविष्ट हुई और कौरवों की सेना उत्तर दिशा से। पहले सुशर्मा की सेना पहुँची। उस सेना ने पहले तो रास्ते में पड़ने वाली गोशाला की समस्त गऊएँ हरलीं और कुछ लोगों के हाथ हस्तिनापुर भेज दी, और फिर जगह-जगह नगर को भी लूटते खसूटते, बड़े बड़े भवनों को तहस नहस करते हुए आगे बढ़ चले। अनुचरों ने जाकर विराटराज को समाचार दिया कि सुशर्मा ने आक्रमण कर दिया है और नगर के भीतर सेना घुस आई है। विराटराज के हाथ पाँव फूल गये। पर कंक भट्ट ने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि घबराइये नहीं। आप सेना

को तैयार होने का आदेश दीजिये। सब ठीक हो जायेगा। कंक भट्ट के कहे अनुसार विराट राज ने किया। शीघ्र ही सेना तैयार हो गई। कंक भट्ट ने सारी सेना का संचालन भार संभाल लिया। पर उनकी सेना को अपने ही नगर में विदेशी सेना से टकराना पड़ा। जिससे उन्हीं की हानि अधिक हुई। बृहन्नला को छोड़ कर सभी पांडव सेना में सम्मिलित हो गये थे। नगर निवासी सब अपने अपने घरों में छुप गये थे। दोनों दिशाओं से इतनी बाँण वर्षा हुई कि आकाश आच्छादित हो गया। युद्ध के कारण नर मुंड पृथ्वी पर लोटते नजर आने लगे थे और शीघ्र ही सारी धरती रक्त स्नान सी दिखाई देने लगी। कंक भट्ट के संचालन में विराट की सेना बड़ी वीरता से लड़ी किन्तु त्रिगर्त राज सुशर्मा की सेना संख्या में अधिक थी थी इसलिए युद्ध के कई भागों में विराट की सेना उखड़ती नज़र आने लगी। पर तभी चहुँओर रात का अंधेरा व्याप्त होने लगा जिस के कारण से युद्ध कुछ देर के लिए बन्द कर देना पड़ा। लेकिन चन्द्रमा के प्रगट होते ही सहसा दोनों सेनाओं में फिर युद्ध शुरू हो गया। रात का वह युद्ध तत्काल ही भयंकर हो उठा। सैनिक जैसे पागल हो उठे थे। उन्हें प्राणों की रत्ती भर भी परवाह न रही। इधर तलवार चमकती, एक चीख सुनाई देती, और बर्षों का पला हाड़ मांस का एक मनुष्य समाप्त हो जाता।

त्रिर्गत राज सुशर्मा की सेना दिन की विजय के उल्लास में बड़ी उन्मत सी हो रही थी। उसने शीघ्र ही विराट राज की सेना को पराजित करने का उपक्रम सा कर लिया। युद्ध का दृश्य देखने से लगने लगा कि अब विराटराज हारे कि हारे। और सचमुच ही विराट राज की सेना के सैनिक शीघ्र भागने लगे। विराटराज स्वयं अंतिम च्रण तक लड़ते। उनके शस्त्र समाप्त हो चले थे। तभी सुशर्मा ने एक नागपाश फेंक कर उन्हें बाँध लिया। सुशर्मा की सेना ने विराटराज की सेना के छक्के छुड़ा दिये। सभी सैनिक एक एक

करके भागने लगे। सुशर्मा ने विजय का अपना शंख फूंक दिया और विराट राज को अपने रथ में डाल कर अपने खैमे की ओर ले चला।

पर तभी पांसा पलट गया। अब तक युधिष्ठिर सिर्फ सैन्य संचालन कर रहे थे। अब उन्होंने भीम को तथा दूसरे भाईयों को भी युद्ध करने का संकेत कर दिया और स्वयं भी धनुष बाण लेकर खड़े होगये।

विराट राज का इस प्रकार हारना उनसे नहीं देखा गया। उन्होंने स्वयं भी धनुष बाण सम्भाला और भीम को भी संकेत करके विराटराज को बचाने का आदेश दिया। भीम ने आदेश के मिलते ही अपना विकट रूप दिखाना शुरू कर दिया। अपनी गदा को घुमा कर वह जिस ओर चल देता उसी तरफ शत्रुओं से जमीन खाली हो जाती। वायु वेग से वह शत्रुओं को चीरता हुआ पलभर में ही सुशर्मा के रथ के निकट जा पहुँचा। गदा के प्रथम वार ने ही सुशर्मा के रथ के घोड़ों तथा सारथी को पृथ्वी पर सुला दिया। गदा के दूसरे वार ने सुशर्मा को अचेत कर दिया। भीमने बन्धन काटकर उसी पाश से सुशर्मा को बांधा और अपने रथ में डाल कर युधिष्ठिर के पास ले आया। त्रिगर्त की सेना ने जब अपने राजा को इस प्रकार पराजित होते देखा तो उसके पाँव उखड़ गये। सैनिक भागने लगे। शीघ्र ही विराटराज की सेना, हारी हुई बाजी दोबारा जीत गई।

अब वह जीत की खुशी में आनन्द मनाते वापस अपने नगर के भीतरी भाग की तरफ चल पड़े। युधिष्ठिर चूंकि दयावान थे इस लिए उन्होंने विराटराज से कह कर त्रिगर्तराज सुशर्मा को क्षमा दानदिया।

अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन जी बोले--हे राजन्! उधर तो उत्तर दिशा में विराटराज त्रिगर्तराज सुशर्मा से जीत गए, इधर यह हुआ कि महलों में आकर दूत ने सूचना दी कि दक्षिण दिशा से विराट नगर पर कौरवों की सेना उमड़ी चली

आ रही है। महल में उस समय केवल विराटराज के पुत्र उत्तर थे और थोड़ी सी आरक्षक सेना थी। उत्तर ने जब यह समाचार सुना तो वह भयभीत होकर वहाँ से अपनी रानियों को लेकर भागने का विचार करने लगा। पर बृहन्नला ने उससे कहा कि इस प्रकार भागना कायरता का द्योतक है। आप कृपापूर्वक ऐसा कीजिए कि जो थोड़ी बहुत सेना है उसी को लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान कीजिए। उत्तर इस बात पर बहाने बनाने लगा। वह बोला—पर मेरा रथ कौन हांकेगा यहां तो कोई सारथी ही नहीं है। बृहन्नला (अर्जुन) बोला—इसकी चिन्ता न करें। रथ मैं हाँक दूंगा। उत्तर ने कहा—अरे तुम क्या हाँकोगे, अर्जुन ने कहा—मैं इस काम में बड़ा निपुण हूँ आप तैयारी कीजिए। विवश होकर उत्तर को तैयार होना पड़ा। जब वह रथ में बैठकर चलने लगे तब रानियों ने इस बात पर विश्वास नहीं किया कि राजकुमार उत्तर जैसा भीरु उक्त युद्ध में जाकर सम्मिलित होगा। इसलिए उन्होंने बृहन्नला से कह दिया कि आप शत्रु दल को जब पराजित कर चुके तब वहाँ से उनके चीर फाड़ लाइयेगा, जिससे हमें आप की विजय का विश्वास हो सके।

अर्जुन रथ को हाँकते हुए जब नगर के बाहर पहुँचे तब दूर से आती हुई अरि सेना को देखकर उत्तर बहुत घबराये और उन्होंने अर्जुन से वापिस चलने को कहा लेकिन अर्जुन ने रथ नहीं मोड़ा। उत्तर ने रथ से छलांग लगाई और भाग खड़ा हुआ। लेकिन अर्जुन उसे दोबारा पकड़ लाये और बोले—अच्छा यदि तुम्हें युद्ध से इतना ही भय लगता है तो तुम मेरा रथ हाँको और मैं युद्ध करूंगा। पहले तो उत्तर इसके लिए भी तैयार नहीं हुआ लेकिन बाद में अर्जुन के धमकाने पर और यह कहने पर कि देखो, मैं अर्जुन हूँ। मेरे चारों भाई विराट राजा के साथ त्रिगर्त नरेश को पराजित करने गये हैं। इस लिए हमारे हारने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। अर्जुन का जब उत्तर ने वास्तविक रूप देखा तो वह निर्भय होकर लड़ाई में जाने को तैयार हो गया।

युद्धभूमि में जाने से पूर्व अर्जुन उस पेड़पर गये जहाँ उन्होंने अपने शस्त्र छुपा कर रखे थे। वहाँ से अर्जुन ने अपने बाणों के तरकश को तथा अपने प्यारे धनुष गांडीव को धारण किया और अपनी थोड़ी सी सेना को लेकर कौरवों के सामने आ पहुँचा। कौरवों की सेना का संचालन स्वयं दुर्योधन कर रहा था। उसके साथ कर्ण, अश्वस्थामा, दुश्शासन, शकुनी तथा दूसरे वोर पुरुष भी थे। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह उस युद्ध में सम्मिलित होने नहीं आये थे। अर्जुन जानते थे कि उनकी सेना थोड़ी है, इसलिए उन्हों ने जाते ही बाणों की वर्षा करनी शुरू करदी। सारी कौरवों की सेना के आगे बाणों की एक दीवार सी खड़ी हो गई जिसको बेधना उनके लिए अत्यंत कठिन हो गया। इस बाण कौशल को देखकर कौरवों को सन्देह हो गया कि बाण चलाने वाला अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं। दुर्योधन बोला—यह बड़ा अच्छा हुआ अर्जुन समय से पहिले प्रगट हो गया इस लिए बारह वर्ष के और वनवास के पांडव भागी बनेंगे। पर शकुनी ने कहा—नहीं समय से पूर्व अर्जुन प्रगट नहीं हुआ। उनकी अवधि समाप्त हो चुकी है। चूँकि हर पाँचवे वर्ष दो महीने मलमास के बढ़ते हैं इस लिए अर्जुन तेरह वर्ष तोन मास बिता कर प्रगट हुआ है। इससे दुर्योधन छुब्ध होकर गुस्से में तेज तेज बाण चलाने लगा। पर अर्जुन के सामने किसी की एक न चली। अर्जुन बाणों की दीवार बनाये उनके सभी प्रहारों को रोके रहा और स्वयं ऊपर से बाण वर्षा करकर के उनकी सेना को समाप्त करने लगा।

वह युद्ध अत्यंत ही विचित्र हुआ। धीरे-धीरे कौरवों की सारी सेना समाप्त हो चुकी। दुर्योधन और कर्ण ने बहुत उपाय किए कि किसी प्रकार यह दीवार टूट जाय, पर वह दीवार नहीं टूटनी थी सो नहीं टूटी। अन्ततः वह समय आ गया जब कौरव सेना के पाँव उखड़ गए। दुर्योधन ने जब अपनी सेना को भागते देखा तो ललकार कर उसने उसे रोकना चाहा लेकिन उस समय हर एक को अपने प्राणों की पड़ी थी। सभी भाग गए।

तभी अवसर जानकर अर्जुन ने स्वयं ही दीवार का भाग तोड़ दिया और उस में से ताक ताक कर उन लोगों पर बाण चलाने लगा। उसने दुर्योधन के घोड़ों को जख्मी कर दिया और कर्ण के सारथी को मार दिया। अश्वत्थामा के हाथी के मस्तक में उसने ऐसा भाला मारा वह कि पागलसा होकर चिंघाड़ता हुआ अपनी ही सेना को कुचलता भाग गया। शकुनी पहले ही भाग गया था। अब दुर्योधन और कर्ण के पास भी इस के अतिरिक्त कोई चारा न रहा कि वापिस लौट जाए। अर्जुन ने तब अपनी विजय का शंख फूँक दिया और बाणों की उस दीवार को गिरा दिया। फिर उसने राजकुमार उत्तर से कहा कि जाकर उन मरे हुओं सैनिकों के कुछ चीर ले आओ। उत्तर जाकर कुछ चीर ले आया। तब अर्जुन ने रथ को वापिस नगर की ओर मोड़ दिया। जितनी सेना उत्तर साथ लाया था उसमें से एक भी सिपाही नहीं मरा था।

उत्तरा का ब्याह

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! जब विराटराज अपने नगर में सुशर्मा को पराजित करके लौटे तो उन्हें पता चला कि उनका पुत्र उत्तर युद्ध-भूमि को प्रस्थान कर गया है। इससे उनके मन को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें अपने पुत्र के लौट आने की तब बिलकुल आशा न रही। लेकिन जब युधिष्ठिर ने सुना कि बृहन्नला भी साथ गया है तो उसने विराटराज को सांत्वना दी और कहा कि इसमें अब घबराने की कोई बात नहीं। बृहन्नला साथ है तो आपके बेटे का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। विराटराज बोले-- अरे वह नपुंसक उसकी क्या सहायता करेगा। पर धर्मराज ने कहा--आप देख लीजिए गा।

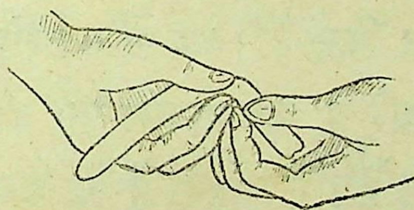
तभी दूत ने आकर सूचना दी कि राकुमार उत्तर सकुशल लौटे आ रहे है और उन्होंने शत्रु की सेना को पराजित कर दिया है। तब विराटराज बड़े

खुश हुए और अर्जुन से बोले--मुझे बड़ा आश्चर्य है कि उत्तर ने इतनी बड़ी कौरवों की सेना को कैसे हरा दिया। तब युधिष्ठिर ने कहा--मैं न आप से कहता था कि बृहन्नला के रहते उन लोगों की विजय निश्चित है। इस पर विराटराज को फिर क्रोध हो आया और उन्होंने चौसर खेलने का पासा धर्मराज के मस्तक पर मार दिया और कहा--रे मूढ़ ब्राह्मण! तुझे मेरे बेटे का अपमान करते लज्जा नहीं आती। तू उसे बृहन्नला से छोटा बता रहा है। इस बात से युधिष्ठिर को दुःख तो बड़ा हुआ लेकिन वह चुप हो रहे। तभी जब कंक भट्ट की उपस्थिति में ही राजकुमार उत्तर और बृहन्नला आ गए तो युधिष्ठिर ने राजकुमार उत्तर से पूछा कि आप सकुशल तो हैं। राजकुमार उत्तर ने कहा--मैं तो ठीक हूँ। पर यह आपके माथे में चोट कैसे लगी? इस पर विराटराज बीच में बोल उठे। यह मूढ़ ब्राह्मण यह कहता था कि यह युद्ध तुमने नहीं बृहन्नला सरीखे नपुंसक व्यक्ति ने जीता है। मुझे इसकी इस बात पर क्रोध हो आया और मैंने इसे चौसर का पांसा मार दिया। राजकुमार उत्तर ने दुःखी स्वर से कहा--हे पिता जी। यह आपने क्या किया? इस ब्राह्मण की बात सच्ची है। युद्ध बृहन्नला ने ही जीता है। और आप को सुनकर आश्चर्य होगा कि यह नाच करने वाला नर्तक नहीं बल्कि वीर पुरुष अर्जुन है। और जिसे आपने पासा मारा है यह कंक भट्ट वही अर्जुन के बड़े भाई युधिष्ठिर हैं। यह सभी भाई हमारे नगर में अज्ञात वास कर रहे थे। अब इनकी अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी है। यह बात सुनकर तो विराटराज युधिष्ठिर के पाँवों पर गिर क्षमायाचना करने लगे। युधिष्ठिर ने उन्हें उठाकर अभय दान दिया। अब तो भीम (बल्लभ) तंतिपाल (नकुल) गोपाल (सहदेव) को भी बुलाकर गले लगाया गया। सब को समुचित आदर प्रदान करने के बाद विराटराज ने अर्जुन के आगे प्रार्थना की—हे अर्जुन! तुम बहुत वीर हो। जहाँ तुमने मेरे और बहुत से सङ्कट समाप्त किए हैं वहाँ मेरी एक और चिन्ता भी समाप्त कीजिए।

मेरी बेटी उत्तरा विवाह योग्य हो चुकी है । आप उसे स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत करने की अनुकम्पा कीजिए । अर्जुन ने कहा—महाराज ! यह असम्भव है । मैं तो उतरा को अपनी बेटी बनाकर पढ़ाता रहा हूँ । मैं तो उससे विवाह नहीं कर सकता पर यदि आप आज्ञा दें तो मेरा ज्येष्ठ पुत्र अभिमन्यु द्वारका में श्रीकृष्ण के यहाँ पल रहा है । उत्तरा का विवाह आप उससे कर दीजिए ।

विराटराज ने इस में कोई आपत्ति नहीं उठाई और द्वारका में समाचार भेज दिया क्योंकि तेरह वर्ष पांडवों के समाप्त हो चुके हैं । और उन्होंने स्वयं को प्रगट कर दिया है । राजकुमारी उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से होना निश्चित हो गया है, आप बारात लेकर मत्स्य देश में आने का कष्ट करें ।

द्वारका में जब यह समाचार पहुँचा तो उन सबके हर्ष का पारावार नहीं रहा । अभिमन्यु को दूल्हा बनाकर वह बारात लिये विराट नगर में आ गये । सारे नगर में बड़े उत्सव हुए और यथासमय उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह हो गया विवाह के निमंत्रण में सभी राजाओं को निमंत्रित किया गया ।



उद्योग पर्व

विराट सभा

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन् ! इससे आगे की कथा यूँ है जब अभिमन्यु और उत्तरा विवाह के अवसर पर श्री कृष्ण, बलदेव, सात्यकि, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, और गद, प्रद्युम्न तथा साम्ब इत्यादि बहुत से न्यायप्रिय राजा मंडप में एकत्रित हुये, और जब विवाह सम्पन्न हो चुका, तो श्री कृष्ण ने उठकर एक ऊँचे स्थान से सभासदों को सम्बोधित करके कहना शुरू किया-हे न्यायप्रिय राजाओ ! आप जान चुके हैं कि अब पांडवों के तेरह वर्ष के वनवास और अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी है। इन लोगों ने अपने वचनों का पालन किया है। धर्म से यह लोग डिगे नहीं है। धर्मराज जैसा कि वह जूये में हारे थे, अब दोबारा पूर्व की शर्तों के अनुसार अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। मैं चाहता हूँ कि अब पहले एक दूत पांडवों की तरफ से कौरवों के पास जाय और कहे कि उनकी अवधि समाप्त हो चुकी है इसलिए वह अपने राज्य की मांग करते हैं। जैसा की आप जानते होंगे, संयोग ऐसा हुआ है कि कुछ दिन पूर्व विराटराज पक्ष से पांडवों को के कौरवों के साथ युद्ध करना पड़ गया है। इस लिए संभावना यह है कि अब माँगने पर कौरव पांडवों को उनका राज्य नहीं देंगे। इस लिए मैं यह भी

चाहता हूँ कि दूतत्व का जो व्यक्ति कार्य करे वह अत्यंत निपुण और योग्य हो ताकि वह विदुर जैसे नीतिज्ञों तथा भीष्म, द्रोण इत्यादि सभी के सम्मुख पांडवों की समस्या समुचित रूप से रख सके। मैंने इतना कुछ यह जो आप से कहा है वह सिर्फ इसलिए कि मैं जानना चाहता हूँ कि आप सब लोग क्या मेरी इस युक्ति से सहमत हैं।

श्री कृष्ण जी के इस सारगर्भित वक्तव्य से भला किसे असहमति हो सकती थी। सभी ने हाँ मिलाई और दूत का भेजना निश्चित हो गया। पर सात्यकि ने उठ कर एक शंका प्रगट की। उसने कहाकि क्या यह उचित नहीं कि जब तक दूत उत्तर लाये तब तक हम लोग दूसरे राजाओं से सहायता प्राप्त करके अपनी सेना की संख्या तथा अपना सैन्य दल बढ़ाले। चूँकि जैसा श्री कृष्ण ने कहा है कि कौरव चुपचाप पांडवों का राज्य शायद नहीं लौटायेंगे इस लिए यह भी प्रगट ही है वह भी दूसरे राजाओं से इसी प्रकार से सहायता मांगेंगे जैसे कि हम। इसलिए राजनीति का सिद्धांत यह है कि जिस व्यक्ति से जो आदमी सहायता पहिले मांग लेता है वह उसी का होकर रह जाता है। अस्तु मैं चाहता हूँ कि दूत के साथ साथ हमारे दूसरे दूत भी विभिन्न राजाओं के पास सहायता का निमंत्रण ले कर चले जायें ताकि समय पड़ने पर कष्ट का सामना न करना पड़े।

सात्यकि की बात भी सभी को बहुत पसंद आई। तब राजा द्रुपद का राज-पुरोहित जो कि बहुत विद्वान् था, इस कार्य पर नियुक्त किया गया कि वह कौरवों की सभा में पांडवों का संदेश लेकर जाये। उसके साथ ही दूसरे दूतों को भी विभिन्न राजाओं के यहाँ भेज दिया गया। तत्पश्चात् जो राजा वहाँ एकत्र हुए थे वह भी दोबारा तैयारी करने के लिए अपने नगरों को लौट गए। श्री कृष्ण भी बलदेव सहित द्वारिका चले गए।

सैन्य-संग्रह

वैशम्पायन जी बोले--हे राजन् ! द्रुपद का राजपुरोहित और दूसरे दूत भी चले तो गए, पर कौरवराज दुर्योधन भी मूर्ख नहीं था। जब से उसे पता चला था कि पांडवों की अवधि समाप्त हो चुकी है तब से उसकी भी रातों की नींद गायब हो गई थी। उसने पहिले से ही सभी राजाओं के पास निमंत्रण भेज रखे थे। इस लिए पांडव-दूत जहाँ-जहाँ भी पहुँचे निराश लौटे। अन्त में दुर्योधन ने तो यहाँ तक किया कि समय पर जहाँ जहाँ उसके दूत नहीं पहुँच सके थे और पांडवों के पहुँच गए वहाँ वहाँ उसने कुछ ऐसा कुचक्र खेला कि उनमें से कई राजाओं को किसी प्रकार अपना नमक खिला दिया। अब नमक खाने बाद उन्हें विवश होकर उसका साथ देना पड़ा। नकुल के मामा शल्य तक को उसने अपनी ओर मिला लिया। पांडवों को इस प्रकार अल्प संख्या में ही सहायता मिल सकी। दुर्योधन ने तो यहाँ तक किया कि जब उसे पता चला कि अर्जुन श्रीकृष्ण से सहायता माँगने जा रहे हैं तो वह भी कृष्ण के पास सेना माँगने चला गया। पर वहाँ एक विचित्र संयोग हुआ। दुर्योधन संयोग से अर्जुन से पहिले ही पहुँच गया। श्री कृष्ण उस समय सो रहे थे। दुर्योधन दम्भी तो था ही इस लिए श्रीकृष्ण के जागने की इन्तजार में वह श्री कृष्ण के पलङ्ग के सिरहाने की ओर वाले आसन पर बैठ गया। कुछ देर बाद जब अर्जुन पहुँचे तो वह श्री कृष्ण के चरणों की ओर बैठे। नींद खुलने पर भगवान की नजर सर्वप्रथम अर्जुन पर पड़ी। इसलिए वह पहले उसी को ही सहायता का वचन दे बैठे। जब वह कह चुके तब दुर्योधन खड़ा हुआ और पीछे से आगे आकर बोला---महाराजा यह कैसा न्याय है? पहले तो मैं आया था, पर आपने वचन अर्जुन को दे दिया है। श्री कृष्ण बोले--भाई ! मुझे तो इस बारे में कुछ मालूम नहीं। जिस को मैंने पहले देखा उसी से पूछ लिया। मेरे लिए तो जैसे कौरव वैसे पांडव परफिर भी क्योंकि आप दोनों ही मुझे प्रिय हैं इसलिए मैं स्वयं को धर्म-

सङ्कट में समय न डालते हुए आप दोनों से पूछता हूँ कि एक ओर तो मेरी एक अक्षोहणी सशस्त्र सेना होगी और दूसरी ओर निहत्था मैं। वह भी इस प्रतिज्ञा पर कि युद्ध नहीं करूँगा। अब आप दोनों में से जो व्यक्ति जो वस्तु चाहे माँग ले।

दुर्योधन झट से बोल पड़े—मुझे आप एक अक्षोहणी सेना दे दीजिए। लेकिन श्री कृष्ण ने कहा—पहले माँगने का अर्जुन का अधिकार है। इसलिए हे अर्जुन तुम माँगो क्या चाहते हो। अर्जुन मुस्करा कर बोले—महाराज मैं तो आपको चाहता हूँ। चाहे आप निहत्थे ही क्यों न हो। जहाँ आप होंगे वहाँ तो त्रिलोक होगा। मुझे आप से बिना एक अक्षोहणी क्या, सौ अक्षोहणी सेना भी नहीं चाहिए।

श्री कृष्ण को अर्जुन की इस बात पर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने दुर्योधन को सेना ले जाने की अनुमति दे दी। दुर्योधन हर्ष से फूला न समाया। उसे अर्जुन की दुर्मति पर हँसी भी बहुत आई।

लेकिन अर्जुन बहुत प्रसन्न था। वह दुर्योधन को हराने का पूरा सामान अब जुटा चुका था। इस प्रकार पांडवों के पक्ष में राजा युयुधान, महाबली धृष्टकेतु, सात्यकि, चेदिराज तथा जरासंध के पुत्र सहदेव इत्यादि की समस्त सेना मिलाकर सात अक्षोहणी सेना एकत्र हो गई। जब कि कौरवों की तरफ राजा भगदत्त, भूरिश्रवा, शल्य, भोज, अंधक वंशी, कुल वंशी, कृतवर्मा, सिंधु-राज, जयद्रथ, राजा सौवीर, राजा कम्बोज, तथा अन्य कई राजाओं को मिला कर कुल ग्यारह अक्षोहणी सेना इकट्ठी हो गई। दुर्योधन को अपनी विजय निश्चित नजर आ रही थी।

दूत का सभा में पहुँचना

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! द्रुपद का राज-पुरोहित जब दुर्योधन की सभा में पहुँचा तब कौरवों के लगभग सभी साथी उपस्थित थे।

पुरोहित ने दुर्योधन के आगे झुक कर अभिवादन किया और सन्देश पत्र उसके हाथ में थमाकर स्वयं एक आसन ग्रहण किया। दुर्योधन ने सन्देश पत्र अपने पुरोहित विदुर जी को दिया जिसे विदुर जी ने सभा में ऊँचे ऊँचे पढ़ कर सुना दिया। उस में यही लिखा था कि पांडवों की ओर से धर्मराज युधिष्ठिर कौरवराज दुर्योधन से यह विनती करते हैं कि चूँकि अवधि समाप्त हो चुकी है इसलिए उनके भाग का आधा राज्य उन्हें लौटा दिया जावे। विदुर जी ने उस सन्देश पत्र को पूरा पढ़ा और बैठ गए। पल भर को सभा में सन्नाटा छा गया लेकिन तत्काल ही भीष्म ने अपने स्थान से कहा---धर्मराज युधिष्ठिर की यह माँग सर्वथा उचित है। इसलिए उनका राज्य लौटा दिया जाय। पर कपटी दुर्योधन को भला यह बात क्यों सुहाने लगी। उसने कर्ण की ओर देख कर कहा कि क्यों कर्ण! क्या हाथ में आए राज्य को इस प्रकार छोड़ दिया जाय? कर्ण तो पहिले ही अर्जुन से जलते थे। वह बोले, नहीं कदापि नहीं। ऐसा किसी भी राजनीति शास्त्र में नहीं लिखा कि राज्य किसी ने किसी को माँगने से दे दिया हो। द्रोणाचार्य इस पर कुपित हो गए। उन्हों ने डाट कर कर्ण से कहा---रे मूढ़! क्या तूनें अकेले ने ही राजनीति पढ़ी है। क्या इतना भी नहीं जानता कि किसी का लिया गया राज्य कभी भी लौटाया जा सकता है।

लेकिन कर्ण को द्रोण की यह युक्ति पसन्द नहीं आई। इस पर सभा में बहस होने लगी। जब कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सका तब धृतराष्ट्र ने राजा द्रुपद के पुरोहित (दूत) से कह दिया कि तुम जाओ, शीघ्र ही हम निर्णय करके अपने दूत द्वारा उत्तर कहला भेजेंगे। राजपुरोहित लौट आए। उन्होंने सारा हाल युधिष्ठिर इत्यादि से कह दिया। अब दूत की प्रतीक्षा की जाने लगी।

दो दिन उपरान्त धृतराष्ट्र के मंत्री संजय कौरवों की तरफ से दूत बन कर आये और उन्हों ने जो सन्देशा दिया वह इस प्रकार था कि किसी भी

हालत में कौरव पांडवों को तिलभर भूमि भी देने को तैयार नहीं हैं।

इस संदेश को सुनकर युधिष्ठिर बड़े दुःखी हुए। भावी युद्ध की बात सोच कर ही वह कांप उठते थे। श्रीकृष्ण ने संजय के हाथों कहला भेजा कि कौरव चूंकि अधर्म की लड़ाई लड़ रहे हैं इसलिये उनकी हार निश्चित है। म जाकर धृतराष्ट्र से कह देना कि अब संसार में कोई ऐसा नहीं है जो उसके कुल की रक्षा कर सके।

इस प्रकार हस्तिनापुर लौटकर मंत्री ने धृतराष्ट्र को कृष्ण की कही हुई बातें कहदीं, लेकिन धृतराष्ट्र उस समय पुत्र स्नेह में पूर्णतया विवेकहीन हो चुके थे इसलिए उन्होंने सञ्जय की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

श्री कृष्ण का दूत बनना

वैशम्पायन जी कहते हैं कि--हे राजन्! सञ्जय जब लौट गये तब युधिष्ठिर बहुत चिंतित हुए। उन्हें यह दुःख सताने लगा कि अब भाई भाइयों में घोर युद्ध होगा और मानव जाति का विनाश। इसलिए उन्होंने एक बार और प्रयत्न करना उचित समझा और कृष्ण को अपने कक्ष में बुलाकर निवेदन सा करते बोले—हे जनार्दन! जो कुछ होरहा है, सो तो आप देख ही रहे हैं। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे यह भयानक संग्राम टल जाय। मेरा तो ख्याल है कि एक बार आप वहाँ दुर्योधन के पास जायें और उस समेत धृतराष्ट्र इत्यादि को युद्ध की भयंकरता का आभास दिलाकर किसी प्रकार इस बात के लिए सहमत करलें कि युद्ध न हो। दुर्योधन यदि मुझे मेरा सारा राज्य न देकर, थोड़े से गाँव भी रहने को दे देगा तो भी मैं सन्तोष करलूँगा और दुनिया इस युद्ध की विभीषिका से बच जायगी।

युधिष्ठिर की यह बात कृष्ण का भी ठीक नजर आई और वह भी हस्तिनापुर जाने के लिए तैयार होगये। जाने से पूर्व वह भीम अर्जुन तथा द्रोपदी से भी मिले। भीम अर्जुन ने तो कहा कि जैसा धर्मराज उचित जानें

करें, लेकिन द्रोपदी ने कहाँ कि आपका वहां जाना समय का खोना है। दुर्योधन इस समय मोहांध हारहा है। वह आपको तिल के बराबर भी जमीन नहीं देगा। पर फिर भी आप जाना ही चाहते हैं तो हो ही आइये। कृष्ण ने भी कहा कि हो आने में कोई हानि नहीं है। यदि युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय नजर नहीं आयेगा तो फिर वही किया जायेगा पर जितना हो सकेगा उतना मैं अपनी तरफ से भरसक युद्ध रोकने का प्रयत्न करूँगा।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने सात्यकि इत्यादि को साथ लिया और हस्तिनापुर की ओर अपने रथ में बैठ कर प्रस्थान कर गये।

संदेशा

शीघ्र ही श्री कृष्ण जी का रथ हस्तिनापुर की सीमा पर प्रवेश कर गया। जब इस बात का समाचार दुर्योधन को मिला कि अब की बार स्वयं श्री कृष्ण दूत का कार्य भार संभाले आ रहे हैं तो वह तत्काल ही अपने विशेष सभासदों सहित उनके स्वागत के लिए नगर के द्वार पर जा खड़ा हुआ। श्री कृष्ण के पहुँचने पर उसने उनका यथोचित आदर सत्कार किया और उन्हें अपने साथ राजमहल में ले आया। राजमहल में पहुँचने पर श्री कृष्ण ने विदर जी से मिलने की इच्छा प्रगट की। उस समय दर्योधन भोजन इत्यादि उनके लिये तैयार करवा चुके थे। जब कृष्ण को दुर्योधन ने चलने को उद्यत पाया तो गर्व ले बोला--आप विदुर जी के यहाँ से जल्दी ही लौट आइयेगा, क्योंकि यहाँ पर मैंने आपके लिए विशेष आयोजन से भोजन तैयार करवाया है।

पर कृष्ण जी बोले--इसके लिए मैं असमर्थ हूँ। कारण यह है कि शास्त्रों का मत है कि दूसरे के यहाँ भोजन उस समय करना चाहिये। जब या तो स्वयं पर विपत्ति पड़ी हो या फिर दूसरा अपने से अत्यधिक प्रेम करता हो। यहाँ दोनों बातें नहीं हैं। प्रेम तुम नहीं करते और विपत्ति मुझ पर नहीं पड़ी।

श्री कृष्ण इतनी बात कहकर विदुर के घर चले गये। खाना इत्यादि उन्होंने वहीं खाया और आराम भी वहीं किया।

प्रातः जब सभा लगी और धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म तथा दूसरे प्रमुख सभासद सभी अपने अपने आसनों पर आ विराजे तो श्री कृष्ण ने उठकर संदेश पत्र पढ़कर सुनाया। संदेश समाप्त होने पर श्री कृष्ण ने स्वयं अपनी तरफ से कहा कि जैसा स्वयं युधिष्ठिर ने लिखा है वही मैं भी अपनी तरफ से आप लोगों से कहना चाहता हूँ कि यदि उन्हें केवल पाँच गाँव भी दे दिये जायें तो वह लोग संतुष्ट हो जायेंगे और युद्ध का भयानक संकट टल जायेगा।

पर कृष्ण के इस कथन की दुर्योधन पर बड़ी विचित्र प्रतिक्रिया हुई। उसने उठकर आवेशपूर्ण स्वर में कहा--हे कृष्ण! आप इस समय दूत के रूप में यहाँ आये हैं। आप को दूत की सीमा से आगे नहीं निकलना चाहिये। आप को हर बात कहते समय यह ख्याल रखना चाहिये कि आप दूत हैं।

दुर्योधन कि यह बातें सुनकर सारी सभा में कोहराम मच गया। कोई व्यक्ति कृष्ण का इस प्रकार बार बार दूत कहकर अपमान करे यह उन सब के लिये असहनीय था। सभी ने दुर्योधन की दबे शब्दों में भर्त्सना की। पर वह सभी चूँकि उसी के नमक पर पले हुये थे इसलिए कुछ अधिक नहीं कह सकते थे। पर भीष्म से फिर भी रहा नहीं गया। उन्होंने दुर्योधन को भला बुरा कहना शुरू किया। लेकिन श्री कृष्ण ने उन्हें रोक दिया और कहा कि जो व्यक्ति मोह में तथा लोभ में अंधा हो जाता है उसे भले बुरे की पहचान नहीं रहती। यह इस समय संतुलित नहीं है, इसलिए इसे समझाने वाले इसके भले की बात बुरी लगेगी और यह कुपित होकर कुछ का कुछ कर बैठेगा।

अब तो दुर्योधन के क्रोध का पारावार न रहा। कोई दूत उसे मोहांध कहे यह उसे सह्य नहीं था। उसने ललकार कर कहा—सावधान! कृष्ण तुमने मुझे असंतुलित कहकर मेरा अपमान कि। है। इसके लिये तुम्हें दंड

मिलेगा। इसके बाद दुर्योधन ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि कृष्ण को पकड़ लो। कई रक्षकों ने आगे बढ़कर कृष्ण को पकड़ना चाहा लेकिन उसी समय कृष्ण ने अपना विशाल रूप धारण किया और बहुत ऊँचे होकर बोले—रे मूर्ख ! तू अज्ञान के पाश में बँधा पड़ा है। दूत को अपशब्द कहना सम्पूर्ण राज्य के अधिकारी को अपशब्द कहने होते हैं। अब तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है। संसार का कोई भी व्यक्ति अब तुम्हारी और तुम्हारे राज्य की रक्षा नहीं कर सकता।

इतना कहकर श्री कृष्ण ने पल भर अपने कुछ और भी चमत्कार दिखाये जिससे कभी तो रक्षक भाग कर एक खम्भे को कृष्ण समझकर पकड़ लेते और कभी अपने चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण देखकर सहम जाते। सारी सभा अस्त व्यस्त हो गई।

इसके पश्चात् श्री कृष्ण ने स्वयं का रूप छोटा बना और प्रकृतिस्थ होकर बोले– दुर्योधन ! अब भी समय है सोच लो। पर दुर्योधन हठी स्वभाव का तो था ही। बोला—नहीं जाकर उनसे कह दो कि मैं उन्हें सुई के नोक जितनी जमीन भी नहीं दे सकता।

अब कृष्ण निराश होकर लौट पड़े। शेष सभी सभासदों सहित धृतराष्ट्र ने भी कृष्ण से जाते समय विनती की कि जहाँ तक हो सके वैमनुष्य को बढ़ने न देना। लेकिन कृष्ण जी ने कह दिया कि स्थिति अब मेरे हाथों से निकल चुकी है। इसके बाद वह एक बार फिर विदुर जी से मिलने उनके घर गये जहाँ पर कि पांडवों की माता कुंती ने उनसे प्रार्थना की कि अब मेरे पुत्रों से कह दीजिये कि वह युद्धभूमि में अपना कौशल दिखलायें। जो व्यक्ति अपनी माँ और स्त्री को सुख नहीं दे सकता वह नपुंसक माना जाता है। अब तक तो वह लोग एक विशेष प्रकार के बन्धन में थे। पर अब वह स्वतंत्र हैं। अतः उनसे कह देना कि हम लोग अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकते।

कृष्ण ने कुंती को सांत्वना दी और सात्यकि इत्यादि को साथ लेकर बिराट नगर के लिये चल पड़े। नगर के बाहर तक दुर्योधन की तरफ से कर्ण विदा करने आये। कृष्ण ने अन्तिम उपाय एक और करके देखना चाहा उन्होंने कर्ण को एक ओर ले जाकर एकांत में उससे कहा—हे कर्ण यह जो युद्ध होने जा रहा है यह अति भयानक होगा। इस लिये मैं तुम्हें आज एक रहस्य की बात बताता हूँ। ताकि किसी प्रकार यह युद्ध रुक जाये। वास्तव में तुम सूतपुत्र नहीं हो। तुम्हारी माँ राधा नहीं कुंती है। अर्जुन इत्यादि पाइक तुम्हारे सगे भाई हैं। अपने भाइयों से युद्ध करोगे। दुर्योधन जो इतनी डींगे हाँक रहा है। वह सिर्फ तुम्हारे बल-बूते पर तुम। यदि युद्ध से इनकार कर दो तो विवश होकर उसे हथियार डाल देने पड़ेंगे और पांडवों का आधा राज्य उन्हें मिल जाने से युद्ध स्वयंमेव टल जायगा।

इस पर कर्ण बोला—मैं इस बात के लिए तो आपका आभारी हूँ कि आपने मुझे मेरे जन्म की कथा बता दी है लेकिन मैं आपका परामर्श मानने में असमर्थ हूँ। उसका कारण यह है कि मैंने जिसका अन्न खाया है उसके साथ गद्दारी नहीं कर सकता। आप जाकर अर्जुन इत्यादि से कह दीजिये की युद्ध की तैयारी करें।

अब कृष्ण पूर्णतया निराश हो गये। उन्हें अब युद्ध के अतिरिक्त कोई रास्ता नजर नहीं आया। इसलिए उन्होंने कर्ण इत्यादि से बिदाई ली और विराट नगर की ओर अपने रथ में बैठकर चल पड़े। कर्ण से उन्होंने कह दिया कि तुम भी जाकर कौरवों से कह दो—कि पांडव आज से सात दिन बाद युद्ध का बिगुल बजा देंगे।

कुंती और कर्ण

वैशम्पायन जी कहते हैं कि हे राजन्! कृष्ण जी जब विदुर से मिलने गये थे उस समय उन्हें वहाँ पर क्योंकि कुंती भी मिली थी इसलिए वह उसके मन

में भी कर्ण की बात डाल गये थे। कुंती कृष्ण के जाने के बाद सचमुच ही कर्ण के बारे में सोचने लगी। उसे मालूम था कि कर्ण रोज गंगा किनारे सूर्य की आराधना के लिये जाता है और पूर्व की ओर सूर्य को देखते हुये तब तक जाप करता रहता है जब तक कि सूर्य उसकी पीठ की तरफ नहीं। आ जाता। और तब वह घूम कर पीछे देखता है। उस समय उसके पीछे जो व्यक्ति भी खड़ा होता है उसे उसके मांगने पर कैसी भी वस्तु दे देता है। यहाँ तक कि एक बार एक ब्राह्मण के मांगने पर उसने अपने शरीर के कवच-कुंडल भी उतार कर दे दिये थे। और जब उसे पता चला था कि वह तो ब्राह्मण नहीं स्वयं इन्द्र हैं तो उसे बड़ा दुःख भी हुआ था। उसने कहा था--इन्द्र राजा मुझसे ऐसी कौन सी शत्रुता थी जो आप को यह रूप भरना पड़ा। पर इन्द्र ने कहा शत्रुता नहीं। मैं अर्जुन से कह चुका हुँ कि वह हर जगह विजयी होगा इसलिए मुझे अपनी बात को सच्ची करने के लिए यह करना पड़ा। अब मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम भी वरदान माँगो। कर्ण ने तब एक अमोघ अस्त्र माँगा जो कि इन्द्र ने दे दिया।

सो कुंती क्योंकि जानती थी कि कर्ण अत्यंत दानवीर है इसलिए वह भी उसी प्रकार से गंगा किनारे जाकर कर्ण की पीठ की तरफ खड़ी हो गई। उसी प्रकार से अपने नित्य कर्म के अनुसार जब कर्ण घूमा तो कुंती को खड़ा देखकर बोला--माँगो।

कुंती बोली--हे पुत्र! मैं आज तुम्हारे सामने याचिना बनकर आई हूँ। मैं तुम्हारी माँ हूँ। अर्जुन तुम्हारा भाई है। तुम उन पांचों में सबसे बड़े हो। इसलिए मैं तुमसे माँगती हूँ कि मुझे तुम यह वचन दे दो कि तुम पांडवों से युद्ध नहीं करोगे।

कर्ण बोला--यह तो ठीक है कि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ पर जिनका मैंने नमक खाया है उनके साथ गद्दारी नहीं कर सकता। बस, चूँकि तुम मुझ से माँगने आई हो, इसलिए तुम्हें इतना वचन दिए देता हूँ कि अर्जुन के अतिरिक्त

तुम्हारे दूसरे चारों पुत्रों को वश में पाकर भी छोड़ दूँगा। लेकिन अर्जुन के साथ मेरा युद्ध अवश्य होगा। और युद्ध में या तो वह बचेगा या मैं। इसलिए तुम्हें इस बात की भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यदि मैं खेत रहा तो,भी तुम्हारे पाँच पुत्र जीवित रहेंगे और यदि अर्जुन मारा गया तो भी तुम पाँच पुत्रों की माँ कहलाओगी।

कुंती की आँखों में आँसू आ गये। पर विवश होकर उसे इसी वचन पर संतोष करके लौट जाना पड़ा।

युद्ध भूमि

वैशम्पायन जी बोले--हे राजन्! अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि किस प्रकार दोनों ओर की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में आमने सामने आ जुटी। श्री कृष्ण जब विराट नगर में निराश होकर लौट आये और उन्होंने दुर्योधन का समाचार युधिष्ठिर को दे दिया तो शीघ्र ही युधिष्ठिर ने अपने सभी साथी राजाओं को सेना तैयार करने का आदेश दे दिया। सेना की तैयारी में सभी लोग अत्यधिक व्यस्त हो गये। युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण सेना का संचालन तो अर्जुन के हाथ में दे दिया और उसका सहकारी बना दिया धृष्टद्युम्न को सात अक्षोहिणी सेना में से प्रत्येक एक अक्षोहिणी का नेतृत्व उन्होंने क्रमशः! राजा द्रुपद, विराटराज धृष्टद्युम्न, शिखंडी, चेकितान और महाबली भीम के हाथों में दे दिया। सम्पूर्ण सेना के विराट नगर में एकत्र हो जाने के बाद उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान की ओर प्रस्थान कर दिया। कुरुक्षेत्र का आधे के लगभग क्षेत्र पांडवों की सेना ने घेर लिया। जब दुर्योधन को इसका समाचार मिला तो वह भी अपनी समस्त चतुरंगिणी सेना सहित पांडवों के सामने आ डटा। उसकी ग्यारह अक्षोहणी युद्ध निपुण सेनापति अपने संचालन में लिए हुए थे। यथा आचार्य द्रोण, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिणकृतवर्मा, कर्ण; भूरिश्रवा, शकुनि, तथा महाराज वाह्लीक

सेनापति बनाये गये । दुर्योधन ने प्रमुख सेनापति भीष्म पितामह को बनाया। लेकिन यह बात कर्ण को बहुत बुरी लगी । उसकी इच्छा थी कि प्रमुख सेनापति उसी को बनाया जाए। इसी बात पर दुर्योधन और कर्ण में थोड़ी सी तकरार भी हो गई, जिसपर कर्ण ने हठ में आकर यह वचन ले लिया कि जब तक युद्ध में भीष्म पितामह लड़ेंगे तब तक मैं धनुष नहीं उठाऊँगा। इनके मृत्यु को प्राप्त होने पर ही मैं पांडवों से लड़ाई में भाग लूँगा। दुर्योधन को कर्ण की इस प्रतिज्ञा पर दुःख तो बहुत हुआ परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।

इस प्रकार जब दोनों ओर सेना आ खड़ी हुई तो दोनों ओर के लोगों में यह अनुमान दौड़ाये जाने लगे कि कौन सा पक्ष कौन से पक्ष को पहले पराजित कर देगा। कौरवों के सेनापति ने कहा--यह सेना तो शीघ्र ही समाप्त हो जायगी पर चूंकि श्री कृष्ण स्वयं पांडवों की तरफ हैं और फिर पांडव मुझे जितने प्रिय हैं उतने ही आप लोग भी, सो मैं पाडवों की सेना में से तो प्रतिदिन दस सहस्र सैनिकों को मार गिराया करूँगा, लेकिन पांडवों पर अस्त्र नहीं उठाऊँगा।

द्रोणाचार्य ने भी कहा कि वह भी लगभग दस सहस्र सैनिक मार ही दिया करेंगे। इसी प्रकार दूसरों ने भी कहा। जिस सबसे परिलक्षित यही होता था कि वह सब बड़े जोश में भरे हुए हैं।

पांडवों में भी सभी लोग बहुत उतावले हो रहे थे। सभी की अत्यंत बलशाली भुजाएँ तीर तलवार चलाने को फड़क रही थीं।

कुरुक्षेत्र का सारा मैदान जब दोनों ओर की सेनाओं से भर गया तो अब इस बात की प्रतीक्षा की जाने लगी कि युद्ध किस प्रकार शुरू किया जाये। सर्व प्रथम द्रोणाचार्य ने अपना शंख निकालकर जोर से फूंक दिया। शंख की आवाज चहुँओर गूँज कर समाप्त भी न हो पाई थी कि दुर्योधन के कहने पर शकुनि का पुत्र उलूक पांडवों के खेमों की तरफ गया और उन्हें अपशब्द

कहता हुआ कहने लगा--आप लोग क्या युद्ध करेंगे। आप सभी तो ढोंगी हैं। धर्मराज के युद्ध में सम्मिलित होने से आज उनके धर्म का भ्रम खुल गया है। भीम की सारी मुटाई आज युद्ध में निकल ही जायगी। और अर्जुन तो नपुंसक है! उससे तो कहिये कि जाकर अपनी पुत्रवधू को नृत्य कला सिखाये। नकुल सहदेव को अभी घोड़ों तथा गऊओं की सेवा करनी चाहिए।

उलूक की इन बातों से सभी पांडव क्रुद्ध हो गए पर धर्मराज ने उन सब को रोक दिया और उलूक से कह दिया कि जाकर कौरवों से कह दो; इन सब बातों का उत्तर आपको युद्ध में मिल जायगा। उलूक लौट गया।

इधर युद्ध होने से पूर्व व्यास जी धृतराष्ट्र के पास आये। धृतराष्ट्र ने कहा–महाराज! मैं युद्ध देखना चाहता हूँ। व्यास जी बोले–हे धृतराष्ट्र! अब तो यहाँ ऐसा युद्ध होगा कि प्रलय ही आजायगी। इसलिए तुम तो इसके आरंभ होने से पूर्व ही वन गमन कर जाओ। लेकिन धृतराष्ट्र ने कहा–मैं अपने बेटों में होने वाले इस युद्ध को अवश्य देखना चाहता हूँ। युद्ध के समाप्त होने पर मैं वन को चला जाऊँगा।

अतः धृतराष्ट्र की अतीव उत्सुकता देख कर व्यास जी ने संजय को बुला कर दिव्य दृष्टि प्रदान की और उससे कहा कि तुम युद्ध में जैसा जैसा होते देखो, वैसा वैसा, धृतराष्ट्र को सुनाते जाओ।

व्यास जी यह कहकर चले गये।



भीष्म पर्व

अर्जुन का मोह

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन् ! अब इससे आगे की कथा सुनो । दोनों ओर जब महाप्रलयंकरी सेना उमड़ घुमड़ कर एकत्र हो गई और कौरवों की तरफ़ से द्रोणाचार्य ने शंख भी फूँक दिया तो एक विचित्र घटना घटी । अट्ठारह अक्षौहिणी सेना के मध्य खड़े अर्जुन के रथ पर सारथि के रूप में बैठे श्री कृष्ण से अर्जुन ने कहा—महाराज ! तनिक आप रथ को कौरवों की सेना के निकट तो ले चलिये । ताकि मैं यह तो देख लूँ कि मुझे किन किन से लड़ना है । मेरे शत्रु कौन कौन हैं ?

श्री कृष्ण रथ को हाँक कर कौरवों की सेना के निकट ले गये । अर्जुन ने नजर उठाकर कौरवों की तरफ देखा । ढूँढे से उसे वहाँ कोई शत्रु नजर नहीं आया । उसने सोचा—क्या मैं द्रोणाचार्य अपने गुरु से युद्ध करूँगा । क्या मैं अपने पितामह पर अस्त्र उठाऊँगा क्या अपने भाई दुर्योधन की गदा से हत्या करूँगा । यह सब तो अपने परिवार के लोग हैं । ऐसे राज्य को लेकर क्या करूँगा, जो कि भाई बाँधवों को मार कर प्राप्त हो ।

श्री कृष्ण ने जब अर्जुन के असमंजस को देखा तो वह समझ गये कि यह मोह में पड़ गया है । उन्होंने अर्जुन से पूछा—क्या हुआ ? अर्जुन बोला—मैं आज धर्म संकट में पड़ा हूँ । मेरी समझ में नहीं आता कि युद्ध किससे करूँ ? इन लोगों से जिन्हों ने मुझे पाला है । अपने गुरु से जिसने मुझे धनुष-बाण पकड़ना सिखलाया ! पितामह से, जिन्होंने बचपन से लेकर अब तक मुझ पर जाने कितने एहसान किये हैं । अपने भाइयों के साथ युद्ध करूँ

जिनके साथ खेलते हुये मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। हे कृष्ण! मैं आज शिथिल हुआ जा रहा हूँ। मेरे हाथों से गांडीव छूटा जा रहा है। मेरी बाहों में शक्ति नहीं रही है कि तरकश से बाण निकाल सकूँ। इन लोगों से युद्ध करके राज्य कमाने से मैं भीख माँग कर जीवित रहना अधिक पसन्द करूँगा। अपने जीवन के लिए मैं अपने परिवार वालों को मौत के घाट नहीं उतार सकता। मैं इन लोगों से युद्ध नहीं करूँगा। ये सब मेरे अपने हैं। आप रथ हाँकिए और वापिस ले चलिए।

श्री कृष्ण जब अर्जुन की यह मोहभरी बातें सुनीं तो मुस्करा कर बोले—अर्जुन तुम मुझ पर विश्वास लाओ और जैसा मैं कहूँ वैसा करो। मैं भी जानता हूँ कि यह तुम्हारे परिवार के लोग हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हें इन सबसे शत्रुता नहीं, प्रेम है। लेकिन यह सब इसी जन्म का है। तुम नहीं जानते पहले यह क्या थे और आगे क्या होंगे! तुम सिर्फ इसी अस्थायी समय में इनके साथ संयोग से सम्बंधी–सूत्र में बंध गए हो, वर्ना सच जानो कि इनका तुमसे कोई भी रिश्ता नहीं है।

अर्जुन की समझ में श्री कृष्ण जी की यह ज्ञांन भरी बातें नहीं आईं। वह बोला—महाराज! आप मुझे पूरी तरह से समझा कर कहें कि यह सब कैसे हैं। यह मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा। क्या आप मुझे इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि अपने पूजनीय गुरु को धनुषबाण की सहायता से अपने सामने झुका दूँ? न, यह मुझसे न होगा! इतना कह कर अर्जुन ने धनुष हाथों से छोड़ दिया और तरकश कंधे से उतार कर नीचे रख दिया। स्वयं वह उदास सा जाकर रथ के पिछले भाग में गर्दन लटका कर बैठ गया।

(तब श्री कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया था, वही सम्पूर्ण उपदेश बाद में श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध हुआ हम यहाँ पर सम्पूर्ण गीता का संक्षिप्त सार देगें।)

श्री कृष्ण अर्जुन की इस हास्यास्पद स्थिति पर हँसे नहीं । उन्होंने जाकर कहा—पार्थ ! तुम मोह में आ गए हो । जरा सोचो, जब तुम उत्पन्न ही नहीं हुए थे तब तुम क्या थे ? जब तुम काल के गाल में चले जाओगे तब तुम क्या रह जाओगे ? क्या तुम इससे पहले अर्जुन थे, या इसके बाद अर्जुन रह जाओगे । इसी प्रकार न तो यह लोग पहले यही थे, जो अब हैं और न बाद में यही रहेंगे । फिर तुम्हारा इनका सम्बंध कैसा ? हजारों बार तुम पहले हो चुके हो और हजारों बार यह पहले हो चुके हैं । हजारों बार तुम फिर पैदा होवोगे और हजारों बार यह भी । वास्तव में तुम, तुम नहीं एक आत्मा हो । शरीर का कुछ महत्त्व नहीं । शरीर तो क्षणभंगुर है । इसी प्रकार यह तुम्हारे सम्बन्धी नहीं, बहुत सी आत्माएँ हैं । तुम यदि युद्ध करोगे तो इनके शरीर से, आत्मा से नहीं । आत्मा को तो तुम मार ही नहीं सकते । वह अमर है । आत्मा जलाये जलती नहीं, काटे कटती नहीं । वह किसी भी प्रकार से मारी नहीं जा सकती । नाशवान तो केवल शरीर है । और जो शरीर नाशवान है, वह क्षणभंगुर है, उससे मोह कैसा ! तुम तो इनसे निष्काम रूप से युद्ध करो । इनके शरीर को समाप्त करने में कोई दोष नहीं । शरीर ने तो समाप्त होना ही है, सो तुम ही क्यों नहीं इसका बहाना बन जाते । और यदि तुम ही स्वयं इस युद्ध में मारे गए तो भी कुछ विशेष बात नहीं । तुम्हारा भी शरीर मात्र ही समाप्त होगा । धर्म युद्ध करते हुए स्वयं को समाप्त करने से स्वर्ग के भागीदार भी बनोगे । इस जन्म में तुम अपने शरीर पर कायरता का धब्बा क्यों लगाते हो ? तुम्हारे युद्ध न करने से क्या यह सभी लोग तुम्हें कायर और क्लीव समझेंगे ? यदि अब भी तुम यही उचित समझते हो कि क्षात्रधर्म पर इस प्रकार कलंक लगाओ तो जैसा चाहो करो । क्षात्र धर्म सदा से मारने और युद्ध लड़ते हुए मर जाने में है ।

अर्जुन बोला—महाराज । सो सही है, लेकिन अपने प्रियजनों की मार काट से जो मैं यह राज्य का सुख भोगूँगा तो क्या यह मेरे द्वारा की हुई हिंसा मुझे चैन की साँस लेने देगी ?

इस पर कृष्ण जी ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखलाया जिसमें सारा ब्रह्मांड तेतीस कोटि देवी देवता तथा त्रिलोक के जन, पृथ्वी, चांद, सूरज, तारे तथा दूसरी उपलब्धियां थीं---जुअन उस विराट् रूप के सामने अत्यन्त लघु हो गये। इतने लघु कि एक नजर में सम्पूर्ण कृष्ण को देखने तक में असमर्थ हो गये। वह सर उठाकर श्री कृष्ण के विराट् रूप की एक झाँकी मात्र देख पा रहे थे। श्री कृष्ण ने कहा---देख अर्जुन! सब कुछ मुझी में सीमित है। जिन्हें तुम अपने प्रियजन कहते हो वह मेरी शक्ति का एक नन्हा सा अंश हैं। तुमने और उन सबने, अन्त में मुझी में लीन होना है। यदि तुम इन्हें मारोगे तो वह मेरी इच्छा के अनुकूल चल कर ही। यदि मैं न चाहूँ तो सभी असमर्थ हैं। तुम तो निमित्त पात्र हो! आदमी की गर्दन में भी मैं ही वास करता हूँ और तलवार की नोक पर भी। मैं ही मारने वाला हूँ और मैं ही मरने वाला। तुम मारोगे, मतलब मैं मारूँगा। कौरव मरेंगे, मतलब मैं मरूँगा। इसलिए तुम इस मोह का त्याग करो और जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। धनुष बाण धारण करो और शत्रु पर विजय प्राप्त करो। तुम मेरी शरण में हो। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अर्जुन अभिभूत सा श्री कृष्ण को देखता रह गया। श्री कृष्ण ने विराट् रूप का परित्याग किया और अपने साधारण रूप में आ गये। अर्जुन तो श्री कृष्ण का विराट् रूप देख कर ही सहम गया था। अब उसके अन्तर्चक्षु खुल गये और वह बोला–महाराज! मैं अज्ञान के अंधेरे में भटक रहा था, आप ने मुझे उस अंधेरे से मुक्ति दिलाई है। मैं आप का कृतज्ञ हूँ। आप अब निश्चिन्त हो जाइये। इन सभी कौरवों का आपकी इच्छानुसार मेरे हाथों वध होगा और मैं इन पर विजय प्राप्त कर लूँगा।

इस के बाद अर्जुन ने अपने गांडीव को उठाया और उस की डोरी खींच कर एक और टंकार की जिस से पांडव सेना में तो हर्ष की लहर दौड़ गई, लेकिन कौरव सेना पर मुर्दनी व्याप्त हो गई

युद्ध आरम्भ

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन् । तब अर्जुन के गांडीव की टंकार होते ही पांडव सेना में सैकड़ों स्थानों पर से शंख-ध्वनि होने लगी और रणभेरियाँ बजने लगीं । शोर से निकट के व्यक्ति की आवाज सुनना कठिन हो गया । तब कौरवों की तरफ से भी शंख बजाये जाने लगे जिस से दोनों ओर की सेना के शोर से आकाश की चारों दिशायें गुंजायमान हो उठीं। सभी सब लोगों ने एक आश्चर्य देखा । युधिष्ठिर अपने रथ से उतरे और बिना किसी अस्त्र के नंगे पाँव उस ओर चले जिधर कौरवों को सेना खड़ी थी । युधिष्ठिर को इस प्रकार निहत्था कौरवों ने अपनी ओर आते देखा तो समझे कि यह अपनी पराजय मान कर हमारे आगे झुकने के लिए आये हैं । पांडवों में भी इससे थोड़ी अशान्ति फैली लेकिन श्री कृष्ण ने उन्हें यह कह कर शांत कर दिया कि युधिष्ठिर जो कुछ करने जा रहे हैं ठीक करने जा रहे हैं।

शीघ्र ही युधिष्ठिर शत्रुओं के मध्य पहुँच गये । सभी ने देखा कि उन्होंने जा कर सर्वप्रथम भीष्म के आगे नमस्कार किया और कहा—पितामह ! आशा है मुझे आप इस बात के लिए क्षमा करेंगे कि मैं आपके सामने युद्ध करने के लिए अपनी सेना को लेकर आ गया हूँ पर इस समय इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं । अब तो युद्ध होगा ही । इस लिए मैं आप से निवेदन करता हूँ कि हमें आप आशीर्वाद दीजिये कि इस युद्ध में हम सफल रहें ।

भीष्म पितामह ने कहा—बेटा ! मैं जानता हूँ, तुम धर्म पर हो । तुम्हारी जीत निश्चित है । निश्चिंत होकर युद्ध करो । मैं कौरवों के बंधन में हूँ इसलिए विवश होकर मुझे इन्हीं के आदेशों पर चलकर तुमसे युद्ध करना पड़ रहा है । तुम निश्चित जानो कि मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।

भीष्मपितामह के चरणों को छूकर युधिष्ठिर वहाँ से चलकर द्रोणाचार्य के रथ के निकट पहुँचे और उन्होंने द्रोणाचार्य के चरण स्पर्श किये।

द्रोणाचार्य ने भी उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद दिया। इसके बाद युधिष्ठिर कृपाचार्य के पास गये उनसे भी आशीर्वाद लेकर वह वापिस अपनी सेना की तरफ आगये। उनके आतेही पाण्डवों ने एक हर्ष का नारा लगाया जिस से कौरवों की सेना पर पानी सा पड़गया।

अब दोनों ओर की सेना तैयार होकर आमने सामने आगई। सर्वप्रथम अर्जुन ने अपना गांडीव उठाया। फिर भीम ने अपनी गदा आकाश में ऊपर की ओर उठाई। तब नकुल सहदेव के साथ सभी पांडव सेनाने भी अपनी तलवारें और भाले निकाल लिये। सभी ओर ऐसा लगने लगा जैसे बिजलियाँ चमक रही हों।

इधर कौरवों ने भी अपने-अपने अस्त्र निकाल लिये। बस दोनों ओर की सेना अपने अपने सेनापतियों के संकेत की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। युधिष्ठिर ने तब अपने रथ के ऊँचे भाग पर खड़े होकर जोर की आवाज में कहा--हे सेनानियो। अब मैं अपना कवच धारण करने जा रहा हूँ। मैं एक बार फिर कौरव सेना से कह देना चाहता हूँ कि वह व्यर्थ का युद्ध लड़ रहे हैं। सच्चाई की हमेशा जीत होती है इसलिए जो लोग अब भी कौरवों का साथ छोड़कर सच्चाई के पथ में आना चाहते हों वह मेरी शरण में आ जायें। मैं उन्हें अभय दान देता हूँ।

युधिष्ठिर के इस कथन पर कौरवों से और तो कोई तैयार नहीं हुआ लेकिन धृतराष्ट्र की वैश्या पत्नी से उत्पन्न युयुत्सु, नाम का दुर्योधन का भाई अपने रथ को हाँकता हुआ पांडवों की सेना में आ मिला। युधिष्ठिर ने कहा-ठीक है। तुम्हीं इन सब को बादमें पानी दोगे और पितरो को प्रसन्न। करोगे।

इस के बाद युधिष्ठिर ने युद्ध का संकेत कर दिया।

अर्जुन ने गांडीव पर चिल्ला चढ़ा कर शिवजी का नाम लेते हुए और द्रोणाचार्य को मन ही मन नमस्कार करते हुए दो बाण इस प्रकार छोड़े कि वह दोनों बाण द्रोणाचार्य के चरणों में जा गिरे। द्रोणाचार्य समझ गये कि उनका शिष्य उन्हें प्रणाम कर रहा है। इसके बाद सहसा ही दोनों ओर से

घोर गर्जना का शब्द सुनाई देनेलगा। विचित्र विचित्र नारे भी सुनाई दिये। धीरे धीरे दोनों ओर की सेना आगे बढ़ती हुई परस्पर भिड़ गई। तलवारों के टकराने और धनुषों की टंकार ने ऐसा भयानक शोर उत्पन्न किया कि दिग् दिगंत हिल गये। बाणों से सारा आकाश आच्छादित होने लगा, जिस से रोशनी तक रुक गई। अर्जुन ने ऐसा बाण-कोशल दिखलाया कि इधर उन का बाण धनुष् से निकलता और उधर शत्रु का सर पृथ्वी पर लोटता नजर आता। जिस प्रकार अर्जुन ने इधर नाश का विचित्र खेल रचा उसी प्रकार कौरवों के पक्ष में भीष्म ने। जिधर वह बाण छोड़ देते मुण्ड ही मुण्ड पृथ्वी पर तड़पते नजर आते। दोनों ओर की सेनायें धीरे धीरे परस्पर जूझ पड़ीं थीं और अब प्रत्येक गर्जना के साथ चीखते हुए सैनिकों का शोर भी सुनाई देता। भीम की गदा ने ऐसे प्रहार किये कि शत्रु सेना के लिए संभलना कठिन हो गया। नकुल के तलवार के वारों से अरि सेना के बस अंग अंग कटे हुए आकाश में उड़ते नजर आये। सारी जमीन खून से लाल हो चुकी थी। कृतवर्मा, अभिमन्यु से, बृहद्बल दुर्योधन से, नकुल दु:शासन से दुर्मुख सहदेव से और शल्य युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे। जयद्रथ के साथ द्रुपद लड़ रहे थे। पूर्व की ओर धृष्टकेतु से राजा वाह्लीक, भगदत्त के साथ विराटराज, कृपाचार्य के साथ बृहत्क्षत्र, और बृहत्क्षत्र के साथ विकर्ण लड़ रहे थे।

संध्या समय तक घोर युद्ध होता रहा। जब संध्या का अंधेरा छान लगा तो युद्ध और भी तेज हो गया। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु और भीम के पुत्र घटोत्कच ने ऐसी वीरता दिखलाई कि बड़े बड़े महारथी उनके सामने छोटे नजर आने लगे। अभिमन्यु ने तो जब यह देखा कि भीष्म उनके पक्ष के सैनिकों को अपने बाणों से मौत के घाट उतार दे रहे हैं, तो उससे स्वयं को संभाला नहीं गया। उसने धनुष के चिल्ले को और कसा और एक के बाद एक ऐसे बाण छोड़े कि भीष्म के धनुष बाण की डोरी कट गई और सारथि घायल हो कर जमीन पर आ रहा। भीष्म के क्रोध का पारावार न रहा

उन्होंने धनुष पर दोबारा डोरी कसी और अभिमन्यु पर बाणों की वर्षा करके उसे बाणों में कैद कर दिया। अभिमन्यु से उस बाणों की दीवार को तोड़ा नहीं गया। निकट ही विराट राजा का पुत्र उत्तर भी लड़ रहा था। उसने जब अभिमन्यु को बाणों के जाल में घिरा देखा तो वह उस की सहायता करने को झपटा उसने भीष्म पर अंधाधुंध बाण बरसाने शुरू कर दिये। पल को तो भीष्म सहते रहे किन्तु शीघ्र ही जब उन्होंने बाण छोड़ने शुरू किये तो उत्तर से संभालना कठिन हो गया। उत्तर का सारथि बाण खाकर जमीन पर गिर गया। दोनों घोड़े घायल होकर उछल कूद करने लगे। पल भर यही स्थिति रही और तब फिर भीष्म ने एक तीव्रगामी बाण मार कर पहले तो उत्तर को घायल कर दिया और फिर दूसरा बाण फेंक कर उत्तर के प्राण हर लिए। सम्पूर्ण रथ घरघरा कर गिरा और उत्तर ने प्राण त्याग दिये। उत्तर के मारे जाने का समाचार शीघ्र ही पांडवों में फैल गया सभी में उत्तेजना सी आ गई। पर पूवेत नाम के उत्तर के भाई के क्रोध का तो पारावार न रहा। उसने बिना कुछ सोचे समझे कौरव सेना पर बाण चलाते शुरु करदिए। पूवेत उस समय अत्यंत उत्तेजितावस्था में बाण चलाते हुए कौरव सेना में पैठता चला गया। पांडवों में से कई एक ने उसे रोकने का प्रयास भी किया लेकिन वह बहुत तजी से बढ़ता हुआ कौरव सेना के बीच पहुँच गया। उसको चारों ओर से कौरवों ने घेर लिया जिस से अब पूवेत का बचना कठिन सा प्रतीत होने लगा। पांडवों में से कई लोगों ने जाकर पूवेत को बचाने का प्रयास किया लेकिन भीष्म ने अपने बाणों से किसी को भी आगे नहीं बढने दिया। काफी दूर पर खड़े हुए पांडवों के सैनिक देखते रहे कि पहले तो पूवेत लड़ता रहा किन्तु शीघ्र ही चारों ओर से लगने वाले बाणों ने उसे जमीन पर गिरने को मजबूर कर दिया। पूवेत को प्राणहीन हो कर जब उसके छोटे भाई शंख ने गिरता देखा तो वह भी अपने प्राण खोने के लिए कौरव सेना पर क्रोध में झपटा। लेकिन अर्जुन ने उसे रोक दिया। अर्जुन को स्वयं भी विराट के दो पुत्र मारे जाने

का बहुत शोक था। इसलिए जब उन्होंने बाण बरसाने शुरू किये तो उनके सामने कौरव सेना के पाँव उखड़ गये। और वह पीछे की ओर भाग खड़ी हुई।

तब तक सूर्य डूब चुका था। सूर्य की सुनहरी किरणों को अंधियारे ने अपने गिलाफ में लपेट लिया और अर्जुन को विवश हो कर युद्ध रोक देना पड़ा। दूसरे दिन तक के लिए युद्ध को स्थगित करके सभी सैनिक अपने-अपने शिवरों को लौट गये।

युद्ध का दूसरा दिन

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन्! इस प्रकार युद्ध दूसरे दिन तक के लिए स्थगित कर दिया गया तो दुर्योधन इत्यादि अपने खेमे में एकत्र हुए और सोचने लगे कि आज के युद्ध में क्या खोया और क्या पाया। उन्हें इस बात का तो बहुत हर्ष था कि उन्होंने राजकुमार उत्तर और पूवेत को समाप्त कर दिया था, पर इस बात से वे दुःखी भी थे कि बाद में उनकी सेना रणक्षेत्र छोड़ कर भाग खड़ी हुई। दुर्योधन ने अपने सभी उपसेना-पतियों को बुलाकर कहा कि कल रण-भूमि में इस प्रकार व्यूह-रचना करके खड़े होओ की कोई भी पांडव उसे भेद न सके। इसके बाद सभी लोगों ने युद्ध में लगे अपने घावों की मरहम पट्टी की और दूसरे दिन के युद्ध की तैयारी की।

उधर पांडवों में इस बात से सभी शोकाकुल हो रहे थे कि विराट्राज के दो पुत्र मारे गये थे। प्रथम दिन की भयंकरता से ही उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यह युद्ध कितना भयानक हो सकता है।

प्रातः हुई तो पांडवों ने भी अपने सेनापतियों की सहायता से एक ऐसा व्यूह तैयार किया जिसका आकार किसी पक्षी के समान था। आगे को

निकला हुआ उसका मुखथा, जहाँ पर कि अर्जुन धनुष बाण संभाले खड़ा था। उसके बाद ग्रीवा थी जहाँ किरातराज तथा अनूपक थे। अर्जुन की पीठ पर सहायता देने वालों में जहाँ राजा द्रुपद, महाराज कुन्तिभोज और चन्देलराज थे वहाँ किराटराज के सहयोगी स्वयं युधिष्ठिर बने हुए थे। वाम भाग में वीर अभिमन्यु के साथ सात्यकि थे और दक्षिण दिशा में दोनों भाई, नकुल और सहदेव। काशी-नरेश पिछले भाग में अपने विशेष सहायकों के साथ खड़े थे।

कौरवों ने जो व्यूह-रचना की थी वह भी अद्भुत थी उसे बनाने वाले स्वयं भीष्म थे। उन्होंने इस प्रकार का गोल व्यूह बनाया था कि कितना ही शक्तिशाली व्यक्ति क्यों न आजाये उसे तोड़ नहीं सकता था। अब जब दोनों पक्ष इस प्रकार व्यूह बना कर आमने सामने हुए तो बहुत देर तक अतिघोर युद्ध करने पर भी एक दूसरे के व्यूह को तोड़ न सके। युद्ध तब भी भीष्म पितामह ने ही शंख बजाकर शुरू किया था। अर्जुन ही भीष्म से जूझते रहे-दोनों तरफ से अखंड बाण वर्षा की गई पर कोई भी दूसरे को पराजित नहीं कर सका कभी अर्जुन का रथ भीष्म के बाणों से ढक जाता और कभी भीष्म का रथ अर्जुन के बाणों से। इस प्रकार संध्या समय तक युद्ध होता रहा, लेकिन जब कोई भी निर्णय न हो सका तो दोबारा रात का आया जान युद्ध को सुबह होने तक बन्द कर दिया गया।

युद्ध का तीसरा दिन

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! इसी प्रकार फिर जब युद्ध का तीसरा दिन आया तो सुबह होते ही फिर योद्धा युद्ध-भूमि में जुटने लगे। कुछ ही पलों में दोनों ओर से सेना अपने अपने सेनापतियों के संकेत की प्रतीक्षा में खड़ी हो गई। अबकी बार युद्ध—भेरी पहले अर्जुन ने बजाई। उत्तर में कौरवों की ओर से भी शंख फूँके जाने लगे। शीघ्र ही

दोनों ओर से युद्ध शुरू कर दिया गया। व्यूह रचना प्रथम दिन की भाँति ही रही। व्यूह से जो भी आदमी छिटक जाता, मृत्यु के मुख में पहुँच जाता। व्यूह में बंधे बंधे से सैनिक इस बात का प्रयत्न करते कि दूसरे का व्यूह टूट जाये। अर्जुन उस दिन बहुत क्रोध में थे। उन्होंने भीष्म पर इतनी बाण वर्षा की कि भीष्म का रथ छुप गया। परन्तु शीघ्र ही दुःशासन और दुर्योधन ने आकर भीष्म की सहायता की जिससे वह उस बाण जाल से मुक्त हो गये और अर्जुन पर अमोघ अस्त्र छोड़ने लगे। पहले बाण से उन्होंने अर्जुन का बाण व्यर्थ कर दिया। दूसरे से रथ को तोड़ कर सारथि पर बाण चलाया पर सारथि तो स्वयं भगवान कृष्ण थे। सो, वह भीष्म के तीर का वार बचा गये।

वास्तव में श्री कृष्ण ने अपने भाई बलराम के आगे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस युद्ध में स्वयं शस्त्र नहीं उठाऊँगा। क्योंकि यह तो कुटुम्ब-युद्ध है; इसमें दूसरे का हस्तक्षेप करना उचित नहीं दोनों लड़ेंगे और जो पक्ष धर्म में होगा वह जीत जायेगा।

कृष्ण की यह प्रतिज्ञा भीष्म ने जब सुनी थी, तब उन्होंने भी प्रतिज्ञा की थी यदि मैं भीष्म हूं और सच्चा ब्रह्मचारी हूँ तो कृष्ण से युद्ध में अस्त्र उठवा दूँगा। अब भीष्म ने इस अवसर को अच्छा समझा और अर्जुन पर दोबारा अस्त्र चला कर उसे पूर्णतया निशस्त्र कर दिया। कृष्ण ने जब तक रथ को दोबारा ठीक किया तब तक भीष्म ने और पच्चीस बाण चला रथ के चारों अश्वों को धराशायी कर दिया। फिर कृष्ण ने जब तक दूसरे घोड़े जोते तब तक मारे बाणों के अर्जुन को मूर्छित कर दिया। कृष्ण ने सभी बाण अपने पर सहते हुए अर्जुन का उपचार करके उसे दोबारा सुध दिलाई और उधर फिर पच्चीस बाण भीष्म ने चला कर रथ के चारों अश्वों को मृत्यु के मुख में धकेल दिया। अर्जुन ने अपना गांडीव ठीक किया और चिल्ला चढ़ा कर अभी बाण चलाने ही जा रहा था कि फिर

भीष्म की ओर से तीन भयानक बाण आये और अर्जु न के गांडीव को खंडित करते हुए अर्जु न को मूर्छित करके निकल गये।

अब कृष्ण के लिए यह सब असह्य हो उठा वह अपने रथ से उठ कर नीचे आये और टूटे रथ का पहिया उठाकर भीष्म को मारने के लिये दौड़े। तब तक अर्जु न की मुर्छा टूट गई। उसने देखा कि कृष्ण रथ के पहिये को सुदर्शन चक्र बना कर भीष्म को मारने के लिए भागे जा रहे हैं। अर्जु न ने रथ को छोड़ा और भाग कर कृष्ण को जा पकड़ा लेकिन तब तक कृष्ण भीष्म के निकट पहुँच चुके थे।

परन्तु भीष्म ने सर झुका दिया और मुस्करा कर कहा—हे भक्त वत्सल। मैं तो आप का भक्त हूँ। चाहें तो मार दें और चाहें तो छोड़ दें। आप तो धन्य हैं कि भक्त के वचनों की रक्षा के लिए अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी। महाराज! मैं तो आपके सामने कुछ भी नहीं।

अर्जुन ने भी कृष्ण से कहा—हे कृष्ण! यह तुम क्या करते हो? अपनी प्रतिज्ञा भंग करने से लाभ! यह धर्म युद्ध है। यहां इस प्रकार की अनीति से कुछ भी लाभ नहीं। इस लिए आप इस रथ के पहिये का परित्याग कीजिये और चल कर रथ हाँकिये। इन लोगों के लिए मैं अकेला ही काफी हूं। अर्जुन की यह बात सुनकर कृष्ण अपने रथ की ओर लौट गये

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! देखा भगवान की लीला कैसी अपरम्पार है। इधर तो अपने भक्त की प्रतिज्ञा की लाज रख ली उधर स्वयं भी अस्त्र नहीं उठाया, तो रथ के पहिये को अस्त्र तो नहीं कहा जा सकता।

बस, उस दिन जो अर्जु न ने बाण चलाने शुरू किये हैं कि किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं रही कि अर्जु न के सामने टिक सके। आधी घड़ी के अन्दर ही हाथियों की सूंड़ें घोड़ों के सर और सैकड़ों की संख्या में रुण्ड मुण्ड खोपड़ियाँ आकाश में उड़ती दिखाई देने लगीं। अर्जु न के बाणों से घायल

व्यक्तियों के शरीर से इतना खून निकला कि युद्ध-क्षेत्र के बीच से शोणित की एक नदी सी बह निकली।

कौरवों की सेना का व्यूह टूट गया और वह अपने पड़ाव की तरफ भाग खड़े हुए। अर्जुन प्रसन्नतापूर्वक उस दिन की विजय का बिगुल बजाते हुए अपने डेरे की तरफ लौट चले।

चित्रसेन-बध

वैशम्पायन जी ने कहा--हे राजन्! चौथे दिन सूर्योदय हुआ तो दोनों ओर की सेना फिर आमने सामने आ जुटी। शीघ्र ही युद्ध प्रारंभ हो गया। अर्जुन और भीष्म का सामना उस दिन भी विकट रहा। किन्तु अभिमन्यु, घटोत्कच और धृष्टद्युम्न ने तो कमाल ही कर दिया। अभिमन्यु के बाणों की जिधर वर्षा हो जाती उधर ही त्राहि त्राहि का सा वातावरण उत्पन्न हो जाता। धृष्टद्युम्न ने अपनी गदा से अरि सेना को दलित कर रखा था। जब कौरवों की सेना को इस प्रकार कुचले जाते चित्रसेन ने देखा तो वह व्यूह छोड़ कर आगे निकल आया। उसनेधृष्टद्युम्न पर बाण चलाने प्रारम्भ किये। लेकिन उस दिन धृष्टद्युम्न का सामना करना आसान नहीं था। गदा के पहले ही दीवार ने चित्रसेन को विरथ कर दिया। रथ के टूट जाने से चित्रसेन गुस्से से काँपता हुआ, नंगी तलवार लेकर धृष्टद्युम्न की तरफ भागा परन्तु हत भाग्य रास्ते में ही धृष्टद्युम्न की गदा ने उसे सदा लिए सुला दिया।

चित्रसेन को मरते देख कर सारे कौरवों के जैसे आग लग गई। उन्होंने छोटे-छोटे व्यूह बनाये और पांडवा पर चारों ओर से आक्रमण करने लगे। एक जगह कौरवों ने अभिमन्यु को अकेला पा कर चारों ओर से घेर लिया। लेकिन अभिमन्यु भी कम नहीं था उसने ऐसे बाण चलाये कि कई बार उन लोगों का व्यूह भंग हो गया। किन्तु क्यों कि वह लोग संख्या

में अधिक थे जितने सैनिक मरते थे। उसमें दुगने आ जाते थे इस लिए शीघ्र ही अभिमन्यु के सारे शस्त्र कट गये । और निकट था कि उसके शरीर के आर पार सैकड़ों तीर हो जाते कि भयानक गर्जना करता हुआ भीम उन सब के सर पर आ पहुँचा। भीम की गदा से हाथियों तक की हड्डियों के ढाँचे चटख जाते और वह चिंघाड़ते हुए अपनी ही सेना को कुचल कर भाग जाते। अभिमन्यु शीघ्र ही फिर से अपने रथ में बैठ कर बाण वर्षा करने लगा।

फंसे फंसाये शिकार को जब इस प्रकार हाथ से निकल जाते देखा तो दुर्योधन के बारह भाइयों ने भीम को घेरे में ले लिया और उसे मारने का उपाय करने लगे। लेकिन भीम ने अपनी गदा के वारों से सैनिकों को पीस कर रख दिया। इधर तो वह सभी लोग अभिमन्यु को धकेलते हुए भीम से अलग करके ले गये और उधर उन्होंने भीम से मार खाते हुए भी उसे घेरे से निकलने नहीं दिया। काफी दूर जा कर भीम जब अकेला पड़ गया तो उसका ध्यान हटा कर उन्होंने उसकी गदा उस से बिलग कर दी। जब भीम निरस्त्र हो गया तो वह उसको मारने के लिए आगे बढ़े। भीम विकट परिस्थिति को समझ तो गया लेकिन घबराया नहीं। उसने एक एक को पकड़ कर खाली हाथों से ही मारना शुरू कर दिया। एक भयंकर गर्जना जो उसने की तो दूर पर लड़ता हुआ उसका पुत्र घटोत्कच तत्काल समझ गया कि भीम कहीं अकेला पड गया है उसने उड़कर तत्काल ही भीम को ढूँढ लिया। तब जो उसने भयानक रूप से आवाज पैदा की तो भीम को घेरे हुए कई लोग डटकर ही भाग गये। घटोत्कच ने नीचे उतर कर दुर्योधन के एक एक भाई को अपनी दोनों बाहों में दबाचा और आकाश में उड़ गया। कुछ देर बाद लोगों ने उन दोनों को ऊपर से गिरते देखा। घटोत्कच फिर नीचे आया और फिर दो भाइयों को लेकर ऊपर उड़ गया। उन्हें मार कर उसने नीचे फेंका और फिर नीचे आ कर जो उसने कौरवों की सेना को तहस नहस करना शुरू किया है तो कौरवों की सेना फिर जम नहीं सकी। घटोत्कच

नेउ पसेना।ति सुषेण,उग्र बीरबाहु भीम और भीमरथ, नाम के दुर्योधन के पांच भाइयों को उस समय मार दिया। इससे राजा भगदत्त को बहुत क्रोध आया। वह अपने हाथी को लेकर आगे बढ़ कर आया किन्तु भीम ने तब तक अपनी गदा संभाल ली थी। गदा के दूसरे वार में पीलवान मारा गया और तीसरा हाथी के पीठ पर जो पड़ा तो वह चिंग्घाड़ता हुआ वहाँ से भगदत्त को लिये लिये ही भाग खड़ा हुआ। दुर्योधन ने भीष्म के आगे विनती की। भीष्म जी बोले--घटोत्कच राक्षसी माया फैला देता है जब तक यह नहीं मरेगा जब तक आगे नहीं बढ़ा जा सकता। दुर्योधन बोला-तो आज पहले उसी को मारिये।

लेकिन चूंकि संध्या घिर आई थी इसलिये भीष्म जी ने कहा-इसे अब कल ही मारा जा सकेगा। अब तो समय नहीं रहा।

सो, उस दिन फिर कौरव हार कर अपने डेरे की तरफ लौट गये। उस दिन भी पांडवों के पड़ाव में रात गये तक विजय और प्रसन्नता के बाजे बजते रहे।

पांचवें दिन का युद्ध

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन्! अब पाँचवें दिन के युद्ध का हाल सुनो। उस दिन अर्जुन ने कृष्ण के कथनानुसार एक चाल चली। शिखंडी नाम का एक व्यक्ति था, जो कि पूर्व जन्म का स्त्री था, उसे अर्जुन ने अपने रथ पर बिठा लिया। शिखंडी को बिठा कर अब वह भीष्म जी के सामने जा पहुँचा। भीष्म जी जानते थे कि शिखंडी पूर्व जन्म का स्त्री है अब वह स्त्री पर बाण कैसे चलायें। इसलिए वह तो निष्क्रिय रहे, किन्तु अर्जुन ने बाणों की भयानक बारिश करके उस दिन कौरवों की सेना काट-काट कर मृतकों के ढेर लगा दिये। शाम तक यही ढंग रहा। उस दिन भी अर्जुन ही की जीत रही। जीत तो होनी ही थी। भीष्म जी ने तो धनुष

बाण उठाया ही नहीं। और उठाया भी तो अर्जुन की तरफ बाण नहीं चलाया। दूसरी ओर को मारते रहे। इससे यह हुआ कि संध्या समय तक अर्जुन ने कौरवों की लगभग तीस सहस्र सेना मृत्यु के गाल में फेंक दी। संध्या हुई तो युद्ध रुक गया। सभी अपने-अपने शिविरों में लौट गये।

उस दिन दुर्योधन इत्यादि भी भीष्म जी के डेरे पर एकत्र हुए और क्रोध प्रकट करते हुये दुर्योधन ने भीष्म से कहा कि आप वैसे ही हम लोगों को अपने हाथों से मार क्यों नहीं देते हैं। शत्रु तो हमारा नाश करता रहता है और आप हैं कि शस्त्र ही नहीं उठाते। यदि इसी प्रकार से युद्ध लड़ना था तो मुझसे पहले ही मना कर दिया होता कि आप युद्ध नहीं लड़ेंगे।

भीष्म जी को दुर्योधन की इन बातों से बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कहा दुर्योधन ! तेरी तो मति मारी गई है। या तो तुम्हें युद्ध करना ही नहीं चाहिये था और अब अगर किया है तो अंत तक धैर्य रखो। पांडव भी कोई गाजर मूली नहीं हैं कि मैं उन्हें सरलता से काट दूँगा। वह भी वीर हैं। लड़ना जानते हैं। और फिर अभी तो युद्ध हो रहा है। एक दिन किसी के जीतने न जीतने से क्या होता है। तुम समझते हो कि क्या मैं युद्ध नहीं कर रहा या कि मैं तुम्हारे प्रति ईमानदार नहीं रहा। युद्ध में यह तो होता ही रहता है। कभी वह जीतेंगे और कभी हम। तुम घबराओ नहीं। अन्त में विजय हमारी ही होनी है।

इस प्रकार भीष्म जी ने दुर्योधन को जब सांत्वना दी तो वह कुछ निश्चिन्त हो गया। दुर्योधन के अपने शिविर में लौट जाने पर भीष्म जी भी दूसरे दिन के युद्ध की रूप रेखा तैयार करके विश्राम करने लगे।

युद्ध का छठा दिन

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार जब छठे दिन का सूर्य आसमान में तैरता हुआ ऊपर पहुँचा तो युद्ध फिर शुरू हो गया। उस दिन

पांडवों ने चक्र व्यूह की रचना की थी और कौरवों ने क्रौंच व्यूह की। उस दिन सबसे पहले भीम और द्रोणाचार्य का पल भर सामना हुआ। द्रोणाचार्य ने इतने बाण भीम पर बरसाए कि चारों तरफ से भीम के एक परकोटा सा बन गया जिसे पार करना भीम के लिए कठिन हो गया। जब भीम को और कोई रास्ता न मिला तो वह रथ से नीचे उतर आया और उसने गदा मार मार के सभी बाणों की दीवार गिरा दी और फिर जोर से गरजता हुआ कौरव सेना में खाली अपनी गदा लेकर घुस गया। उसने द्रोणाचार्य का रथ गदा मार कर तोड़ दिया और उनके साथियों को इस बुरी तरह से मारा कि वह पागल होकर भाग खड़े हुये। भीम की गदा के वार से कौरवों के सैनिक इस प्रकार गिर रहे थे जैसे पेड़ से पके हुए फल गिरते हैं या जैसे बिजली पड़ने से पेड़। भयंकर आंधी की तरह भीम गरजता रहा और कौरव सेना का नाश करता रहा। सारे दिन की लड़ाई में पल को भी उसने कौरवों को उभरने का अवसर नहीं दिया और इसी प्रकार शाम कर दी। रात की कालिमा के लक्षण देखते ही युद्ध प्रातः तक के लिए फिर स्थगित कर दिया गया।

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन्! सातवें और आठवें दिन भी इसी प्रकार युद्ध हुआ। आठवें दिन अर्जुन का पुत्र इरावन, अलम्बुस राक्षस के हाथों मारा गया। इरावन नाग वंश से था, इसलिए दोनों ने खूब पापयुद्ध किया लेकिन अन्त में अलम्बुस जीत गया। इरावान के मारे जाने का समाचार जब भीम को मिला तो वह बहुत क्रोधित हुए। क्रोध में उन्होंने भीषण युद्ध करके सुनाम, आदित्य केतु, कुंडधार, महोदर, अपराजित, पंडितक, दुर्जय और विशालाक्ष आदि दुर्योधन के सात भाइयों को मार दिया जब दुर्योधन ने समाचार सुना तो उसने छाती पीट ली। सौ महारथियों को लेकर जब वह भीम को मारने चला तो युद्ध बन्द कर देने का नक्कारा बज गया। संध्या हो चुकी थी। युद्ध सुबह तक के लिए स्थगित कर दिया गया। दुर्योधन खून का घूंट पी कर रह गया।

नौवां दिन

नौवाँ दिन पांडवों के लिए प्रलय का दिन था। उस दिन भीष्म जी विकराल रूप में थे। उन्होंने अपने सामने किसी को नहीं देखा, जो सामने आया, वही मारा गया। कई बार अर्जुन ने सामना करना चाहा, लेकिन भीष्म जी के तीक्ष्ण बाणों के आगे वह टिक नहीं सका। पांडव सेना के भीष्मजी ने सहस्त्रों सैनिक मार डाले। भीम एक बार बड़े निश्चय से उनके सामने डटे रहे, लेकिन जब भीष्मजी ने भीम की गदा काट डाली और बाणों से उनके शरीर को बींधने लगे तो भीम भागता ही नजर आया। वास्तव में भीष्म अपने पूर्व के दो दिनों का क्रोध उन पर निकाल रहे थे। शाम तक भीष्म ने सारी युद्धभूमि पांडवसेना के रुंड-मुंड शरीरों से पाटदी। खून की एक मोटी सी धारा युद्ध भूमि से बह चली। पांडवों में हाहाकार मच गया। परन्तु अर्जुन किसी प्रकार सामना करते ही रहे। इसमें कृष्णजी ने अर्जुन की बड़ी सहायता की। वह कभी रथ को पीछे घुमा लेते और खूब आगे ले जाते। भीष्म बाणों की एक बौछार इकट्ठी छोड़ते तो कृष्ण रथ को इस प्रकार घुमा देते कि सभी बाण खाली चले जाते। शाम तक भीष्म ने पांडवों की कोई पचास लाख सेना को पृथ्वी पर सुला दिया। अर्जुन संध्या तक मुकाबला तो करता रहा लेकिन कौरवों के सैनिकों की कुछ हानि नहीं कर सका। इस प्रकार संध्या हो गई और युद्ध फिर सुबह तक के लिए रोक दिया गया।

भीष्म पतन

वशम्पायन जी बोले--हे राजन्! नौवें दिन के युद्ध से पांडव काफी हताश हो गये थे। अपने पड़ाव पर लौटकर जब सभी एकत्र हुए तो इस बात पर काफी देर तक विचार विमर्श करते रहे कि युद्ध में यदि भीष्म जी इसी प्रकार से डटे रहे तो उनको जीतना तो दूर की बात है, शीघ्र ही सारी सेना भी नष्ट हो जायगी। अब अपनी उस होने वाली पराजय के

पांडवों ने चक्र व्यूह की रचना की थी और कौरवों ने क्रौंच व्यूह की। उस दिन सबसे पहले भीम और द्रोणाचार्य का पल भर सामना हुआ। द्रोणाचार्य ने इतने बाण भीम पर बरसाए कि चारों तरफ से भीम के एक परकोटा सा बन गया जिसे पार करना भीम के लिए कठिन हो गया। जब भीम को और कोई रास्ता न मिला तो वह रथ से नीचे उतर आया और उसने गदा मार मार के सभी बाणों की दीवार गिरा दी और फिर जोर से गरजता हुआ कौरव सेना में खाली अपनी गदा लेकर घुस गया। उसने द्रोणाचार्य का रथ गदा मार कर तोड़ दिया और उनके साथियों को इस बुरी तरह से मारा कि वह पागल होकर भाग खड़े हुये। भीम की गदा के वार से कौरवों के सैनिक इस प्रकार गिर रहे थे जैसे पेड़ से पके हुए फल गिरते हैं या जैसे बिजली पड़ने से पेड़। भयंकर आंधी की तरह भीम गरजता रहा और कौरव सेना का नाश करता रहा। सारे दिन की लड़ाई में पल को भी उसने कौरवों को उभरने का अवसर नहीं दिया और इसी प्रकार शाम कर दी। रात की कालिमा के लक्षण देखते ही युद्ध प्रातः तक के लिए फिर स्थगित कर दिया गया।

वैशम्पायन जी कहते हैं--हे राजन्! सातवें और आठवें दिन भी इसी प्रकार युद्ध हुआ। आठवें दिन अर्जुन का पुत्र इरावन, अलम्बुस राक्षस के हाथों मारा गया। इरावन नाग वंश से था, इसलिए दोनों ने खूब मायायुद्ध किया लेकिन अन्त में अलम्बुस जीत गया। इरावान के मारे जाने का समाचार जब भीम को मिला तो वह बहुत क्रोधित हुए। क्रोध में उन्होंने भीषण युद्ध करके सुनाम, आदित्य केतु, कुंडधार, महोदर, अपराजित, पंडितक, दुर्जय और विशालाक्ष आदि दुर्योधन के सात भाइयों को मार दिया जब दुर्योधन ने समाचार सुना तो उसने छाती पीट ली। सौ महारथियों को लेकर जब वह भीम को मारने चला तो युद्ध बन्द कर देने का नक्कारा बज गया। संध्या हो चुकी थी। युद्ध सुबह तक के लिए स्थगित कर दिया गया। दुर्योधन खून का घूंट पी कर रह गया।

नौवां दिन

नौवाँ दिन पांडवों के लिए प्रलय का दिन था। उस दिन भीष्म जी विकराल रूप में थे। उन्होंने अपने सामने किसी को नहीं देखा, जो सामने आया, वही मारा गया। कई बार अर्जुन ने सामना करना चाहा, लेकिन भीष्म जी के तीक्ष्ण बाणों के आगे वह टिक नहीं सका। पांडव सेना के भीष्मजी ने सहस्रों सैनिक मार डाले। भीम एक बार बड़े निश्चय से उनके सामने डटे रहे, लेकिन जब भीष्मजी ने भीम की गदा काट डाली और बाणों से उनके शरीर को बींधने लगे तो भीम भागता ही नजर आया। वास्तव में भीष्म अपने पूर्व के दो दिनों का क्रोध उन पर निकाल रहे थे। शाम तक भीष्म ने सारी युद्धभूमि पांडवसेना के रुंड-मुंड शरीरों से पाटदी। खून की एक मोटी सी धारा युद्ध भूमि से बह चली। पांडवों में हाहाकार मच गया। परन्तु अर्जुन किसी प्रकार सामना करते ही रहे। इसमें कृष्णजी ने अर्जुन की बड़ी सहायता की। वह कभी रथ को पीछे घुमा लेते और खूब आगे ले जाते। भीष्म बाणों की एक बौछार इकट्ठी छोड़ते तो कृष्ण रथ को इस प्रकार घुमा देते कि सभी बाण खाली चले जाते। शाम तक भीष्म ने पांडवों की कोई पचास लाख सेना को पृथ्वी पर सुला दिया। अर्जुन संध्या तक मुकाबला तो करता रहा लेकिन कौरवों के सैनिकों की कुछ हानि नहीं कर सका। इस प्रकार संध्या हो गई और युद्ध फिर सुबह तक के लिए रोक दिया गया।

भीष्म पतन

वशम्पायन जी बोले—हे राजन्! नौवें दिन के युद्ध से पांडव काफी हताश हो गये थे। अपने पड़ाव पर लौटकर जब सभी एकत्र हुए तो इस बात पर काफी देर तक विचार विमर्श करते रहे कि युद्ध में यदि भीष्म जी इसी प्रकार से डटे रहे तो उनको जीतना तो दूर की बात है, शीघ्र ही सारी सेना भी नष्ट हो जायगी। अब अपनी उस होने वाली पराजय के

सम्बन्ध में सोचकर सभी पांडव बहुत चिन्तित हो गये। अंत में श्रीकृष्ण ने कहा--इसके लिए एक रास्ता है। आप सब लोग मिल कर स्वयं भीष्म जी के पास जाइये। युधिष्ठिर को तो उन्होंने आशीर्वाद दे ही रखा है। इसलिये जब युधिष्ठिर उनके सामने अपनी समस्या रखेंगे तो संभव है भीष्म जी कोई रास्ता निकाल दें। सभी पांडव जानते थे कि भीष्म जी की मृत्यु उनकी अपनी इच्छानुसार होनी है। इसलिए वह विवश होकर कृष्ण जी के इस परामर्श पर सहमत हो गये और कौरवों के शिविरों में से होते हुये भीष्म जी के तम्बू में पहुँच गये। उनकी बातें सुनते ही भीष्म जी समझ गये कि इन्हें कृष्ण जी ने भेजा है, इसलिए वह बोले--आप लोगों ने मुझे धर्मसंकट में डाल दिया है, पर जिधर स्वयं भगवान होंगे, उनसे कोई जीत ही नहीं सकता, इसलिए मैं आपको अपनी कमजोरी बतलाये देता हूँ। मैं स्त्री पर कभी भी अस्त्र नहीं उठाता। यदि अर्जुन के रथ के आगे द्रुपदपुत्र शिखंडी हो, जो कि पूर्व जन्म की स्त्री है, तो अर्जुन जीत जायेगा क्योंकि मैं तो बाण चलाऊँगा ही नहीं। और वह बराबर मुझे मारता रहेगा।

पांडवों के लिए यह बात जैसे स्वर्ग के मिल जाने के समान थी। दसवें दिन जब युद्ध का बिगुल बजा तो सभी ने देखा कि आज पांडवों के सेना के सबसे आगे शिखंडी खड़ा है। शिखंडी के पांव जैसे धरती पर जम नहीं रहे थे। वह रथ से इधर उधर हिलता और बाण परखता और फिर बार बार धनुष की डोरी को कसता। बिगुल के बजते ही सबसे पहला तीर शिखंडी का छूटा। कौरव सेना में आगे भीष्म पितामह थे और उनके मुख्य सहायक थे दुःशासन। उधर शिखंडी के मुख्य सहायकों में थे अर्जुन और भीम। शिखंडी को स्वयं पर तीर चलाते देखकर भीष्म ने अपने रथ का मुंह दूसरी ओर मोड़ दिया। उन्होंने पांडव सेना का तीव्रतापूर्वक संहार करना शुरू कर दिया, पर उनका कोई भी तीर शिखंडी की ओर नहीं जा रहा था। कुछ ही समय में उन्होंने इतने तीर चला दिये कि पांडव सेना कट कट कर धरती पर गिरने लगी सहस्रों पैदल मारे गये सैकड़ों घुड़ सवार

धरती पर सो गये, और सैकड़ों हाथी उन्मत्त होकर भाग खड़े हुए। भीष्म के बाणों को पांडवों के लिए सहन करना कठिन हो गया। पर वह युद्ध का आरम्भ था। इसलिए जब आगे के सैनिक आहत हो जाते तो दूसरी टुकड़ियाँ आगे बढ़ आतीं। इस प्रकार युद्ध चलता रहा। लेकिन उस दिन भीष्म जी ने बड़ा उग्ररूप धारण कर रखा था। उन्होंने एक एक पल में इतने इतने बाण छोड़े कि किसी की कुछ समझ में ही नहीं आया और पांडव सेना के पाँव उखड़ने लगे। अर्जुन और भीम ने जब अपनी सेना का संहार होते देखा तो उन्होंने शिखंडी को आगे किया और भीष्म के सामने जा पहुँचे। भीष्म ने जब फिर शिखंडी को अपने सामने पाया तो उन्होंने बाण चलाना छोड़ कर अपने रथ को फिर मोड़ कर दूसरी ओर निकाल ले जाना चाहा, लेकिन उस समय तक उन्हें चारों ओर से राजा द्रुपद, धृष्टकेतु नकुल, चेकितान, केकयराज, सात्यकि, घटोत्कच और द्रोपदी के भी पाँचों पुत्रों ने घेर लिया था, इसलिए वह उस व्यूह से निकल नहीं पाये। भीषण अस्त्रों के आक्रमण प्रत्याक्रमण होने लगे। भीष्म तो बाण देख देख कर चलाते थे, किन्तु उनके सहायक दुःशासन ने भीषण शस्त्र चला चला कर कई बार उस व्यूह को तोड़ना चाहा लेकिन पांडव उस दिन मरने मारने पर कटिबद्ध हो चुके थे। अर्जुन ने भीष्म जी के धनुष की डोरी काट दी और उनके रथ की ध्वजा भी काट कर गिरा दी। दूर से जो सैनिक भीष्म और पांडवों के युद्ध को देख रहे थे उन्होंने जब भीष्म के रथ की ध्वजा को गिरते देखा तो चीत्कार कर उठे। कौरवा की सेना के मुख्य सैनिकों ने चारों तरफ से घेर कर पांडवों को वश में कर लेना चाहा लेकिन उनके चारों ओर से फिर सहदेव और अभिमन्यु ने एक और व्यूह बना दिया। शीघ्र ही चारों ओर हाहाकार मच गया। ऐसा घमासान युद्ध छिड़ा कि कोई यह समझ ही नहीं पाया कि कौन जीत रहा है और कौन हार रहा है। बस सैनिकों की चीख पुकार से कान के पर्दे फटने लगे। अर्जुन के गांडीव की टंकार सुन सुन कर ही कई सैनिक मूर्च्छित हो कर गिर गये और कुचले गये।

पलक झपकने में सहस्रों बाण अर्जुन के धनुष से निकलते और शत्रु के सैनिक चीत्कार करते हुए जमीन पर लोट जाते। भीष्म ने जब देखा कि उन्हें बाणों के जाल ने ढंक सा लिया है तो वह बहुत क्रुद्ध हो गये। उन्होंने एक साथ पाँच सहस्र बांणों में बँट जाने वाला एक बाण छोड़ा जिसे राजा द्रुपद और धृष्टकेतु सह नहीं पाये। जिस ओर भीष्म जी ने बाण छोड़ा था, वह सारा भाग जनहीन हो गया। द्रुपद धृष्टकेतु रथ विहीन होकर शिखंडी के पीछे जा छिपे। भीष्म जी ने धनुष पर दूसरा बाण फिर चढ़ाया। लेकिन तब शिखंडी रथ बढ़ा कर फिर उनके सामने आ गया। अर्जुन ने बाण छोड़ कर भाष्म जी के धनुष की डोरी काट फेंकी और जब तक भीष्म जी दूसरी डोरी बाँधते तब तक शिखंडी ने एक साथ पाँच बाण चला कर भीष्म जी की छाती को घायल कर दिया। अवसर को उचित जान कर कृष्ण ने शीघ्रता से अर्जुन को भीष्म पर बाण चलाने को कहा। एक साथ अर्जुन के धनुष से बीसियों बाण निकले और भीष्म जी की छाती में जा लगे। फिर तो चहुँ ओर से भीष्म जी पर बाणों की वर्षा होने लगी। भीष्म जी को संकट में जान कर द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, भूरिश्रवा और भगदत्त ने आगे बढ़ कर अर्जुन तथा शिखंडी को घेर लिया। लेकिन भीम और सात्यकि ने वह वीरता दिखलाई कि पल भर में ही द्रोणाचार्य का बनाया हुआ व्यूह टूट गया और अर्जुन तथा शिखंडी बाहर निकल आये।

तब तक अंधेरा होने लगा था। संध्या को निकट जान कर अर्जुन में अद्भुत पराक्रम आ गया। उन्होंनें गांडीव से बाणों को अलग नहीं होने दिया। भीष्म जी के सामनें फिर शिखंडी को खड़ा करके पहले तो अर्जुन नें अगणित बाण बरसा कर भीष्म जी के सारथि को मार दिया और फिर भीष्म जी पर बाण वर्षा करने लगा। भीष्म जी के रथ के घोड़े बिना सारथि के काबू से बाहर होने लगे। तब भीष्म जी ने एक हाथ से घोड़ों की बाग संभाली और दूसरे से धनष पकड़ कर दांतों से प्रयंचा खींच खींच कर बाण छोड़ते रहे। लेकिन अर्जुन के तीक्ष्ण बाणा न उन्हें कुछ देर के

लिए किंकर्तव्य विमूढ़ सा कर दिया। चूँकि वह मारना तो अर्जुन को चाहते थे लेकिन शिखंडी के सामने आ जाने के कारण वह कभी तो बाण दाईं ओर छोड़ देते और कभी बाईं ओर। और कभी कभी तो उनके बाण खाली जाते क्योंकि अपने बिल्कुल सामने शिखंडी को देख कर उन्हें अपने बाण आकाश की ओर छोड़ने पड़ जाते थे। अर्जुन अविराम रूप से शिखंडी के पीछे रथ में बैठा भीष्म जी पर बाणवर्षा करता रहा। शीघ्र ही भीष्म जी के लिए बाणों की वर्षा को सहन करना कठिन हो गया। सैकड़ों तीर उनके शरीर में प्रविष्ट हो चुके थे, जिससे उनके शरीर से इतना खून प्रवाहित हो गया कि उनकी शक्ति क्षीण पड़ने लगी। धीरे धीरे उनके अंग शिथिल पड़ने लगे। सर्व प्रथम उनके हाथों से घोड़ों की बाग छूट गई। फिर धनुष गिर गया। लेकिन अर्जुन ने बाणवर्षा रोकी नहीं। वह अविराम बाण चलाता रहा। भीष्म जी पर मूर्च्छा छाने लगी। उधर सूर्य अंतिम दर्शन देकर क्षितिज में छुप गया और इधर भीष्म जी पर सम्पूर्ण मूर्छा व्याप्त हो गई और वह बे सुध हो कर रथ में ही गिर गये। कौरव सेना में हाहाकार मच गया। युद्ध बन्द कर दिया गया। पांडवों ने विजय का बिगुल फूंका।

संध्या की लालिमा जब कालिमा में विलीन होने लगी तब पांडव भी अपनी सेना को विश्राम करने का आदेश देकर भीष्म जी के समीप आ गये।

शरशैय्या

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन्! सैकड़ों बाणों के भीष्म जी के शरीर में बिंध जाने के कारण से उनकी शरशैय्या सी बन गई थी। जब उन्हें रथ से उतार कर नीचे सुलाया गया तो सभी बाणों की एक शैय्या सी थी, जो उन्हें पृथ्वी से लगने से रोक रही थी। परन्तु भीष्म जी का सर लटक रहा था उन्होंने जब पांडव और कौरवों को अपने चारों ओर हाथ बाँधे खड़ा देखा तो बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—हे पुत्रों! आज तुम

सब को इकट्ठा देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही हैं। अब भी समय है। युद्ध बन्द कर दो। मैं तो अब प्राण त्याग रहा हूँ, आप लोग इसी से कुछ शिक्षा ग्रहण कीजिए।

तभी आकाश से सिद्ध लोगों की वाणी सुनाई दी कि हे भीष्म इस समय सूर्य दक्षिणायन हैं। तुम इतने धर्मात्मा होकर भी दक्षिणायन सूर्य में प्राण त्याग रहे हो। सूर्य को उत्तरायण तो होने दो।

आकाश वाणी सुनकर भीष्म ने कहा—यह ठीक है। मैं उत्तरायण सूर्य में ही प्राण त्यागूँगा। फिर भीष्म जी ने अपने पौत्रों की ओर निक्षेप कर के कहा—हे पुत्रो! मैं सूर्य के उत्तरायण होने तक प्रतीक्षा करूँगा, इसलिये आप लोग मेरे सर के नीचे तकिया लगा दीजिए। मेरा सर लटक रहा है।

भीष्म के आदेश को सुनते ही दुर्योधन ने अनुचरों को दौड़ाया कि जाकर रेशमी तकिया ले आओ। पर भीष्म जी ने उसे रोक दिया। फिर भीष्म जी ने अर्जुन की ओर संकेत किया और अर्जुन ने भीष्म जी के सरके नीचे तीन बाण मार के तकिया बना दिया। सर बाणों पर टिक गया और भीष्म जी आराम से सो गये। कुछ पल पश्चात् उन्होंने पानी पीने की इच्छा प्रगट की। इस पर फिर दुर्योधन ने अपने अनुचरों को सोने के गिलास में पानी लाने की आज्ञा दी। लेकिन भीष्म जी ने फिर उसे रोक दिया और अर्जुन से कहा—बेटा! मेरा गला सूखा जा रहा है। तुम्हीं कोई प्रबंध करो। अर्जुन ने सुनते ही धनुष पर बाण चढ़ाया और भीष्म जी के सर के निकट की धरती पर जोर से बाण छोड़ दिया। गंगा की एक तीव्र धारा वहाँ से बह निकली और भीष्म जी के मुख में पड़ने लगी। प्यास बुझा कर भीष्म जी तृप्त हो गये। भीष्म जी ने अर्जुन की बहुत प्रशंसा की और कौरव सेना अर्जुन की ऐसी वीरता देख कर सहम गयी। इसके पश्चात् भीष्म जी ने आराम करने की इच्छा प्रगट की, जिस पर सभी लोग

उन्हें वहीं छोड़ कर अपने अपने पड़ाव की ओर जाने लगे। पांडव भी भीष्म जी के चरणों में प्रणाम करके चले गये। सबके चले जाने पर दुर्योधन भी भीष्म जी की सुरक्षा और उनके आराम का पूरा पूरा प्रबंध करके चला गया।

कर्ण का प्रणाम

जब भीष्म जी के पास कोई न रहा तब कर्ण वहां गया और भीष्म जी को प्रणाम कर के बैठ गया। भीष्म जी ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा--बेटा! यदि तुम चाहो तो यह युद्ध अब भी रुक सकता है। तुम जानते ही हो कि दुर्योधन अधर्म पर लड़ रहा है। उसे तुम्हारा बड़ा भरोसा है। यदि तुम युद्ध से हाथ खींच लो, तो यह युद्ध तत्काल रुक जाये।

पर कर्ण ने कहा-हे पितामह! यह तो आपका कथन सत्य है कि दुर्योधन अधर्म पर लड़ रहा है। पर जिस प्रकार आप दुर्योधन का साथ देने को विवश थे उसी प्रकार से मैंने भी उसका अन्न खा रक्खा है। मैं उसके विपरीत नहीं चल सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि धर्म पर दृढ़ रहने के कारण, और कृष्ण का साथ होने के कारण विजय श्री अन्त में पांडवों के गले में माला डालेगी पर जिस प्रकार आप अंतिम समय तक पांडवों से लड़ते रहे हैं इसी प्रकार से मैं भी लड़ते हुए ही प्राण त्यागूँगा

तब भीष्म जी ने फिर कहा-शायद तुम जानते नहीं हो कि तुम किन के साथ लड़ रहे हो। तुम सूत पत्नी राधा के पुत्र नहीं हो। तुम्हारी माता कुन्ती है। इसलिये अपने ही भाइयों को मारने से यदि तुम स्वयं को विजेता समझना चाहो तो तुम्हारी इच्छा।

कर्ण ने कहा--पितामह! मैं यह भी जानता हूँ पर मैं क्या करूँ विवश हूँ। कर्णकी हठधर्मी को देख कर अंत में भीष्म जी ने कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करते रहो। तत्पश्चात् कर्ण ने भीष्म जी को प्रणाम किया। और उनसे आर्शीवाद लेकर अपने पड़ाव की ओर वापिस आ गया।

द्रोण पर्व

द्रोणाचार्य का सेनापति बनना

सूत जी बोले--हे राजन् ! महात्मा भीष्म के युद्ध में घायल हो जाने के बाद सेनापति का स्थान खाली था। सबको इस बात की चिन्ता थी कि कौन सेनापति बनाया जाय। प्रातःकाल दोनों सेनायें युद्ध के मैदान में आकर डट गईं। इधर कौरव इस विचार में पड़े कि कौन सेनापति बनाया जाय। इसी बीच में वहाँ कर्ण का आगमन हुआ। कर्ण को देखते ही दुर्योधन ने उसी को सेनापति बनाने की इच्छा प्रकट की और बोला हे भाई कर्ण ! इस समय सेनापति का स्थान खाली है इसे तुम जानते हो। महात्मा भीष्म घायल हो चुके हैं। इस समय तुमसे बढ़कर हितैषी मेरा कोई नहीं है। तुम बड़े वीर हो, मैं चाहता हूँ कि तुम्हीं सेनापति बनो।

कर्ण ने कहा-हे भाई ! इसमें सन्देह नहीं कि सेनापति का चुना जाना परम आवश्यक है, किन्तु यह काम सरल नहीं है ! इसमें जल्दी न करनी चाहिए आपकी सेना में एक से एक वीर हैं। उनके हृदय में आपकी भलाई भी है। मैं चाहता हूँ कि इस पद पर कोई मुझसे भी योग्य व्यक्ति नियुक्त किया जाय जिससे आपका हित हो। ऐसे समय में अनुभवी व्यक्ति का सेनापति होना विशेष लाभप्रद होगा; क्योंकि सेनापति जितना ही योग्य होता है सेना भी उतनी ही रक्षित रहती है और विजय पाती है। मेरी समझ में कोई ऐसा व्यक्ति इस पद के लिए चुना जाय जो महात्मा भीष्मजी की भाँति बल, बुद्धि, विद्या, अवस्था, ज्योति और वर्ण में श्रेष्ठ हो।

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बोला–हे भाई ! तुम्हारा कहना नीति के अनुसार ठीक है। मैं इससे सहमत हूँ । अब तुम्हीं बतलाओ कि फिर कौन सेनापति बनाया जाय । इस समय यहाँ तो हम और तुम दो ही हैं। इस काम में जल्दी करनी चाहिए, क्योंकि इस समय हमारी सेना अनाथ सी हो रहीहै।

कर्ण ने कहा–हे राजन् ! मेरी समझ में इस समय आपकी सेना में महात्मा द्रोण से बढ़कर कोई सेनापति बनाने योग्य नहीं है। वे सभी बातों में योग्य हैं। यदि वे सेनापति होंगे तो सेना वश में रहेगी। वे सबको प्रिय भी लगते हैं, इसलिए इस समय उनको ही सेनापति बनाना अच्छा होगा।

कर्ण की बातें दुर्योधन को बड़ी प्रिय लगीं। वह उसकी प्रशंसा करता हुआ गुरु द्रोण के पास पहुँचा और अपना विचार उनके आगे प्रकट कर दिया। वहाँ पर अनेक कौरव पक्ष के लोग उपस्थित थे । गुरु द्रोण का सेनापति होना सुनकर लोग परम प्रसन्न हुए और एक स्वर से गुरु द्रोण की जय-जयकार मच गई। द्रोण को कुछ कहने का अवसर ही न मिला। बाजे बजने लगे। गुरु द्रोण ने धृष्टद्युम्न के साथ न लड़ना स्वीकार कर सेनापति का स्थान ग्रहण कर लिया।

सेनापति बनने के पश्चात् गुरु द्रोण ने दुर्योधन से पूछा कि हे दुर्योधन तुमने मुझे सेनापति किस भाव को लेकर बनाया है ? तुम्हारा वास्तविक मन्तव्य क्या है ? तुम क्या चाहते हो ? साफ-साफ कहो।

दुर्योधन ने गुरु को परम प्रसन्न जानकर कहा–हे गुरुदेव ! यदि आप की ऐसी कृपा है तो मेरे लिए राजा युधिष्ठिर को पकड़ दीजिये । मैं यही चाहता हूँ ।

दुर्योधन की बात सुनकर गुरु द्रोण बोले–हे दुर्योधन ! तुम्हारा वर माँगना ठीक है, किंतु अर्जुन के रहते राजा युधिष्ठिर को पकड़ लेना एक असम्भव कार्य है, क्योंकि अर्जुन हमारा एक ऐसा शिष्य है जो मेरी समग्र

विद्याओं का जानता है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए पहले अर्जुन को यहाँ से हटाना होगा।

वहाँ जितने लोग उपस्थित थे उनमें किसी की भी हिम्मत अर्जुन के सामने जाने की न हुई। बहुत कहने पर त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा इस कार्य के लिए तैयार हुआ और अपने साथ संसप्तक नारायणी और गोपाली सेना लेकर अर्जुन को युद्ध में अटकाने चला। यह सेना बहुत ही बलवती थी। कभी भी युद्ध से पीछे न हटती थी। सुशर्मा के इस उत्साह को देखकर सभी लोग परम प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे।

युधिष्ठिर और द्रोणाचार्य

युद्ध का बाजा बजते ही सुशर्मा ने अर्जुन को सामने लड़ने को ललकारा। वीर अर्जुन शत्रु की ललकार सुनते ही उससे लड़ने को आगे बढ़े। सुशर्मा से लड़ने के लिए बढ़ते हुए देख युधिष्ठिर ने कहा--हे भाई! इधर तुम लड़ने को जा रहे हो, उधर कौरव षडयन्त्र रचकर आज मुझे पकड़ने की चिन्ता में व्यस्त हैं, इसका क्या प्रबन्ध होगा? अर्जुन ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा– आप चिंता न करें, आपका पकड़ना तो दूर रहा, आप को कोई छू तक नहीं सकता। इतना कहकर अर्जुन ने युधिष्ठिर की रक्षा के लिए अपने साले सत्यजित् को नियत किया और स्वयं सुशर्मा से लड़ने को चले गये।

वीर अर्जुन सुशर्मा से लड़ने के लिए आगे बढ़े, किन्तु उनके हृदय में युधिष्ठिर की रक्षा का ध्यान सर्वदा ही रहा। लड़ते-लड़ते सुशर्मा ने उन्हें ऐसा फँसाया कि वे बहुत दूर निकल गये। सुशर्मा मार खाता हुआ पीछे हटता जाता था और अर्जुन पीछा करते चले जाते थे।

दोपहर तक इसी प्रकार युद्ध और परस्पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार होता रहा। तीसरे पहर राजा युधिष्ठिर और द्रोणाचार्य का सामना हो गया।

पाण्डवी सेना युधिष्ठिर की रक्षा में प्रबल शक्ति से भिड़ गई। गुरु द्रोण ने अवसर पाकर दुर्योधन को दिये हुए वचन को पूरा करना चाहा और अनेक तेज बाण चलाने लगे। उस समय उन तीक्ष्ण बाणों का रोकना असम्भव हो रहा था। देखते-देखते गुरु द्रोण ने पाण्डवी सेना का सर्वनाश सा उपस्थित कर दिया। कभी युधिष्ठिर द्वारा गुरु द्रोण घायल होते, कभी द्रोण द्वारा युधिष्ठिर घायल होते। विचित्र दृश्य देखने में आया। उस समय प्रलय का ही दृश्य दिखलाई पड़ा।

युधिष्ठिर की रक्षा में सत्यजित् बड़ी दृढ़ता से लगा था, किन्तु आचार्य द्रोण के बाणों के आगे उसकी एक भी दाल न गलती थी। बेचारा सत्यजित् युधिष्ठिर को घोड़े, सारथि, रथ तथा युद्ध सामग्रियों से रहित देखकर उन्हें बचाने आया था कि आते ही द्रोण के कठिन बाणों का सामना करना पड़ा। यद्यपि आते ही उसने वह मार-काट मचाई कि द्रोण का रथ उसके बाणों से छिप गया। इस अवसर पर उसने असंख्य कौरवी सेना को मृत्यु के घाट उतारा, पर चतुर द्रोण के तीक्ष्ण बाणों ने शीघ्र ही उसके समस्त बाणों को काट गिराया और देखते-देखते अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके हाथ और सिर को भी अलग कर दिया।

सत्यजित् को इस प्रकार मरते देख युधिष्ठिर का खून खौल उठा। गुरु शिष्यों में घमासान युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर के सभी अस्त्र शस्त्र का निवारण द्रोण करते थे और द्रोण के आयुधों का प्रतिकार युधिष्ठिर करते थे। गदा, बर्छी, तलवार आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चले और कट गये। अन्त में निराश होकर युधिष्ठिर भागने का ही विचार कर रहे थे कि सुशर्मा को हरा कर अर्जुन आ धमके। अर्जुन के आते ही युद्ध का रूप और उग्र हो गया। किन्तु वह मारकाट रुक सी गई। क्योंकि अर्जुन गुरु द्रोण के बाणों को विशेष रूप से रोकने की ही चेष्टा करते थे। इसी प्रकार शाग

तक युद्ध होता रहा। सूर्य के अस्त होने पर युद्ध समाप्त हुआ। दोनों सेनायें अपने-अपने निवास स्थान पर चली गई।

प्रातःकाल होते ही दूसरे दिन फिर युद्ध आरम्भ हुआ। निश्चय के अनुसार सुशर्मा ने अर्जुन को फिर घेर लिया। घमासान युद्ध छिड़ गया। आज के दिन भगदत्त ने बड़ी वीरता दिखलाई। उसका हाथी जो दश हजार हाथी का बल रखता था पांडवों की सेना को कुचलने लगा। भीम की भी वीरता सराहनीय थी। उन्होंने ऐसे बली भगदत्त के हाथी को मार भगाया। तब तक इस घोर उपद्रव का शब्द अर्जुन के कान में पड़ा। वे झटपट उधर को लपके, किन्तु सुशर्मा ने उन्हें बेतरह घेर लिया। उस समय अर्जुन ने अपने घोर पराक्रम से सुशर्मा को करारी हार दी और उसके अठारह हजार सैनिकों को पल मात्र में मार डाला। अर्जुन की इस वीरता से श्री कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त शीघ्रता से रथ दौड़ाकर भगदत्त के पास अर्जुन को पहुँचा दिया।

अर्जुन ने आते ही भगदत्त के धनुष को काट दिया और उसके हाथी को बाणों से घायल किया। व्याकुल भगदत्त ने उस समय बचने का और उपाय न देखकर आँकुश पर नारायण मंत्र का प्रयोग कर अर्जुन पर फेंका। देखते ही देखते आँकुस अर्जुन के पास पहुँचा। पर ऐसे अवसर पर श्री कृष्ण ने अर्जुन को बचाया और झटपट उसे अपने छाती पर रोक लिया। श्री कृष्ण की छाती पर पहुँचते ही आँकुस बैजयन्ती की माला बन गई।

श्री कृष्ण के इस कार्य पर अर्जुन ने उनसे कहा--हे भगवन्! आपने प्रतिज्ञा के विरुद्ध ऐसा क्यों किया! श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि हे अर्जुन! इस आँकुस पर नारायण मंत्र का प्रयोग था। इसे मेरे सिवा और कोई नहीं रोक सकता था। तुम्हारी रक्षा के लिए ऐसा मैंने किया है। इस पर अर्जुन चुप हो गये। कुछ देर के युद्ध के पश्चात् भगदत्त और उसका हाथी दोनों बेतरह घायल होकर भूमि पर गिर पड़े।

भगदत्त के घायल होते ही शकुनि के दो पुत्र आये, जिनका नाम अचल और वृषक था। ये दोनों बड़े मायावी थे। उन्होंने अपनी माया फैलाकर अर्जुन को व्याकुल करना चाहा, किन्तु अर्जुन के आगे एक न चली। अर्जुन ने देखते-देखते उनकी माया का अन्त कर दिया और तीक्ष्ण बाणों से उनका सिर भी काट डाला।

इस अवसर पर दूसरी ओर भीमसेन के परम मित्र राजा नील अश्वस्थामा से भिड़े हुए थे। पर उस युद्ध में राजा नील ने वीरता के साथ युद्ध करते हुए वीर-गति पाई। संध्या हो गई थी, इससे युद्ध समाप्त हुआ सभी लोग अपने २ स्थान पर जा पहुँचे।

इस युद्ध में पांडवों के साथ शल्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा, शकुनि, विविंशति आदि अनेक वीर लड़ते रहे और इसमें असंख्य वीरों को वीर गति मिली किन्तु फल कुछ भी न हुआ। और दुर्योधन की अभिलाषा पूरी न हुई अर्थात् युधिष्ठिर पकड़े न गये।

कौरव सभा

शिविर में पहुँच कर प्रतिदिन की भाँति रात्रि में कौरव-सभा बैठी। सब के बैठ जाने पर दुर्योधन ने परम आवेश में गुरु द्रोण से कहा—हे गुरुदेव! आज दो दिन हुए आपने युधिष्ठिर के पकड़ने की जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी न हो सकी। मुझे तो इसमें भ्रम जान पड़ता है। आपकी वीरता के आगे यह काम कौनसा कठिन था, किन्तु मालूम होता है आप मुझे शत्रु से बढ़ कर शत्रु मानते हैं और पाण्डवों पर आपका अधिक प्रेम है। आपने कई बार युधिष्ठिर को पंजे में आया हुआ पा कर भी छोड़ दिया। इसका क्या कारण है? आप जैसे द्विजकुलभूषण और महात्मा पुरुष से तो ऐसी आशा कदापि न थी। नहीं ज्ञात, आपने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की थी कि जिसे आप पूरा नहीं कर सकते।

दुर्योधन की ऐसी विष बुझी बातों से द्रोण का हृदय काँप उठा। अपमान की तीव्र वेदना और लांछन से उनका चेहरा तमतमा गया और काँपने लगा। पहले तो वे चुप रहे, फिर अपने को संभाल कर बोले--हे दुर्योधन ! आज की यह तुम्हारी बातें अन्याय-मूलक हो रही है। मैंने युद्ध में कुछ भी उठा नहीं रक्खा। इस पर भी यदि मेरे प्रति तुम्हारा ऐसा अविश्वास है तो इसमें सन्देह नहीं कि कौरवों का सर्वनाश निकट है। गुरु द्रोण को इस प्रकार परम क्रोधित देख दुर्योधन कुछ सकुचा गया और नम्रता के साथ गुरु द्रोण को शांत करते हुए बोला–"नहीं नहीं, गुरुजी ! यह बात नहीं है। आप जानते हैं कि आपका यह भक्त कितने संकट में है। आप स्वयं ही देखें कि पाण्डवों द्वारा हम लोगों की कितनी दुर्दशा हुई है। इन्हीं सब असफलताओं से व्याकुल हो कर मैंने ऐसा कहा है। मेरे कहने का अभिप्राय आप पर लांछन लगाना नहीं और न ही अपमान करने का है"।

यद्यपि दुर्योधन की इन बातों का द्रोण पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा फिर भी वे इस रूप में बोले जिसमें जान पड़े कि वे अब क्रोधित नहीं हैं। वे दुर्योधन से कहने लगे–दुर्योधन ! हम तो पहले ही कह चुके हैं कि अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को पकड़ लेना सरल नहीं है। हमारी आपकी तो बात ही क्या यदि देवताओं सहित इन्द्र भी चाहें कि अर्जुन को पीछे हटा दें तो वे भी नहीं हटा सकते। आप यह जान कर मुझे बार-बार दोषी न बनाओ। तुम बार-बार मुझे प्रतिज्ञा पूरी न करने का ध्यान दिलाते हो। पहले यह तो बतलाओ कि तुम्हारे उन महारथियों ने अपनी प्रतिज्ञा कहाँ तक पूरी कि जिन्होंने अर्जुन को रोक रखने का वचन दिया था। यदि वे ऐसा कर सकते तो मुझे प्रतिज्ञा पूरी करने में भी कुछ सन्देह न रहता। हाँ अपनी शक्ति भर युद्ध न किया हो तो अवश्य मैं दोषी हूँ। यदि तुम मेरे दो दिनों के युद्ध से असन्तुष्ट हो तो उसे भूल जाओ; देखो मैं कल कैसा कौशल दिखलाता हूँ, कि कल पाण्डव पक्ष का कोई अपूर्व वीर अवश्य मारा जायेगा। इसमें कोई

सन्देह नहीं। तुम इसे ध्रुव जानो। गुरु द्रोण की इन बातों से दुर्योधन को कुछ शांति मिली। वह अनेक प्रकार से गुरु से क्षमा माँग कर विदा हुआ।

सेनापति अभिमन्यु

प्रातःकाल हुआ। नित्य की भाँति दोनों सेनाएं युद्ध के लिए संग्राम-भूमि में आ डटीं। नित्य की भाँति आज भी सुशर्मा ने अर्जुन को फँसा रक्खा। इस बार अर्जुन बेतरह फँस गये। इधर गुरु द्रोण ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए विकट चक्र व्यूह की रचना कर डाली। इस चक्रव्यूह से पाण्डव पक्ष बिल्कुल अनभिज्ञ था। केवल इसकी लड़ाई अर्जुन ही जानते थे जो दैवयोग से वहाँ उपस्थित न थे। इतने में चक्रव्यूह में मुठभेड़ होगई। पाण्डव पक्ष के वीर भिड़ गए। उन वीरों में सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तिभोज राजा द्रुपद, चेदिराज धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, राजा विराट तथा उत्तमौजा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उस विद्या से अनभिज्ञ होने के कारण सबके सब चक्रव्यूह के मोर्चे पर असफल रहे और सब को विवश हो कर पीछे हटना पड़ा। इसी हटाबढ़ी में पांडव पक्ष की बहुत सी सेना मारी गई। इस घटना से युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए और सोचने लगे कि इस विकट व्यूह में युद्ध के लिए कौन महारथी चुना जाय कि जिसकी अध्यक्षता में लाज रहे। जिस समय युधिष्ठिर इस विचार में निमग्न थे कि उसी समय अर्जुनपुत्र अभिमन्यु वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि दादा जी चिन्तित हैं। यह देखकर अभिमन्यु परम दुःखी हुआ और बोला—हे दादा जी! आप किस चिन्ता में निमग्न हैं। अभिमन्यु की बातों को सुन कर युधिष्ठिर ने अपना सब विचार कह डाला। युधिष्ठिर की बातों को सुनते ही वीर बालक फड़क उठा और बोला—हे तात! यदि पिता जी नहीं हैं तो क्या, उनका अंश मैं उपस्थित हूँ। अपने जीते जी मैं उनके नाम को कलंकित न होने दूंगा। मैं चक्रव्यूह तोड़ने का सारा हाल जानता हूँ, केवल कमी यह है कि संकट के समय बाहर होना नहीं जानता पर क्षत्रियों के लिए इसकी चिंता ही क्या है?

अभिमन्यु की बातों से युधिष्ठिर को कुछ धैर्य हुआ, किन्तु उसे बालक जानकर वे कुछ संकोच में पड़ गये। उन्हें संकोच में देखकर अभिमन्यु बार-बार समझाते हुए युद्ध में जाने के लिए हठ करने लगा। अन्त में समय की नीति ने युधिष्ठिर को बाध्य किया और उन्होंने अनेक आशीर्वाद के साथ उसे चक्रव्यूह का सेनापति बनाया। अभिमन्यु को सेनापति होते देख पांडव सैनिकों में वीर भाव की बिजली दौड़ गई। सब जय २ करने लगे।

अभिमन्यु के सेनापति होने का समाचार जिसने सुना उसने उसे समझाने की कम चेष्टा न की, किन्तु सबके उद्योग व्यर्थ गये। अधिक हठ उसकी स्त्री उत्तरा का था। उत्तरा ने उसे अनेक मायाजालों में फँसाना चाहा पर उस वीर बालक के समक्ष माया की कुछ भी दाल न गली और वह अपनी प्यारी गर्भवती स्त्री की बातों की कुछ भी चिन्ता न कर युद्ध के लिए तैयार हो गया। फिर तो निराश पांडव दल में आशा की लहर दौड़ गई और वे जोश में आकर युद्ध का बिगुल बजाने लगे।

चक्रव्यूह में अभिमन्यु

सूत जी बोले--हे राजन्! इस प्रकार वीर बालक अभिमन्यु चक्रव्यूह तोड़ने के लिए तैयार हो गया। तब उसने अपने सारथि को रथ सजाने के लिए आज्ञा दी। आज्ञा पाकर सारथि ने रथ तो सजाया, पर जब अभिमन्यु रथ पर बैठने चला तब उसने कहा--राजकुमार! आपकी यह षोड़शवर्षीय अवस्था युद्ध करने योग्य नहीं है। आप कौरव सेना के इस बृहत्सागर का किस प्रकार मंथन कर सकेंगे। मुझे आपकी कुमारावस्था पर बड़ी चिंता हो रही है अतः आप इस भीषण संग्राम का सामना करने कैसे जा रहे हैं? इस पर अभिमन्यु ने सारथि को डाँट दिया और बोला कोई भय नहीं, यह कौरव तो किसी गिनती में नहीं हैं। यदि देवराज इन्द्र आवें तो भी मैं उन्हें एक बार भगा सकता हूँ। पिता अर्जुन और मामा कृष्ण सरीखे वीर विक्रमियों का सामना

करने में अपने को समर्थ मानता हूँ। तू मेरे उत्साह को भंग न कर।

यह कह कर नरकेशरी-शावक अभिमन्यु रथ पर जा बैठा। सारथि चुप हो गया। अभिमन्यु ने कहा--हे सूत! अब तू शीघ्रतापूर्वक चक्रव्यूह के समक्ष मेरा रथ ले चल। सारथि ने रथ बढ़ाया। अभिमन्यु बाण फेंकता हुआ चक्रव्यूह के फाटक पर टूट पड़ा। उसके साथ अपने पक्ष की सेना भी थी सामना होते ही घमासान युद्ध छिड़ गया। बाणों की वर्षा होने लगी। वीर धराशायी होने लगे। धीरे-धीरे युद्ध ने भयंकर रूप धारण किया। मृत वीरों का ढेर लग गया। सैनिकों और हाथियों की चिंघाड़ से आकाश गूँज उठा। रक्त की धाराएँ बहने लगीं। कौरव दल में हाहाकार मच गया। सब ओर से त्राहि त्राहि की ध्वनि होने लगी। यह भयंकर दृश्य देखकर दुर्योधन से न रहा गया। वह शीघ्रता से अभिमन्यु का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। दुर्योधन को आगे बढ़ता देखकर द्रोणाचार्य स्वयं आगे बढ़े और सैनिकों को ललकारा कि तुम लोग दुर्योधन की सुरक्षा में डटे रहो। मैं अभिमन्यु का वेग रोकता हूँ। इतना कह कर उन्होंने अभिमन्यु पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। अश्वत्थामा भी अभिमन्यु को ही घायल करने में लगा था। पर उस समय अभिमन्यु का लक्ष्य दुर्योधन पर था। सैनिकों ने अपूर्व वीरता से दुर्योधन को बचाया। तब दुर्योधन पर अपना कुछ प्रभाव न देख अभिमन्यु द्रोण की ओर झुका और उनकी सेना मारने लगा। द्रोण ने भी अभिमन्यु पर कम बाण वर्षा नहीं की। अभिमन्यु की अपूर्व वीरता देख कर शत्रु भी उसकी प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार अभिमन्यु की प्रचण्डता देखकर दुःशासन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा बृहद्बल आदि वीरों ने भी अभिमन्यु पर घोर प्रहार किया, किन्तु वीर बालक ने सबका मानमर्दन करते हुए उन सब के बाणों को काट डाला। इसके पश्चात् अश्मक देश के राजा ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया। किन्तु अभिमन्यु ने उन्हें मार डाला।

अश्मक देश के राजा का मरना था कि कौरव पक्ष में भयानक हाहाकार मच गया और बहुत से महारथियों ने मिलकर अभिमन्यु को मारना चाहा। इसमें दुर्योधन, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा भूरिश्रवा आदि के नाम विशेष हैं। इस बात ने अभिमन्यु को और भी उत्तेजित कर दिया वह कुचले हुए सर्प की भाँति कौरव दल पर टूट पड़ा। उसने ऐसा संग्राम किया कि सभी महारथी दङ्ग हो गये। कितने मारे गये कितने घायल हुए। अन्त में व्याकुल होकर कौरव सेना युद्ध के मैदान से भाग खड़ी हुई। पांडव प्रसन्न हो गये। इससे दुर्योधन को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने अभिमन्यु को मारने के लिए कर्ण को उत्तेजित किया। कर्ण आगे बढ़ा। पर दुःशासन ने अभिमन्यु को घायल कर दिया। इस पर अभिमन्यु ने ऐसा प्रचण्ड बाण मारा कि वह बाण उसकी गले की हँसुली वाली हड्डी को तोड़ कर पार निकल गया। दुःशासन मूर्छित हो गया। सारथि उसे युद्ध-भूमि से बाहर लेकर भाग गया।

दुःशासन के मूर्छित होने पर कर्ण ने अभिमन्यु पर आक्रमण किय और अपने अनेक बाणों से उसे ढक दिया। इतना होने पर भी वह वीर बालक न घबड़ाया और उन बाणों का निवारण करते हुए दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगा। इस प्रयोग ने कर्ण को और भी उत्तेजित किया। वह उत्तेजित होकर भीषण बाण बरसाने लगा। किन्तु वीर बालक ने इसकी कोई परवा न कर कर्ण की ध्वजा और धनुष को काट गिराया। कर्ण विक्षिप्त हो गया।

कर्ण के व्याकुल होते उसका छोटा भाई दुर्धर्ष सामने आया। पर देखते २ अभिमन्यु ने दुर्धर्ष को मार डाला। दुर्धर्ष के मारे जाने से कौरव सेना में हाहाकार मच गया और कर्ण आदि सभी व्याकुल होकर भाग चले। चक्रव्यूह भङ्ग हो गया।

चक्रव्यूह भङ्ग होते ही अभिमन्यु उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे सेना सहित

युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि भी घुसने लगे। पर अभाग्यवश वे जयद्रथ द्वारा रोके गये। जयद्रथ को शंकर का वरदान था, जिससे वह इन्हें रोकने में समर्थ हुआ था। फिर क्या था सब लोग जयद्रथ से ही भिड़ गये और घोर युद्ध होने लगा। उधर अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस कर उथल-पुथल मचाने लगा और सैनिक व्याकुल हो गये। थोड़ी देर में उन व्याकुल सैनिकों ने एक होकर अभिमन्यु को घेर लिया। किंतु घेरे जाने पर भी अभिमन्यु ने घोर मार-काट की और वृषसेन को सारथी, धनुष और रथ से रहित कर दिया। वृषसेन के हटते ही विशातप सामने आया। किंतु अभिमन्यु ने एक ही बाण में उसे को स्वर्ग का मार्ग पकड़ा दिया। इसके पश्चात् सत्यश्रवस ने अभिमन्यु सामना किया। पर अभिमन्यु ने उसे भी यमलोक भेज दिया। अभिमन्यु की ऐसी भीषण मार काट से कौरव सेना में त्राहि-त्राहि की ध्वनि होने लगी। सैनिक इधर उधर भागने लगे।

उनको भागते देख मद्र देश के राजकुमार रुक्म ने उन्हे सँभाला और अभिमन्यु का सामना किया। उसका आक्रमण ऐसा हुआ कि कुछ देर के लिये अभिमन्यु घायल हो गया। किन्तु उसी समय भूखे व्याघ्र की भाँति वह ऐसा टूटा कि रुक्म को मृत्यु के ही घाट उतार दिया रुक्म को देख घायल होकर दुर्योधन आदि भी पीछे हटे। उनका चेहरा फीका पड़ गया।

ऐसी भीषण अवस्था को देखकर द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा, वृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा तथा शकुनि आदि महारथियों को साथ लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण किया। पर ऐसे २ महारथी भी उस वीर बालक की कुछ न कर सके और असफल हो कर पीछे हट गये।

द्रोण आदि के पीछे हटते ही दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण अपनी वीरता प्रदर्शित करता हुआ आगे बढ़ा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। किन्तु स्वर्ग का मार्ग लक्ष्मण को ही तै करना पड़ा। लक्ष्मण की मृत्यु से दुर्योधन परम

दु:खी हुआ और अभिमन्यु को शीघ्र मारने के लिए छ:हों महारथियों को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही वे महारथी अभिमन्यु से भिड़े तो अवश्य, किंतु मुँह की खाकर पीछे हट गये।

महारथियों के पटने पर अभिमन्यु ने जयद्रथ को भी कुछ युद्ध का स्वाद चखाया। तदनन्तर क्राथ और वृंदारक काल के कौर बने और छ:हों महारथी बुरी तरह घायल हुए। इसी बीच में कोशलनरेश ब्रहद्धल ने भी अभिमन्यु का सामना किया, किंतु पुरस्कार में उन्हें स्वर्ग का मार्ग मिला। इस युद्ध में अभिमन्यु द्वारा विपक्ष के दस हजार अन्य सैनिक मारे गये, परंतु दुष्ट आत्मा दुर्योधन को ज्ञान न रहा और अज्ञान वश कुटुम्ब का नाश कराने के लिए सबको युद्ध में भेजता रहा।

अभिमन्यु का वीर गति को प्राप्त होना

अभिमन्यु ने बृहद्धल को मार कर कर्ण को भी खूब छकाया। वह रक्त से रंजित होकर पीछे हटा। तब दु:शासन के पुत्र ने अभिमन्यु का सामना किया। कुछ देर में व्याकुल होने पर अपनी सहायता के लिए अश्वत्थामा को भी बुला लिया। अश्वत्थामा के पहुँचते ही अभिमन्यु ने उसे ध्वजाहीन कर दिया और धीरें से आगे बढ़ कर शल्य और शकुनि को व्यथित कर डाला।

अभिमन्यु के इस भीषण प्रहार से दुर्योधन इतना विकल हुआ कि अपने भविष्य पर रोने लगा। फिर धैर्य धारण कर आचार्य के पास गया। कर्ण भी वहीं उपस्थित था। सबने अपनी दु:खद कथा सुनाई और अभिमन्यु को मार डालने का उपाय पूछा। उन सबको व्याकुल देख कर द्रोण ने मन ही मन अभिमन्यु की प्रशंसा की और फिर कर्ण से कहा--"हे कर्ण! अभिमन्यु का मारना सरल काम नहीं है। क्योंकि उसका कवच बड़ा दृढ़ है। वह अर्जुन का पुत्र है। जब तक उसके हाथ में धनुष बाण रहेगा तब तक उसे देवता और राक्षस भी नहीं हरा सकते। इससे पहले अभिमन्यु को निरस्त्र करो।

फिर क्या था, सब के सब टूट पड़े। कर्ण ने अपने प्रस्तक नामक बाण से अभिमन्यु के धनुष को काट डाला और राजा भोज ने उसके घोड़ों को तथा कृपाचार्य ने पृष्ठरक्षक सहित उसके सारथि को मार डाला। इस प्रकार रथ-हीन वीर बालक पर सातों महारथियों ने घोर प्रहार किया और बाणों से उसे ढक दिया। पर धनुष-खण्डित अभिमन्यु ने तलवार से काम लिया, किन्तु द्रोणाचार्य से उसकी तलवार भी न देखी गई। उन्होंने उसकी तलवार को मूँठ सहित काट दिया। इसी बीच में कर्ण ने भी उसे ढाल रहित होने पर अभिमन्यु विवश हुआ और जब उसे कुछ भी न मिला तो उसने फूट रथ का पहिया उठा लिया और आँधी की भाँति कौरव दल को उड़ाने लगा। पर यह चक्र भी उसके हाथ में बहुत देर तक न रह सका। सात महारथियों ने उसे भी खण्डित कर दिया। तब अभिमन्यु ने गदा से काम लिया। गदा का पहला वार अश्वत्थामा पर हुआ। अश्वत्थामा तो बच गया। किन्तु सारथि और घोड़े सहित उसका रथ न बच सका। उसी समय अभिमन्यु ने सौबल के पुत्र कालिकेय और उसके अनुगामी सत्तर वीरों को भी मार डाला। तब दुःशासन का पुत्र सुदर्शन अंत समय में गदा लेकर उसके सामने आया।

सुदर्शन के आते ही दोनों में पैतरेबाजी होने लगी। इस पैतरे में अभिमन्यु गिरता कभी सुदर्शन गिरता। एक बार दोनों ने एक दूसरे पर वार किया। इस प्रहार में अभिमन्यु की गदा सुदर्शन की छाती पर और सुदर्शन की गदा अभिमन्यु के कंधे पर लगी। इस चोट से दोनों वीर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद सुदर्शन तो होश में आया। किन्तु निरन्तर युद्ध करते रहने के कारण अभिमन्यु की मूर्छा दूर न हो सकी। फिर भी वह गदा लेकर उठा ही चाहता था कि सुदर्शन के मन में पाप समा गया और उसने निर्दयातपूर्वक अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार कर दिया बस यही प्रहार अभिमन्यु के शरीर पर अन्तिम प्रहार था। फिर उसने

न किसी को मारा और न किसी ने उसे मारा। अभिमन्यु सदा के लिए चल बसा। अभिमन्यु-वध से प्रसन्न हो कौरव-विजय का डंका बजने लगा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि अभिमन्यु अन्यायपूर्वक मारा गया है।

युधिष्टिर का शोक

अभिमन्यु के मरने का समाचार सुनकर पाण्डवों की सेना रणभूमि से भाग खड़ी हुई। राजा युधिष्ठिर मूर्छित होकर गिर पड़े। जब सचेत हुए तब अभिमन्यु २ कह कर विलाप करने लगे। इसी समय व्यासजी युधिष्ठिर के पास आये। व्यासजी को देख युधिष्ठिर और विलाप करने लगे। व्यासजी ने कहा राजन्! जो जन्मता है वह एक दिन अवश्य मरता है। अतः जो बात अपने बस में नहीं है, उसमें बहुत शोक करना ठीक नहीं। युधिष्ठिर ने कहा–ऐसा शूर वीर पुत्र मेरे देखते–देखते मारा गया, मैं कैसे धीरज धरूँ।

व्यासजी ने कहा,-"इस पृथ्वी पर बड़े-बड़े शूर उत्पन्न हुए और मृत्यु के मुख में समा गये। वे लोग आप से और आप के अभिमन्यु से कहीं अधिक थे। मैं आप को उनका चरित्र सुनाता हूँ। पूर्वकाल में एक राजा सृञ्जय थे। नारदजी ने संतुष्ट होकर राजा को एक पुत्र दिया, जिसके मल, मूत्र, थूक आदि सुवर्ण हो जाते थे। राजा का घर बार सब सोने का हो गया। इस बात का पता पाकर चोरों ने ले जा कर उसको मार डाला। राजा पुत्र के लिए विलाप करने लगे। नारदजी ने आकर राजा को समझा कर कहा कि इस पृथ्वी पर बड़े बड़े शूर राजा हो गये हैं। वे लोग आप से और आपके पुत्र से कहीं अधिक प्रतापी थे। राजा मरुत, अंबरीष नाभाग, रंतिदेव, मांधाता, गय, पृथु, सुहोत्र, रामचन्द्र, परशुराम आदि बड़े–बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं। इनमें एक से एक शूर वीर प्रतापी और दानी थे। इन लोगों ने लाखों गौ, वस्त्र, अन्न, सुवर्ण के पर्वत आदि दान

कर ब्राह्मणों को संतुष्ट किया था। ये लोग दान करने में कभी आलस नहीं करते थे यज्ञ कर देवताओं को संतुष्ट करते थे। पर ये लोग भी काल के गाल से नहीं बचे। फिर तुम्हारे पुत्र की कौन सी गिनती है। नारदजी के उपदेश से राजा सृञ्जय ने धैर्य धारण किया। इस पर संतुष्ट होकर नारदजी ने उनके पुत्र को जिला कर अपना मार्ग लिया। हे युधिष्ठिर! तुम भी शोक को त्याग कर धीरज धरो।" यह कह कर व्यासजी चले गये। राजा युधिष्ठिर अपने पड़ाव पर आये।

अर्जुन पड़ाव की ओर

उधर सुशर्मा को जीत, सूर्यास्त के बाद अर्जुन पड़ाव की ओर लौटे। एकाएक उनका हृदय धड़कने लगा। उन्होंने कृष्णजी से कहा, हे केशव! न जाने क्यों, मेरा जी घबड़ा रहा है। निश्चय आज मेरी ओर कुछ अनिष्ट हुआ है। आपने भी सुना है कि द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह रचा था। सिवाय अभिमन्यु के और कोई उसको तोड़ नहीं सकता था इससे मेरा चित्त बहुत खिन्न हो रहा है। कृष्ण जी ने कहा, सब कुशल ही होगी। बात करते-करते दोनों पड़ाव के पास पहुँच गये। पड़ाव में उदासी छायी थी। अर्जुन को देख कर लोग मुँह छिपाने लगे। यह दशा देख अर्जुन ने कहा, आज क्या है? तुम लोग मुझे देख कर इधर उधर क्यों देखते हो? आज अभिमन्यु भी नहीं आया?

जब अर्जुन के इन प्रश्नों का उत्तर किसी ने नहीं दिया तब अर्जुन ने जोर से कहा, तुम लोग चुप क्यों हो? मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देते? इस बार राजा युधिष्ठिर ने सब समाचार कह दिया। अर्जुन ने कहा, जयद्रथ की दुष्टता से मेरा पुत्र मारा गया। यदि वह आप लोगो को न रोकता तो अभिमन्यु इस दुर्दशा से अनाथ के समान न मारा जाता। यह कह कर अर्जुन दारुण विलाप करने लगे। सर्वत्र कुहराम छा गया। सब लोग बेतरह पछाड़ खाकर गिर पड़े। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वी अपने सहस्र छिद्रों से गला फाड़-फाड़ कर अभिमन्यु के लिए रो रही है। विचित्र दशा उपस्थित होगई।

योगिराज कृष्ण भी उस करुण दशा से न बचे, किन्तु वे बार-बार अपने को सभाल लेते थे। अर्जुन को विशेष करुणाजन्य विलाप करते देख उन्होंने अर्जुन को उत्तेजित करने के अभिप्राय से युयुत्सु को सुनाकर इस प्रकार कहा—हे धृतराष्ट्र के अहङ्कारी पुत्रो! तुमने एक नन्हें से बालक को मार कर क्या पाया। भला तुम्हें लज्जा नहीं आती जो एक छोटे से बच्चे को मार कर विजय मना रहे हो। भला यह किस विजय में विजय है। तुम्हारा यह सिंह की भाँति गर्जना व्यर्थ है। आज तुम यदि अर्जुन सरीखे वीर को मार कर सेना का मंगलोत्सव करते अथवा सिंह गर्जन करते तो वह किसी अंश तक उपयुक्त था। पर हे अधर्म के पुतले और दुर्बुद्धि की जीती जागती मूर्तियो! अहङ्कार न करो। तुमने एक बालक को मार कर उसमें इन्देह नहीं कि अपने सिर मृत्यु को बैठाया है। अभिमन्यु की आत्मा आकाश से तुमपर वज्र गिरायेगी।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर युयुत्सु ने कहा—हे जनार्दन! मुझे इसका पता नहीं। खेद कि आपने इसका पता मुझे पहिले नहीं दिया, अन्यथा मैं उन अधर्मियों का सर्वनाश किए बिना न रहता। मुझे इस घटना पर महान् दुःख है।

इसके पश्चात् पुत्रशोक से दुःखी अर्जुन का हाथ पकड़कर श्रीकृष्ण जी कहने लगे, "हे अर्जुन! अब अधिक शोक मत करो, तुम वीर हो। अभिमन्यु भी एक वीर बालक था। तुम्हें वीरों की गति भी मालूम है। तब वीरों के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या है। अभिमन्यु के लिए तो कुछ कहना ही नहीं। उसने तो धर्मयुद्ध में वीरगति पाई है। क्षात्रधर्म का पालन करके वह निर्विघ्न उत्तम लोक का भागी हुआ है। वह उत्साही था, उसमें वीरता के यथेष्ट भाव विद्यमान थे। यदि वह इस प्रकार काम आया तो यह उसके लिए उपयुक्त ही हुआ। अब उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। तुम्हारे दुःखी होने से और लोग भी दुःखी हैं। अब वह समय है कि शेष लोगों की

चिन्ता छुड़ाओ और भविष्य का कर्त्तव्य निश्चित करो। श्रीकृष्ण के इन वाक्यों से अर्जुन को कुछ शांति मिली।

भीषण-प्रतिज्ञा

श्री कृष्ण के इस प्रकार समझाने पर अर्जुन को कुछ शान्ति अवश्य मिली, किन्तु उनका वीर रस खौल उठा। वे युधिष्ठिर द्वारा सब हाल सुन चुके थे। जयद्रथ की नीचता उन्हें खलने लगी। उनका स्वाँस जोर से चलने लगा। उस समय ऐसी दशा हुई कि यदि उनका वश चलता, किसी प्रकार धर्म का प्रतिबंध न होता तो वह समस्त कौरव सहित जयद्रथ को पीस देते अथवा एक ही बाण में सबको स्वर्ग की यात्रा करा देते। वे लाचार थे, रह-रहकर उन्हें क्रोध आता था, किन्तु करते तो क्या करते।

इस प्रकार अर्जुन को क्रोधवश में देख सब लोग उन्हें चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। देखते-देखते अर्जुन क्रोध से पागल हो गये और सबको फटकारते हुए बोले–"अब आप लोग यहाँ खड़े होकर मुझे क्या देख रहे हैं? जाइये अपना अपना कार्य कीजिए। मैं अपने प्यारे अभिमन्यु के वध का बदला लूँगा और अधर्मियों को उनके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना सहित नाश कर दूँगा। दुःख केवल इसी बात पर है कि आप वीरों के रहते हुए मेरा अभिमन्यु आज न रहा। मुझे ऐसी आशा स्वप्न में भी नहीं थी कि आप धनुर्धरों के बीच मेरे बेटे की ऐसी दशा होगी। खैर, जो होना था सो गया। बीती हुई बातों के लिए शोक करना मूढ़ता है। मेरे भाग्य में यही बदा था। अब मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगा। उन अधर्मियों को इसका कठोर दण्ड दूँगा। मेरी प्रतिज्ञा है कि जिस पापी जयद्रथ ने मेरे निर्दोष बालक की अन्यायपूर्वक हत्या करवाई है, उसे कल मैं अवश्य मारूँगा। यदि भय से वह धृतराष्ट्र के पुत्रों को त्याग न देगा अथवा राजा युधिष्ठिर, हमारी या श्री कृष्ण की शरण में न आ

जायगा तो इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि, ऐसे समय में उसे कोई भी नहीं बचा सकता। स्वयं द्रोण अथवा कृपाचार्य भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ होंगे। हे वीरो ! मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य है—सत्य है। यदि मैं अपनी यह प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकूँ तो वैकुण्ठ में जाने या स्वर्ग में जाने पर मुझे नरक की वह यातना भुगतनी पड़े, जो माता पिता के मारने वालों अथवा गुरुपत्नी से संभोग करनेवालों को भुगतनी पड़ती है। यदि मैं अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूँ तो कायरों की गति मुझे स्वीकार है। इतना ही नहीं, निन्दा करने वालों की, ब्राह्मण-हत्या करने वालों की गो-हत्या करने वालों की, मांसभक्षियों की तथा गुरुजनों का अपमान करने वालों की जो गति होती है वही गति मुझको भी प्राप्त हो।

इसके साथ-साथ मेरी यह भी प्रतिज्ञा है कि यदि मैं कल सूर्यास्त के पहिले पापी जयद्रथ का सिर उसके धड़ से अलग न कर सकूँगा तो स्वयं अग्नि में जलकर इस नश्वर शरीर को छोड़ कर असह्य दुःख से छुटकारा पाऊँगा।

अर्जुन की इस भीषण प्रतिज्ञा से पाण्डव में उत्साह का समुद्र उमड़ चला। सबकी नसों में वीरता की प्रचण्ड बिजली दौड़ गई। अर्जुन मारे क्रोध में अपना गांडीव घुमाने लगे। श्री कृष्ण का पाञ्चजन्य भी घोष कर बठा जिससे आकाश पाताल कम्पायमान हो गये।

अर्जुन की इस भीषण प्रतिज्ञा से सब लोग उत्साहित अवश्य हुए किन्तु श्री कृष्ण के मुख मण्डल पर चिन्ता की एक हल्की सी रेखा दौड़ गई। उन्होंने अर्जु से पूछा—हे वीर ! तुम्हारी प्रतिज्ञा वास्तव में तुम्हारे ही योग्य है ! किन्तु इसके पूर्ण होने में मुझे कुछ शंका हो रही है। तुमने आज क्रोध से पागल हो कर मेरे अथवा अपने भाइयों से सम्मति लिये बिना ही ऐसी भोषण प्रतिज्ञा कैसे कर डाली। तुम्हारी इस भीषण प्रतिज्ञा से सचेष्ट

होकर कौरव जयद्रथ की पूर्ण रक्षा करेंगे। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी स्वेच्छाचारिता से हम लोगों को भी दुःखी और लज्जित होना पड़े। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि पापी जयद्रथ यहाँ रहते हुए भी तुम्हारे सम्मुख न आने पायेगा। हे वीर! तुमने बिना सम्मति लिये ही ऐसी महती प्रतिज्ञा क्यों कर डाली? ऐसी भूल तो तुमसे कभी नहीं होती थी। यह कहकर श्री कृष्ण जी गंभीर भाव से मौन हो गये।

श्री कृष्ण की ऐसी गम्भीरता देखकर अर्जुन ने वीर भाव से उत्तर देते हुए समझाया –"हे जनार्दन! आप के रहते मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है। मैं आपके अनुग्रह से देखते-देखते इस प्रतिज्ञा को पूरा कर दूँगा। इसे आप निश्चय जान लें कि यदि जयद्रथ की रक्षा के लिए साध्य, रुद्र वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गणों सहित इन्द्र, विश्वेदेव, गन्धर्व, वरुण समुद्र, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, दशों दिशायें गाँव और वनचारी जीव, स्थावर, जंगम आदि सभी जीव आयें तो भी प्रातःकाल मेरे बाणों से जयद्रथ का शिर कटा हुआ देखेंगे। आप से इतना ही निवेदन है कि कल के युद्ध में एक दृश्य देखने में आयेगा, अतः आप रथ की अच्छी तैयारी करा लीजियेगा। हाँ एक बात और है कि सुभद्रा और उसकी बहू को आप समझा दीजिये।" श्रीकृष्ण जी चुपचाप अपने तम्बू में चले गये। अन्य पाण्डव भी अपने २ विश्राम स्थान पर गये। थोड़ी देर बाद उत्तरा, सुभद्रा और द्रोपदी के आकाश फाड़ने वाले करुण-शब्द सब के कान में पड़े उनके रुदन से श्री कृष्ण जी का रोम-रोम रो पड़ा। तब धैर्य के समुद्र श्री कृष्ण जी ने जाकर उन सबको समझाना प्रारम्भ किया। पर इस संसार में पुत्रशोक से कठिन दुःख कोई नहीं है, सुभद्रा का पछाड़ खाकर गिरना पृथ्वी को नीचे लिये जा रहा था। सुभद्रा के साथ द्रोपदी की भी बड़ी बुरी दशा हो रही थी। उत्तरा का तो सर्वस्व ही स्वाहा हो गया था। उसके दुःख की सीमा कौन बतला सकता है परन्तु श्री कृष्ण जी ने सबको शान्त किया।

जयद्रथ की व्याकुलता

अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार जयद्रथ के गुप्तचरों ने उसे पहुँचा दिया। वह दुर्योधन के पास जाकर बोला, राजन्! अर्जुन ने मुझे मारने की प्रतिज्ञा की है। इससे अब मैं अपने देश को जाता हूँ। साथ ही अन्तिम प्रणाम करके यह निवेदन करता हूँ कि मुझे जो त्रुटि हो क्षमा कीजिएगा आप लोगों ने युद्ध में जो मेरी सहायता की है उसके लिए शत-शत बधाई है।

तब दुर्योधन ने उसे रोककर कहा, ठहरो मैं आता हूँ। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा, महाराज! अर्जुन की प्रतिज्ञा से सिन्धुराज जयद्रथ बहुत भयभीत हो गए हैं और घर जाना चाहते हैं। आपकी क्या आज्ञा है। चलो मैं रोक देता हूँ। तब जयद्रथ के पास आकर आचार्य द्रोण ने कहा, सिन्धुराज क्या इतने भयभीत क्यों हो रहे हो। कल मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा कि एक अर्जुन तो सौ अर्जुन भी उसे नहीं तोड़ सकते। तुम्हें भागने की आवश्यता नहीं द्रोणाचार्य के धैर्य देने से जयद्रथ ठहर गया।

प्रातःकाल होने पर युधिष्ठर ने अपने सैनिकों की एक सम्मिलत सभा की सब लोग सभा में आये। किस प्रकार अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण हो इस पर विचार हुआ। सब लोग निश्चय कर सभा से उठे। कृष्ण जी ने अपने साथी दारुक से कहा तुम मेरा रथ तैयार रखना, जब मैं ऋषभ स्वर से शंख बजाऊगा, तब रथ लेकर मेरे पास पहुँच जाना। अब कृष्ण और अर्जुन रथ पर चढ़ कौरव सेना की ओर चले। युधामन्यु और उत्तमौजा नाम के अर्जुन के साले उनकी रक्षा के लिए साथ हो लिये।

अर्जुन का पराक्रम

इधर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना बत्तीस कोस की लम्बाई में खड़ी कर दी। सबसे आगे दुःशासन की अधीनता में पचास हजार हाथियों की सेना खड़ी की इसके पीजे छकड़े केसमान एक दूसरी सेना खड़ी हुई इस सेना के छः द्वार

थे। एक द्वार पर द्रोणाचार्य स्वयं खड़े हुए दूसरे पर कृतवर्मा, तीसरे पर काम्बोज (काबुल) देश के नरेश सुदक्षिण, चौथे पर विन्द अनुविन्द, पाँचवें पर श्रुतायु और छठे पर नियुतायु को रखा। इसके पश्चात् कमल के फूल के समान सेना खड़ी की। द्रोणाचार्य जिस स्थान पर खड़े थे वहाँ से छः कोस दूरी पर (कमल केसर के स्थान पर) जयद्रथ को रखा। यद्यपि जयद्रथ कमल-व्यूह के मध्य भाग में रखा गया था, तथापि आचार्य ने उसकी रक्षा के लिए कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण शल्य, भूरिश्रवा और दुर्योधन को भी नियत कर दिया था, इसके अतिरिक्त इक्कीस हजार पैदल सैनिक, साठ हजार रथ, चौदह हजार मतवाले हाथी और एक लाख घोड़े के सवारों को भी जयद्रथ की रक्षा में वहाँ नियत किया। इस प्रकार शकट-व्यूह की रचना कर द्रोण अर्जुन के आने का मार्ग देखने लगे।

देखते देखते दोनों सेनाओं का सामना हुआ। दोनों ओर से शंखों की ध्वनि हुई उस ध्वनि से भयभीत हो कितने वीर धराशायी हो गए, कितने अपने स्थान पर ही मूर्छित हो गये। विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा। इतने में दुःशासन आगे बढ़ा तो घोर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन ने अपने कठोर बाणों से असंख्य वीरों, हाथियों तथा पैदल सैनिको को स्वाहा कर दिया। अर्जुन के एक-एक बाण से सौ-सौ हाथी घायल होने लगे। इस अवसर पर अन्य सैनिकों ने भी कम पराक्रम नहीं किया। किन्तु वीर अर्जुन के आगे उनके सारे उद्योग निष्फल हो रहे थे। देखते-देखते दुःशासन का भीषण प्रहार गर्द की भाँति विलीन हो गया। उसकी सेना भाग चली। पृथ्वी पर रक्त की धारा बह चली। लाशों के ढेर लग गए। अन्त में दुःशासन भी भयभीत हो द्रोणाचार्य की शरण में चला गया।

दुःशासन के पलायन से अर्जुन द्रोणाचार्य के सम्मुख आये। सम्मुख आते ही गुरु शिष्य में सहानुभूति होने वाली थी कि उन्हें अपना अपना

ध्यान आया। दोनों वीर कर्तव्य की ओर खिंच गये और रण में उचित कर्म करने के लिए बाध्य हुए। ये दोनों वीर साधारण नहीं थे इनके समान उस समय भारत में एक भी वीर न था। दोनों सिंह पुरुष भिड़ गए। घनघोर युद्ध हुआ। कभी द्रोण घायल होते कभी अर्जुन। विचित्र रण-कौशल दिखलाई पड़ा। असंख्य सैनिक काम आये। अन्त में गुरु की विजय हुई और आचार्य द्वारा अर्जुन घायल हो गये। किसी प्रकार छुटकारा मिला तो दूसरे द्वार पर कृतवर्मा से मुठभेड़ हो गई। वहाँ भी उसी प्रकार घमासान युद्ध हुआ। किन्तु महाबली अर्जुन के आगे कृतवर्मा बहुत देर न रुक सके और शीघ्र ही पराजित हो गये।

कृतवर्मा के पराजित होने पर तीसरे द्वार के रक्षक सुदक्षिण ने अर्जुन का सामना किया। सुदक्षिणको सामने आते देख अर्जुन की भुजाएँ फड़क उठीं। कुछ देर के भीषण युद्ध के पश्चात् अर्जुन के एक तीक्ष्ण बाण ने सुदक्षिण का काम तमाम कर दिया। अब अर्जुन आगे बढे तो चौथें फाटक पर विन्द अनुविन्द मिले। किन्तु वे अर्जुन के बाणों के शिकार हुए। तब पाँचवें फाटक पर श्रुतायुध मिला। इस वीर ने अपनी गदा का भीषण वार कृष्ण पर ही वार किया। यद्यपि कृष्ण को कुछ चोट न आई किन्तु वह गदा उलट कर उसे ही जा लगी। जिस प्रकार क्रोधी मनुष्य अपने क्रोध से ही नाश हो जाता है उसी प्रकार अपनी क्रोधित गदा से श्रुतायुध मारा गया। उसके मरते ही समस्त सैनिक भाग चले अब अर्जुन छठे द्वार पर पहुँचे। वहाँ नियुतायु मिला। अर्जुन ने उसको मार डाला। इस प्रकार द्रोण रचित शकट-व्यूह भंग हो गया।

दुर्योधन-पलायन

अब शकट-व्यूह के भंग हो जाने पर अर्जुन निर्भीकतापूर्वक आगे बढे। उस समय अर्जुन के घोड़े बहुत थक गये थे। श्री कृष्ण ने उन्हे जल पिलाना

चाहा। अर्जुन ने विश्वकर्मा के त्वाष्ट्र नामक अस्त्र से एक सुन्दर तालाब बना दिया। श्रीकृष्णजी ने घोड़ों को जल पिलाने के लिए रथ से अलग किया। तब अर्जुन रथ से उतरकर पृथ्वी पर से ही युद्ध करने लगे। इस अवस्था में अर्जुन को देखकर कौरवों ने उन्हें घेर कर मार डालने का निश्चय किया। किन्तु वीर अर्जुन के आगे केवल उनका विचार ही रहा, वे कुछ भी न करसके इतने में श्री कृष्ण जी ने घोड़ों को पिलाकर शीघ्र ही रथ तैयार कर दिया और अर्जुन फिर रथ पर चढ़ कर युद्ध करने लगे। फिर तो वे गांडीव उठा असंख्य वीरों को मारते काटते जयद्रथ की ओर बढ़े। आगे दुर्योधन मिला। अर्जुन दुर्योधन के निकट पहुँच गये। अर्जुन को देखते ही दुर्योधन के प्राण गले में आ गये। वह अत्यन्त व्याकुल हो दौड़ता हुआ द्रोणाचार्य के पास आया और बोला—"हे आचार्य! देखिए आपके रहते अर्जुन आगे बढ़ गया। मुझे आपसे ऐसी आशा कदापि न थी कि आप वचन देकर भी अर्जुन को भीतर जाने देंगे। आपको ऐसा न करना चाहिये था। देखिये अर्जुन काल के समान आगे बढ़ता ही जा रहा है। इस समय अर्जुन के वेग से मैं बहुत व्याकुल हूँ। मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिसका दण्ड आप इस प्रकार दे रहे हैं। मैं नही जानता कि आप भीतर से कुछ और बाहर से कुछ और हैं। यदि इस समय भी आप कुछ ध्यान नहीं देंगे तो हम लोगों के मुख में कालिख लगे बिना न रहेगी।"

दुर्योधन की इन बातों को सुनकर आचार्य दुःखी हुए। फिर भी अपनी अवस्था पर विचार करने लगे "हे राजन्-दुर्योधन! इस समय तुम राजा हो। तुम्हारी भली बुरी सभी बातें मुझे मान्य हैं। इसका मुझे कुछ भी क्षोभ नहीं है किन्तु खेद केवल इस बात का है कि तुम सब युवा हो कर भी पीछे हट जाते हो और बार २ मुझ वृद्ध पर बिगड़ते हो। अर्जुन की वीरता की ओर ध्यान तो देते नहीं, बार-बार मुझे दोषी ठहराते और कलंक लगाते हो, एक तो अर्जुन स्वयं ही वीर है। दूसरे उसके सारथी श्रीकृष्ण होगये हैं, भला

बताओ उसको कौन विजय कर सकता है। मेरी वृद्धावस्था का शरीर क्या करे! मैं कुछ भी उठा नहीं रखता हूँ। आगे जैसा तुम्हारा विचार हो। अब मैं आगे अर्जुन को रोकने जाता हूँ तो उधर युधिष्ठिर बाण की अग्नि में सारी कौरव सेना धुन उठेगी। इससे अच्छा तो यही है कि तुम स्वयं जा कर अर्जुन के बेग को रोको।

आचार्य की ऐसी बात सुनकर दुर्योधन ने कहा, हे आचार्य! आप यह क्या कह रहे हैं? यदि आप अर्जुन को न रोक सके तो यह मेरे रोके रुकेगा?

दुर्योधन की इस बात पर द्रोणाचार्य ने उसे समझाया कि हँसी नहीं मैं ठीक कहता हूँ लो यह मेरा अभेद्य कवच इसे पहन कर तुम उसका सामना कर सकते हो इस कवच को पाकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ और अभिमान में आकर अर्जुन को रोकने चला। उस समय वह भादों की मेघकी भाँति शोभित हुआ।

अभेद्य कवच-धारी दुयर्धोन अभिमान में आकर तुरन्त ही अर्जुन के सामने जाकर उन्हें ललकारने लगा। अर्जुन ने उसका स्वागत किया और अपने चौदह बाणों से उसे बेधना चाहा। किन्तु उस अभेद्य कवच पर बाण व्यर्थ हुए। इस पर अर्जुन को आश्चर्य हुआ। श्री कृष्ण भी स्तम्भित हो गये। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अर्जुन को सचेत किया कि हे अर्जुन! इसके शरीर पर बाण व्यर्थ होगे क्योंकि इसके शरीर पर जो अभेद्य कवच है वह द्रोणाचार्य का है। श्री कृष्ण की बातों को सुनते ही अर्जुन सँभल गये और शरीर में बाण मारना छोड़कर उसके पंजों को लक्ष्य बनाया। पंजों में बाण लगते ही दुर्योधन मूर्छित हो गया। पश्चात् अर्जुन ने उसके धनुष को काट दिया और घोड़ों को भी मार डाला। सारथी भी न बचा। देखते-देखते अर्जुन ने इतना भीषण प्रहार किया कि दुर्योधन की हथेलियों और कानों के बीच में भी बाण धँस गये। अब दुर्योधन बेतर॰ घायल हो अपने रथ के लिए इधर उधर देखने लगा। उसी समय कौरवों के एक दल ने

आ कर अर्जुन को घेर लिया। इस अवसर को पा दुर्योधन प्राण बचा भाग गया।

सात्यकि की वीरता

इस प्रकार दुर्योधन को भगा कर अर्जुन आगे बढ़े। यहाँ से पृथ्वी ढलुआँ थी जिससे कौरवों की बन आई, उन्होंने अर्जुन को बेतरह घेरा, किन्तु घोर युद्ध करके अर्जुन ने सबको मार भगाया। श्री कृष्ण जी बार बार शंख ध्वनि करने लगे। शंख का बार बार बजना सुनकर युधिष्ठिर को शंका हुई। उन्होंने अनुमान किया कि कदाचित् अर्जुन पर कोई विशेष आपत्ति आई है जिससे सहायता के लिए श्री कृष्ण जी शंख फूँक रहे हैं। ऐसे समय में उन्होंने वीर सात्यकि को अर्जुन की सहायता के लिए भेजा। सात्यकि अर्जुन का प्रधान शिष्य और एक अपूर्व साहसी योद्धा था। वह अर्जुन के मार्ग से ही आगे बढ़ा। मार्ग में उसने ऐसी वीरता दिखलाई कि लोग अर्जुन को भूल से गये और कहने लगे कि यह दूसरा अर्जुन कहाँ से टूट पड़ा। सब के जान के लाले पड़ गये। वह जिधर ही जाता सब लोग उसपर भीषण प्रहार करते, किन्तु वह बात की बात में सब का प्रहार निष्फल कर देता और आगे बढ़ जाता। इसी प्रकार युद्ध में उसने द्रोणाचार्य, कृतवर्मा आदि को हटा दिया। जलसन्ध से सामना पड़ते ही उसने उसकी दोनों भुजायें काट दीं और तत्क्षण अर्जुन तक पहुँचने की लिप्सा से उसका अंत कर दिया और आगे बढ़ चला।

आगे बढ़ते ही उस पर द्रोण का दूसरा प्रहार हुआ। घोर युद्ध छिड़ गया। इस बार सात्यकि द्वारा दुर्योधन के घोड़े और सारथी मारे गये दुर्योधन भाग खड़ा हुआ। दुर्योधन के साथी उत्तेजित होकर सात्यकि पर घोर प्रहार करने लगे। कुछ देर बाद द्रोण ने अपना रुख बदल दिया। अब वे युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से भिड़ गये। इससे सात्यकि निर्भीकता-

पूर्वक आगे बढ़ा। आगे बढ़ते ही उसे सुदर्शन ने रोका। सात्यकि ने सुदर्शन का काम समाप्त कर दिया। तब उससे बहुत से पहाड़ी सैनिक भिड़े। ये पहाड़ी बड़े वीर थे। पर सात्यकि की बाण विद्या ने वहाँ भी अपूर्व कौशल दिखलाया। देखते–देखते सात्यकि ने अपने सर्पाकार बाण से पाँच सौ राजाओं की भुजायें काट डालीं। इससे कौरव वीर बेतरह घायल होकर भाग चले। पश्चात् सात्यकि ने अपने सामने खड़े पाँच सौ त्रिगर्तों को मार डाला। इस समय दुःशासन भी घायल हुआ।

इस प्रकार अद्भुत युद्ध करता और असंख्य वीरों को मारता हुआ सात्यकि आगे बढ़ रहा था कि बीचही में फिर श्री कृष्ण के शंख की तुमुल ध्वनि सुनाई पड़ी। बेचारा सात्यकि सेनाओं से घिर जाने के कारण वह कार्य न कर सका। शंखध्वनि सुन कर युधिष्ठिर फिर व्याकुल हुए। सात्यकि भी न लौटा। तब तीसरा पहर व्यतीत होते देख युधिष्ठिर के मन में परम दुःख हुआ। उन्होंने भीम को बुलाकर अपनी सारी व्याकुलता कह सुनाई और फिर उन्हें अर्जुन का संदेश लेने के लिए भेजना चाहा।

युधिष्ठिर की व्यग्र वाणी को सुनकर भीम ने उन्हें समझाया और कहा- हे भाई! अर्जुन की आप चिन्ता न करें क्योंकि वह जिस रथ पर सवार होकर आज गया है वह सर्व मांगलिक है। उसे उस रथ पर रहते हुए कोई नहीं मार सकता। पर आपकी आज्ञा है तो मैं जाता हूँ। इतना कह कर भीम धृष्टद्युम्न को युधिष्ठिर की रक्षा के लिए सचेत कर अर्जुन की ओर आगे बढ़े।

भीम की भीमता

ज्यों ही भीम आगे बढ़े कि दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, बृन्दारक सुहस्त, सुषेण, भीम, कर्ण, अभय, सुवर्चा और दुर्विमोचन आदि सभी दुर्योधन के भाइयों ने उन्हें घेर लिया। देखते ही देखते भीम ने सबको पीछे

हटाया और गुरु द्रोण के सामने आ गये। भीम ने पहुँचते ही असंख्य हाथियों का संहार किया। भीम की प्रचण्डता से सेना में भगदड़ मच गई। उस भगदड़ को देखकर द्रोण परम क्रोधित हुए और प्रचण्ड गति से भीम पर टूट पड़े। गुरु के कठिन प्रहार से भीम की शक्ति क्षीण हो गई। इस अवस्था में अत्यन्त दुःखी हो भीम ने अपनी गदा उठाई। गदा उठाते ही प्रलय की दशा हो गई। भीम ने गदा का प्रहार गुरु जी पर भी किया किन्तु आचार्य ने कूद कर अपनी रक्षा की। इसी क्रोध में भीम दुर्योधन के आठ भाइयों का वध कर आगे बढ़े। सैनिक भाग चले।

अब भीम के भीषण प्रहार को रोकने के अभिप्राय से द्रोण फिर सामने आये। उन्होंने अनेक रूप से भीमसेन को विचलित करने की ठानी। भीम उत्तेजित हो उनपर खंडित रथ फेंकने लगे। उन्होंने आठ रथों को द्रोणाचार्य के ऊपर फेंका। द्रोण ने उन रथों को भीम पर फेंक दिया। इस फेंका फेंकी में असंख्य वीर काम आये। भीम को रास्ता मिला वे आगे बढ़े। आगे बढ़ते ही उन्होंने देखा कि अर्जुन वीरता के साथ युद्ध कर रहे हैं। भीम की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे अपनी घोर गर्जना से आकाश और भूमि को कम्पित करने लगे। भीम की घोर गर्जना को सुनकर युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने अब समझ लिया कि अर्जुन कुशल से हैं और भीम उस तक पहुँच गया। अब अर्जुन और भीम के मिलते ही युद्ध का रूप भयानक हो उठा। तब भीम की गर्जना कर्ण को असह्य हो गई। वह सामने आकर भीम से युद्ध करने लगा। इस बार कर्ण ने भीम के रथ, घोड़े, सारथी, धनुष, गदा और तलवार आदि को काट दिया। भीम उसके ऊपर मरे हुए हाथी घोड़े और टूटे रथों को फेंकने लगे। कर्ण ने बाणों से सब को काट कर अपना रथ भीम की ओर बढ़ाया। भीम से कुछ करते न बना। कर्ण ने भीम के गले में धनुष डाल कर अपनी ओर खींचा और कहा बच्चा! तुम्हें छोटे छोटे लोगों से लड़ना उचित है। अभी तुम्हें भोजन के समाज में जाना चाहिये न

कि युद्ध में। कहो तुम्हें युधिष्ठिर के पास पहुँचा दूँ या माता कुन्ती के यहाँ। इस समय कर्ण चाहता तो भीम को मार लेता, परन्तु कुन्ती को दिये हुए वाक्य को याद कर उसने वैसा न किया। इधर कृष्णजी के संकेत से अर्जुन ने कर्ण के रथ आदि को काट दिया। कर्ण भीम को छोड़कर चला गया। भीम ने कौरवों की सेना में से एक रथी को उसके रथ से उतार लिया, और उसी रथ पर बैठ दुर्योधन की सेना को काटने लगा।

सात्यकि बढ़ता २ अर्जुन के पास पहुँचा। यह देख भूरिश्रवा उससे युद्ध करने को बढ़ा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। दोनों ने दोनों के रथ आदि काट दिये। दोनों तलवार लेकर लड़ने लगे। दोनों की तलवार भी कट गई। अब दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। भूरिश्रवा ने सात्यकि को पछाड़ उसके छाती पर पैर दिया, और तलवार निकाल कर उसका सिर काटना चाहा। सात्यकि कुम्हार के चक्र के समान अपना सिर घुमाने लगा। इससे भूरिश्रवा उस पर वार नहीं कर सकता था। यह देख कृष्ण जी ने अर्जुन से उसकी रक्षा करने को कहा। अर्जुन ने पहिले तो अस्वीकार किया, परन्तु कृष्ण जी के बार-बार कहने पर एक बाण चलाकर मय तलवार के उसका हाथ काट दिया। अकस्मात् हाथ कटा देख भूरिश्रवा अर्जुन के पास आकर कहने लगा, मैं तुमसे युद्ध नहीं करता था जो तुमने बाण चलाकर मेरा हाथ काट दिया। तुमने यह कार्य धर्म के विरुद्ध किया। अर्जुन ने कहा सात्यकि मेरे पुत्र के समान है। यदि मैं उसे न बचाता तो वह भी अभिमन्यु के समान मारा जाता। तुम्हारे तिरस्कार से मुझे कोई दुःख नहीं हुआ। मैं राजा युधिष्ठिर आदि पर जितना स्नेह करता हूँ तुमसे भी उतना हीं प्रेम करता हूँ। भूरिश्रवा चुप हो गया। उसने अपने तर्कश से बाण निकाल कर पृथ्वी पर बिछा दिया, और योगासन लगा कर उस पर बैठ गया। कुछ ही क्षणों के बाद उसका प्राण ब्रह्मांड फोड़ कर निकल गया। इधर सात्यकि उठ कर उसके मृत शरीर की ओर दौड़ा। सब लोग हाँर करते ही थे परन्तु उसने तलवार से भूरिश्रवा का सिर काट लिया।

जयद्रथ वध

अब दो घड़ी दिन बाकी रह गया था। अर्जुन जयद्रथ को मारने के लिए बड़े वेग से बाण चलाने लगे। इस समय के उनके चलाये हुए बाणों का वेग कोई नहीं सह सकता था कर्ण आदि उनको रोक तो रहे थे, परन्तु बार बार अर्जुन उन्हें परास्त कर जयद्रथ की ओर बढ़े जाते थे। इनके उधर बढ़ते ही कर्ण आदि सँभल कर फिर मुकाबला करते थे। इस भाँति जान लगा कर लड़ने से कर्ण आदि बहुत थक गये, परन्तु तब भी वे अर्जुन को रोक रहे थे। अब जयद्रथ बहुत समीप था। यह देख कृष्ण जी ने अपने प्रभाव से आकाश में ऐसा अंधेरा कर दिया जिसमें सब लोग सूर्यास्त हुआ समझें। चारों ओर इस बात का शोर होने लगा, कि सूर्यास्त हो गया, अब अर्जुन प्रतिज्ञा के अनुसार अपना प्राण त्याग करेगा। यह सुन जयद्रथ रथ के बाहर अपना सिर निकाल सूर्य को देखने लगा। कृष्ण जी के इशारा करते ही अर्जुन ने उसका सिर काट दिया। इधर कृष्ण जी ने अंधकार को खींच लिया। लोगों ने देखा अभी एक घड़ी दिन बाकी है। कृष्ण जी ने अर्जुन को उसके प्रतिज्ञा पूर्ण करने की बधाई दी। भीम आदि ने हर्ष से सिंहनाद किया और अपनी सेना की ओर लौटे। इस समय कर्ण अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा से आगे बढा। कृष्ण जी ने पांचजन्य शंख बजाया। दारुक उनका रथ लेकर उपस्थित हुआ। कृष्ण जी की आज्ञा से उस पर बैठ सात्यकि कर्ण से युद्ध करके उसको परास्त किया। अर्जुन आदि ने लौट कर राजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने सबको बारी बारी गले लगाया।

इधर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा--गुरु जी! आपकी उपेक्षा से जयद्रथ और मेरी सात अक्षौहिणी सेना मारी गई। तब क्रोध से द्रोणाचार्य ने कहा, मैंने प्राण देकर जयद्रथ की रक्षा की। पर मृत्यु को मैं कब रोकता। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सब पांचालों को बिना मारे मैं कवच नहीं उतारूँगा। आज रात को भी युद्ध होगा।

घटोत्कच-वध

रात भर युद्ध हुआ। इस युद्ध में कर्ण ने बड़ा पराक्रम दिखाया। सहदेव और नकुल को पकड़ कर भी उसने कुन्ती के कहने के अनुसार उन्हें छोड़ दिया। आज अर्जुन भी उससे पार नहीं पा सकते थे। उसने पांडवों की सेना के लाखों योद्धाओं को मार गिराया। यह दशा देख कृष्णजी ने घटोत्कच राक्षस को उससे भिड़ा दिया। घटोत्कच और कर्ण में भयंकर युद्ध हुआ। कर्ण के बाणों से पांडवों की सेना जितनी मरी थी, घटोत्कच के बाणों से उसकी चौगुनी कौरवों की सेना मारी जाती थी। घटोत्कच के वेग से कौरव सेना के बड़े-बड़े योद्धा पिसे जाते थे। स्वयं कर्ण भी बेतरह घायल हो रहा था। सब को इस बात का विश्वास हो गया कि घटोत्कच के हाथ से रक्षा होना कठिन है। लोग कर्ण से उसपर अमोघशक्ति फेंकने को कहने लगे। लाचार कर्ण ने घटोत्कच पर अमोघशक्ति चलाई। घटोत्कच समझ गया कि अब मेरी रक्षा नहीं हो सकती। यह विचार, पांडवों के लाभ के लिये वह कौरवों की सेना के ऊपर आकाश में उड़ गया, और अपने शरीर को इतना बड़ा कर लिया कि जिसके नीचे कौरवों की बहुत सी सेना पिस मरे। अमोघशक्ति उसकी छाती में घुस गई। वह मर कर पृथ्वी पर गिरा। उसके नीचे दुर्योधन की अक्षौहिणी सेना पिस गई। राजा युधिष्ठर घटोत्कच के उन उपकारों को जो गंधमादन की यात्रा में किया था स्मरण कर विलाप करने लगे। कृष्णजी ने उन्हें धीरज धराया।

द्रोण-वध

सूर्य उदय हुआ। दोनो सेनाओं के योद्धाओं ने सूर्य को अर्घ दिया और फिर युद्ध करने लगे। आज द्रोणाचार्य का वेग बहुत भीषण था। पांडवों की सेना के संरक्षक विराट और द्रुपद आदि उनके हाथ से मारे गये।

लाखों सेना को उन्होंने काटा। भीम अर्जुन आदि बहुत बहुत उद्योग करके भी अपनी सेना की रक्षा न कर सके। जो उनके सामने गया, वह मारा गया। तीसरे पहर तक यही दशा रही। द्रोण के पराक्रम को देख राजा युधिष्ठिर ने कृष्ण जी से कहा, हे कृष्ण ! यदि द्रोणाचार्य सांयकाल तक इसी भाँति युद्ध करेंगे तो मेरी सब सेना कट जावेगी। आप कोई ऐसा उपाय विचारिये जिसमें जिसमें द्रोणाचार्य मारे जावें। कृष्ण जी ने कहा, राजन् ! द्रोण तब तक नहीं मारे जा सकते जब तक अश्वत्थामा के बारे में कोई बुरा समाचार न सुन लेवेंगे। कृष्ण जी का तात्पर्य समझ कर भीम ने दशार्ण देश के राजा के अश्वत्थामा हाथी को मार कर द्रोणाचार्य से कहा, गुरुजी ! आप अब किसके लिए युद्ध करते हैं। अश्वत्थामा तो अब इस संसार में नहीं है। अभी २ मैंने उसे मार दिया है। द्रोणाचार्य ने कहा तुम मिथ्या कहते हो। जब तक राजा युधिष्ठिर न कहें तब तक मैं स्वीकार नहीं करता। कृष्ण जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा, आप कह दीजिये। युधिष्ठिर इधर उधर करने लगे। बहुत कुछ कहने पर उन्होंने धीरे से कहा अश्वत्थामा मारा गया।

युधिष्ठिर के मुख से इतना निकलना था कि कृष्ण जी और भीम ने शंख बजा दिया। यद्यपि युधिष्ठिर ने यह भी कहा कि वह हाथी था, तथापि शंख के शब्द में वह सुन न पड़ा। द्रोणाचाय ने शस्त्र रख कर योगासन कर प्राण त्याग दिया उनको योगासन में बैठे देख धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट दिया। सभी लोग उसको मना करते ही रह गये। द्रोण के मरते ही कौरव भाग चले।

अश्वत्थामा का शोक

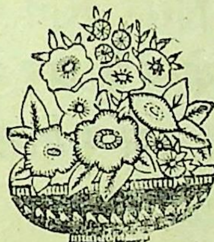
इस समय अश्वत्थामा कहीं दूर युद्ध कर रहे थे। सेना भागती देख उन्होंने कारण पूछा। कृपाचार्य ने सब बात समझा दी। अश्वत्थामा क्रोध से काँपने लगा। उन्होंने कहा, राज्य के लोभ में पड़ युधिष्ठिर ने जो महा पाप किया, है उसका प्रायश्चित्त उसे करना ही होगा। मैं सब पाण्डव और पांचा—

का नाश करके ही शान्त होऊँगा। अश्वत्थामा का रथ पांडवों की ओर बढ़ा। कौरव उनके साथ हुए। इधर यह समाचार जब पाडवों के पास पहुचा तो वे आपस में कहा सुनी करने लगे। सात्यकि धृष्टद्युम्न का द्रोण के मारने में जो उसने अधर्म किया था, उसके लिए तिरस्कार करता था। इस पर धृष्टद्युम्न भूरिश्रवा के मारने में जो अन्याय सात्यकि ने किया था, उसे सुना रहा था। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि कि दोनों शस्त्र लेकर मार काट पर तुल गये थे। लोग बीच बिचाव कर उन्हे समझा रहे थे। अश्वत्थामा ने आते ही पहिले अग्निशिर अस्त्र चलाया। पांडवों की सेना जलने लगी। अर्जुन ने अग्नि शिर अस्त्र फेंक उसे शान्त किया। अब अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र चलाया हजारों बाण उससे निकल पाँडवों का संहार करने लगे। भीम आदि बाण चला कर उन बाणों को काटने लगे। इससे उस अस्त्र का तेज और बढ गया। अब उससे लाखों बाण निकल पांडव का नाश करने लगे। यह देख कृष्ण जी ने कहा, शीघ्र ही सब लोग रथ से उतर जाओ, और अस्त्र को प्रणाम करो। यह शान्त हो जावेगा। सबने ऐसा ही किया। भीम को छोड़ सब अस्त्र की अग्नि से बच गये। क्यों कि भीम तब भी भीषण बाण चला रहे थे। पास ही रहने के कारण वह अस्त्र की अग्नि में जलने लगे। यह देख कृष्ण और अर्जुन ने उनके हाथ से जबरदस्ती धनुष छीन रथ से खींच लिया। अस्त्र एक दम शान्त हो गया। यह देख अश्वत्थामा ने अपने धनुष को फेंक दिया। और यह कहता हुआ कि धिक्कार है अस्त्र विद्या को, इतने प्रभाव वाला अस्त्र इस भाँति शान्त हो गया, अब युद्ध करना वृथा है—सेना को त्याग बन की ओर चला। इसी समय उसके सामने व्यासजी आकर खड़े हो गए। अश्वत्थामा ने प्रणाम किया। व्यास जी ने आशीर्वाद देकर पूछा, बेटा ऐसे उदास मन से कहाँ जा रहे हो? अश्वत्थामा ने सब समाचार कह दिया। व्यास जी ने कहा, तो इसमें युद्ध त्याग कर बन में भागने का क्या प्रयोजन है? तुम जिसे मनुष्य और वसुदेव का पुत्र समझते हो वह कृष्ण

की र.

परमात्मा हैं। उनकी लीला से संसार उत्पन्न और नष्ट होता है। ब्रह्मा रुद्र आदि देवताओं को वही उत्पन्न करते हैं। तुम्हारे अस्त्र को शान्त कर देना कोन सी गिनती में है। इससे इस विषय में अधिक दुःख करना ठीक नहीं है। सब लोग तुम्हें कायर समझ कर तुम्हारी हँसी उड़ाते होवेंगे। जाओ लौट कर युद्ध करो। जय पराजय ईश्वर के हाथ है। अश्वत्थामा लौटकर अपने रथ पर आ चढ़ा। फिर युद्ध होने लगा। अश्वत्थामा ने शाम तक घोर युद्ध किया। सूर्यास्त होने पर दोनों सेनाएँ अपने पड़ाव की ओर चली गईं। आज पांडवों ने समझा कि अब हम लोग अवश्य विजय लाभ करेंगे।

द्रोण पर्व समाप्त



कर्ण पर्व

कर्ण का सेनापति बनना

आचार्य द्रोण के मारेजाने पर कौरवसेना संतप्त होगई। विशेषकर अश्वत्थामा, दुर्योधन, कर्ण, शकुनी और दुःशासन को बड़ा धक्का लगा। रात्रि में कौरव शिविर में परामर्श-सभा बैठी। दुर्योधन ने आचार्य की मृत्यु पर खेद प्रगट करके कहा, अब हमारी सेना का सेनापति कौन होगा। अश्वत्थामा ने सेनापति के उत्तरदायित्व का विराट् वर्णन करके कहा, हमारे दो सेनापति मारे गये। वह दोनों ही बड़े योग्य थे, अब वैसा ही कोई व्यक्ति इस पद को ग्रहण करे। किन्तु अब महावीर कर्ण के सिवा वैसा कोई दिखलाई नहीं पड़ता। इससे आप कर्ण को सेनापति बनाइए।

अश्वत्थामा का यह प्रस्ताव दुर्योधन को अच्छा लगा। उन्होंने युद्ध के पिछले दिनों की चर्चा कर कर्ण को सेनापति बनाने पर प्रकाश डालकर कहा, वास्तव में भाई कर्ण इसके योग्य हैं। अतः इन्हीं को सेनापति बनाया जाय। यह सबने पसंद किया। फिर तो दुर्योधन ने कर्ण को चन्दन लगा पुष्प माला पहिना कर युद्ध का सारा भार सौंप दिया। कर्ण ने उत्साहपूर्वक सेनापति का उत्तरदायित्व ग्रहण किया।

प्रातः काल होते ही सारी सेनाएँ संग्राम, भूमि में जा खड़ी हुई। कौरव सेना के आगे सेनापति कर्ण का रथ खड़ा हुआ। कर्ण के सेनापतित्व से कौरवों में आज जान आ गई थी। वह मारो काटो के शब्द से जुझाऊ बाजे बजा रहे थे। उनकी मस्ती को देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा,

भाई ! आज दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाया है। तुम और कर्ण बराबर हो। यदि तुम आज कर्ण को मार लो तो जानो सदा के लिए तुम्हारी विजय हो गई। कौरवों ने मकरव्यूह की रचना की है। तुम किस व्यूह से युद्ध करना चाहते हो, अर्जुन ने कहा, मकर व्यूह से। युधिष्ठिर चुप हो गये। तब अर्जुन ने अपनी सेना को मकर व्यूह में परिणित कर युद्ध करना प्रारम्भ किया। दोनों पक्षों के सैनिक खेत रहें। पृथ्वी रुण्ड मुण्ड से भर गई। रक्त की नदियाँ बहने लगी।

क्षेमधूर्ति वध

इसी समय भीमसेन और क्षेमधूर्ति एक दूसरे से भिड़ गये। दोनों ने एक दूसरे के धनुष को काट डाला। तब शक्ति लेकर दोनों प्रहार करने लगे। दोनों हाथी पर सवार थे। क्षेमधूर्ति का हाथी बड़ा बलवान् था। इससे उसने भीम के हाथी को बहुत मारा। भीम का हाथी भागने लगा। तब भीम हाथी पर से कूद कर गदा ले क्षेमधूर्ति पर प्रहार करने लगा। फिर तो गदा की भयानक मार से भीम ने क्षेमधूर्ति और उसके हाथी को मार डाला। क्षेमधूर्ति के मरने से कौरवों में खलबली मच गयी। सैनिक इधर उधर भागने लगे।

विंद अनुविंद का अन्त

सैनिकों को भागते देख महावीर कर्ण का खून खौल उठा। वह उत्तेजित हो कर पांडवों पर घोर बाण बरसाने लगे। तब नकुल ने उन्हें रोका। किन्तु अश्वत्थामा ने उनके वेग को कम कर दिया। उस समय युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ और अर्जुन संसप्तकों के साथ लड़ रहे थे। कौरव दल में विंद और अनुविंद नाम के दो भाई बड़े वीर थे। यह दोनों सात्यकि से भिड़ गए। सात्यकि भी बड़ा वीर था। अकेले ही दोनों से युद्ध करन

लगा। यद्यपि इन दोनों भाइयों ने सात्यकि के धनुष को कई बार काट दिया, किन्तु वह वीर ऐसा रणकौशल दिखा रहा था कि अनुविंद को उसने मार डाला। भाई के मरने से विंद ने सात्यकि पर भीषण आक्रमण कर उसे अपने बाणों से ढक दिया। सात्यकि का समस्त शरीर बाणों से छिद किन्तु सात्यकि ने एक बार सँभलकर ऐसा बाण मारा कि विंद को मूर्छा आ गई। उसके सारथि का प्राण निकल गया। इससे विंद पैदल युद्ध करने लगा। सात्यकि भी पैदल था। उस समय सात्यकि ने भीषण युद्ध करना आरम्भ किया। तब एक तीक्ष्ण बाण चलाकर उसने विंद को भी मार डाला विन्द के मारे जाने से कैकय देश के सैनिक भाग चले।

चित्रसेन-वध

इसी समय श्रुतिवर्मा और चित्रसेन का युद्ध होने लगा। चित्रसेन ने श्रुतिवर्मा के धनुष को काट दिया। तब श्रुतिवर्मा ने दूसरा धनुष हाथ में लेकर चित्रसेन के धनुष को काटा। किन्तु चित्रसेन ने फिर एक धनुष से उसके धनुष को काट दिया। तब श्रुतिवर्मा ने उत्तेजित हो कर चित्रसेन के अन्तिम धनुष को काटकर, ऐसा मारा कि वह मूर्छित हो गया। यह देख पांडव वीरों को बड़ा उत्साह मिला। वह टूटकर चित्रसेन पर बाण बरसाने लगे। निदान प्रतिबिन्ध्य के हाथ से चित्रसेन मारा गया। कौरव हा हाकार करते हुए भागचले।

आज प्रातःकाल से ही संसप्तकों ने अर्जुन को अपनी ओर फँसा रखा था। अर्जुन अदभुत पराक्रम कर उनसे लड़ रहे थे। उसी समय आचार्यपुत्र अश्वत्थामा ने पहुँचकर अर्जुन का सामना किया। अर्जुन ने उसके धनुष को काट कर खूब घायल किया। इससे अश्वत्थामा उत्तेजित होकर दूसरे धनुष से अर्जुन को घायल करने लगा। अर्जुन को घायल कर अश्वत्थामा ने श्री कृष्ण को भी भुजाओं और छाती में तीन सौ बाण

मारे। कृष्ण जी को घायल होता देख अर्जुन का खून खौल उठा। वह गांडीव से हजारों बाण एक साथ बरसाने लगे। इससे संसप्तक त्राहि-त्राहि की पुकार करने लगे। अश्वत्थामा को तो बहुत चोट लगी। उस समय कोई वीर ऐसा न बचा जो अर्जुन के बाणों से घायल न हुआ हो। अश्वत्थामा ने बहुत चाहा कि अर्जुन के वेग को रोके पर वैसा न कर सका। तब कृष्ण ने ललकार कर कहा, अर्जुन! क्या देखते हो। इसको शीघ्र मारो।

श्री कृष्ण की ललकार से अर्जुन अश्वत्थामा को घायल करने लगे बाण चलाकर अर्जुन ने अश्वत्थामा के घोड़ों की लगाम काट दी। घोड़े इधर उधर भागने लगे। तब प्राण न बचेगा-यह जान कर अश्वत्थामा कर्ण के पास भाग गया।

पाडव वध

यह युद्ध दोपहर तक का है दोपहर पश्चात् अर्जुन से प्राण बचा कर भागा हुआ अश्वत्थामा राजा पाडव से युद्ध करने लगा। पर इस समय उसका बहुत बढ़ा हुआ था। उसके वेग से पाडवों के हजारों सहायक सैनिक हजारों की संख्या में मारे गये। पांडव का जब तक एक बाण चलता तब तक अश्वत्थामा दस बाण चलाकर उसके सैनिकों को मार देता। इस स्थिति को सभालने के लिए अर्जुन पहुँचे पर उस समय अश्वत्थामा ऐसा उत्तेजित हो गया। कि अर्जुन भी उसका कुछ न कर सके। उसने बात की बात में बाण चला कर राजा के दोनो हाथों को और तीसरे बाण से उसका सिर काट लिया पाडव का खंडित शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

अब तक दु:शासन और सहदेव का युद्ध बराबर चल रहा था। तीसरे प्रहर दु:शासन के हाथ सारथि सहित सहदेव और सहदेव के हाथ से दु:शासन कई बार घायल हुए। अंत में सहदेव के हाथ से भयानक मार खाकर दु:शासन को भागना पड़ा। फिर तो सहदेव कौरव सेना को तिष्ट तिष्ट करके मारने लगा।

नकुल का पराक्रम

कर्ण और नकुल जहाँ युद्ध कर रहे थे, वहाँ बड़ा हाहाकार मचा था। फिर भी उस वीर ने कर्ण से लोहा ले रखा था। नकुल के भीषण संग्राम से कर्ण के छक्के छूट गये। तब नकुल ने कर्ण से हँस कर कहा भाई! आप जैसे वीर के साथ युद्ध करते मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। तुम खूब मन लगा कर मुझ पर प्रहार करो। मैं आज तुमको मार कर पांडवों के मार्ग का कंटक दूर कर दूँगा। क्योंकि तू ही दुर्योधन को बिगाड़ने वाला है।

उत्तर में कर्ण ने कहा,--वीर क्षत्री युद्ध के समय बात नहीं करते। युद्ध करो, आज तुम्हारा अभिमान दूर हो जायगा।

यह कह कर कर्ण ने उत्तेजित होकर नकुल पर बाण बरसाना आरम्भ किया। इससे नकुल का शरीर बाणों से बिंध गया। रक्त बहने लगा। तब उसी समय नकुल ने एक साथ सत्तर बाण मार कर कर्ण को घायल कर दिया। इससे कर्ण निश्चेष्ट हो गया। किन्तु उसी क्षण सम्हल कर उसने नकुल का धनुष काट दिया। नकुल ने दूसरा धनुष हाथ में लेकर तीन सौ बाण मार कर कर्ण को मूर्छित कर दिया। उस समय बीरवर नकुल का वेग असह्य था। कौरव दल में कोई उनका सामना न कर पाता था। उसी समय नकुल ने कर्ण का धनुष काट कर खंड खंड कर दिया और सारथि को भी मार डाला।

नकुल-पराजय

सारथि के मारे जाने से कर्ण के क्रोध का वारापार न रहा। वह आँख मूँद कर नकुल पर टूट पड़ा। अब नकुल बेबस हो गये। भीषण बाण बरसा कर कर्ण उन्हें छेदने लगा। कर्ण केउन प्रचंड एवं तीव्र बाणों ने नकुल के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। घोड़ों को मार कर कर्ण ने रथ की

ध्वजा और पताकाओं को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब परिघ लेकर नकुल ने कर्ण पर प्रहार किया। किन्तु कर्ण ने उसे भी काट कर नकुल का शरीर बाणों से छेद डाला। नकुल लाचार हो गये। कर्ण ने अपना धनुष नकुल के गले से फँसा कर आगे की ओर खींच लिया। कर्ण चाहते तो उसी समय नकुल को मार डालते, किन्तु कुन्ती से किये प्रण का उन्हें स्मरण आया। झट धनुष को गले से निकाल नकुल को मृतक जान छोड़ दिया। छोड़ते समय, कर्ण ने कहा, जाओ नकुल! फिर कर्ण के समक्ष स्वप्न में भी युद्ध करने का साहस न करना। युद्ध समान बल वालों के साथ करना चाहिये। नकुल युधिष्ठिर के पास गये। फिर तो कर्ण ने नकुल के सहायक सैनिकों को मार कर भगा दिया। कर्ण के बाण से अनेकों शूरवीर कट कर धराशायी हुए। पृथ्वी रुण्ड मुंड से भर गई। अनेकों हाथी घोड़े लोहू बहाते हुये गिर पड़े। रक्त की धार बहने लगी। सूर्य अस्त हो रहे थे, इससे युद्ध बन्द हुआ। दोनों पक्ष के सैनिक अपने-अपने स्थान को चले गये।

शल्य का सारथि बनना

रात को दुर्योधन ने कर्ण से कहा, भीष्म और द्रोण पाण्डवों से प्रेम करते थे, अतः वे दोनों पाण्डवों को जान बूझ कर बचा लेते थे, परन्तु आप तो पाण्डवों से प्रेम नहीं करते, फिर वे युद्ध में क्यों सफल होते हैं? कर्ण ने कहा---मैं अर्जुन को परास्त करने की इच्छा रखता हूँ, परन्तु उसके सारथि कृष्ण हैं! कृष्ण का मारना सरल नहीं है। मेरे जो सारथि होते हैं, अर्जुन उन्हें सहज ही में मार देता है। कृष्ण रथ हाँकने में बड़े दक्ष हैं। उनका रथ भी अग्नि का दिया हुआ है। अर्जुन के पास जो गाण्डीव धनुष है, वह भी भयानक है। उस पर कितना भी प्रहार किया जाय वह टूट नहीं सकता। यही सब कारण हैं जो अर्जुन परास्त नहीं किया जा सकता। यदि आप कृष्ण जैसा कोई सारथि हमें

दे दें तो गाण्डीव के रहते भी मैं अर्जुन को चूर चूर कर दूँगा। आप मद्रराज शल्य से विनय कीजिए। यदि वे सारथि होना स्वीकार करें तो कृष्ण की समानता में वह हमारे योग्य सारथि हो सकते हैं।

इस पर दुर्योधन ने शल्य से कर्ण के सारथि बनने की प्रार्थना की। पहिले तो शल्य ने अस्वीकार किया, पुनः राजा युधिष्ठिर की प्रार्थना का स्मरण करके कर्ण का सारथि बनना स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने दुर्योधन से इस बात की प्रतिज्ञा कराली कि वह जो कुछ कहें उसे कर्ण को सहना पड़ेगा। कर्ण ने स्वीकार किया।

कर्ण और शल्य का विवाद

प्रातः काल शल्य को सारथि बना कर्ण संग्रामभूमि की ओर चला। कौरव सेना ने युद्ध के जुझाऊ बाजे बजा कर आकाश मण्डल को मुखरित कर दिया। इससे पाण्डव भी सचेष्ट हो गये। उनकी सेना में भी युद्ध के बाजे बजने लगे। कर्ण बड़े उत्साह से पाण्डवों पर आक्रमण करने की बात कहने लगा। मार्ग में उससे जो कोई मिलता, वह कहता भाई! तुमने कहीं अर्जुन को देखा है। यदि देखा हो तो मुझे उसका पता दो, मैं तुम्हें इतने इतने घोड़े, इतने रथ, इतने दास और दासी तथा इतनी अशर्फियाँ दूँगा, क्योंकि आज मैं उसे मारना चाहता हूँ।

कर्ण के इस छिछोरेपन को देख मद्रराज ने हँस कर कहा—कर्ण! मृत्यु को बुलाने के लिए वृथा इतना धन क्यों बाँट देना चाहते हो। वह तो स्वयं तुम्हे खोज लेगा। चलो अर्जुन का सामना होता ही है। आज तुम उसके हाथ से कदापि न बचोगे। तुम बड़े अज्ञान हो कि दान देना भी नहीं जानते। तिस पर कहते हो कि अर्जुन को मारेंगे। कहीं शृंगाल भी सिंह का शिकार करता है? तुम तो गले में पत्थर बाँध कर तैरना चाहते हो, भला तुम अर्जुन को क्या मारोगे?

यदि तुम कल्याण चाहते हो तो व्यूह रचना करके अर्जुन से युद्ध करो। ऐसा मैं दुर्योधन का हित समझ कर ही कह रहा हूँ द्वेष भाव से नहीं।

कर्ण बोला—मैं अपने बाहुबल से अर्जुन को प्राप्त करना चाहता हूँ। पर तुम तो मुझे डरा रहे हो। तुम मित्र रूप में शत्रु हो।

शल्य ने यह सुन कर कर्ण को और कुपित करने की इच्छा से कहा—हे कर्ण! अर्जुन के बाणों को तुम सह नहीं सकोगे। तुम्हारा अर्जुन को आह्वान करना ऐसा है जैसा गीदड़ द्वारा सिंह का, खरगोश द्वारा गजराज का और सर्प द्वारा गरुड़ का।

शल्य के इस प्रकार आक्षेप करने पर कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध हुए। निश्चय ही वचनरूपी शल्य (बाण) छोड़ने कारण ही शल्य नाम पड़ा है। कर्ण ने कहा—मैं अर्जुन के पराक्रम को जानता हूँ। मेरा यह घोर बाण कवच और हड्डियों को भी चीर देने वाला है। यह मैं अर्जुन तथा कृष्ण को छोड़ और किसी पर भी नहीं छोड़ूंगा। तुम उन दोनों फुफेरे और ममेरे भाइयों को मेरे द्वारा मरा हुआ देखोगे। तुम तो दुष्ट स्वभाव के मूर्ख मनुष्य हो। तुम्हें पता नहीं कि शत्रु का सामना कैसे किया जाता है। तुम दुष्ट और पापी देश में उत्पन्न हुए हो। तुम किसी स्वार्थसिद्धि के लिए उन दोनों की स्तुति कर रहे हो। परन्तु मैं उनका वध करके बन्धुबान्धवों सहित तुम्हारा भी वध कर डालूंगा।

हे मूर्ख! हमने सुना है कि मद्रदेशियों में यह बात मुख्य है कि वह अपने मित्र से छल करते हैं। कुटिल और दुराचारी तो परले दर्जे के होते ही हैं। माँ, बहिन और दासियों के साथ भी विलास करते हैं। यही नहीं, गो मांस खाते और मदिरा पीते हैं। तुम भी वैसा करो तो क्या आश्चर्य? सुना है कि मद्रदेश की स्त्रियाँ स्वच्छन्द और पतिवञ्चक होती हैं। पतियों

को कटु वचन कहती हैं। ऐसे देश के निवासी होकर तुम अपने को श्रेष्ठ समझते हो ? मैं दुर्योधन का परम मित्र हूँ, उनके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकता हूँ। इससे मैं आज पाण्डुपुत्रों को गिन-गिन कर मारूँगा। ऐसा कोई नहीं है जो मुझे रोक सके। अब ऐसी बात मुँह से न कहिएगा। नहीं तो इसी गदा से आपका सिर काट कर पृथ्वी पर गिरा दूँगा। तुम सारथि हो। सावधानी से रथ हाँको।

शल्य ने कहा—कर्ण ! तुम्हारा यह प्रलाप ठीक उसी प्रकार है, जैसे वह कौवा कहता था। सुनो, समुद्र के किनारे एक साहूकार रहता था। उसके लड़कों ने एक कौवा पाला था। साहूकार के पुत्रों का जूठन खाकर वह खूब मोटा ताजा हुआ था। किसी दिन उसने आश्रम में जाते हुए हंसों को बुलाकर उनसे कहा, तुम कौन हो ? हंसों ने कहा, हम हंस हैं। कौवा बोला मेरे साथ उड़ सकोगे ? हंसों ने कहा, हाँ ! कौवा बोला, मैं सौ प्रकार से उड़ सकता हूँ। तुम जैसे कहो वैसे ही मैं भी उड़ूँ। हंसों ने कहा—हम लोग सीधे आकाश से उड़ना जानते हैं। कौवा उड़ने को राजी हुआ। एक हंस उसके साथ उड़ने लगा। पहले तो कौवा बहुत उछला कूदा। पीछे थक कर समुद्र में गिरने लगा। यह देखकर हंस उसे पीठ पर लाद साहूकार के यहाँ पहुँचा गय—हे कर्ण! तू उसी कौवे के समान धृतराष्ट्र के पुत्रों का जूठन खाकर अर्जुन से युद्ध करना चाहता है। तेरी भी उसी कौवे के समान दुर्दशा होगी।

इस दृष्टान्त को सुनकर कर्ण और भी जल उठा। उसने कहा—शल्य! अब मैं तुम्हारी बातों को सहने में असमर्थ हूँ। किन्तु मैं तुम्हें अब भी क्षमा करता हूँ, ठीक से रथ हाँको। अधिक बोलोगे तो जीभ काट लूंगा। आखिर यह बात इतनी बढ़ी कि, दोनों शस्त्र लेकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। तब दुर्योधन ने समझा कर किसी प्रकार उन दोनों को शान्त किया।

युधिष्ठिर-पलायन

अब युद्ध प्रारम्भ हो गया। कर्ण धनुष उठा कर पाण्डवों की सेना का संहार करने लगा। दुर्योधन आदि भी उसके साथ पाण्डवों की सेना को काटने लगे। इधर से युधिष्ठिर आदि भी कौरवों की सेना में घुस कर उनको मारने लगे। देखते-देखते रुधिर की नदियाँ बह चलीं।

दोपहर तक युद्ध हो जाने पर राजा युधिष्ठिर और कर्ण का सामना हुआ। सामना होते ही युधिष्ठिर ने कर्ण को बहुत अपमानसूचक वचन कहे। इससे क्रोधित हो कर कर्ण ने दस बाण मार कर युधिष्ठिर को घायल कर दिया। तब युधिष्ठिर ने एक बाण ऐसा मारा कि वह कर्ण की कोख को चीर कर बाहर निकल गया। इससे कर्ण के गिरने से पाण्डवों को बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु सचेष्ट होते ही कर्ण ने बाणों की झड़ी लगा दी। इससे पाञ्चाल सैनिक भूने गये तब युधिष्ठिर ने कर्ण को और कर्ण ने युधिष्ठिर को कई बार घायल किया। किन्तु उससे युधिष्ठिर को ही अधिक चोट लगी। इससे पाण्डव दल के धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पांचों पुत्रों ने कर्ण पर भीषण बाण बरसाये। बाण बरसा कर उन सबने कर्ण को घेर कर मारना आरम्भ किया इससे व्याकुल हो कर कर्ण ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट कर दशों दिशाओं को व्याप्त कर दिया। बाणों की उस वेग धारा ने पांडवो की सेना का एक साथ नाश करना प्रारम्भ कर दिया। युधिष्ठिर का धनुष कट गया। जब कर्ण ने युधिष्ठिर को निरस्त्र देखा तो उसने नब्बे बाण मार कर उसका कवच भी काट दिया। जब युधिष्ठिर का कवच भी कट कर नीचे गिर गया तो उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होने कर्ण पर अपनी शक्ति को फेंका। परन्तु कर्ण ने उसे भी काट डाला और बाणों की तीव्र वर्षा से उसने युधिष्ठिर को पल भर में ही अत्यंत व्याकुल कर दिया। युधिष्ठिर के समस्त शरीर में बाण लग गये और उनके शरीर से खून की

धारायें बह निकलीं। कर्ण ने युधिष्ठिर की व्याकुलता से पूरा लाभ उठाया और अनेक बाण बरसा कर उसने उनका रथ भी चूर-चूर कर दिया। अब युधिष्ठिर के पास इसके अतिरिक्त कोई उपाय न था कि वहां से पलायन कर जायें। सो वह बिना कुछ भी समझे, निकट के एक दूसरे रथ पर सवार हो कर भाग चले। कर्ण यदि चाहता तो उस समय युधिष्ठिर को जान से मार देता। किन्तु वह कुन्ती को दिये गये अपने वचन याद करके चुप रह गया।

युधिष्ठिर को पलायन करते देख कर दूसरे सैनिक भी उनके पीछे-पीछे भाग चले अब युधिष्ठिर ने एक दम रुक कर कर कहा "मेरे पीछे क्यों आते हो? जाओ जाकर युद्ध करो।" युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर सैनिक गण युद्धभूमि की ओर घूम पड़े और युधिष्ठिर अपने शिविर में चले गये।

कौरवों की व्याकुलता

सैनिकों के लौटते ही भयंर संग्राम शुरू हो गया। मारो काटो के शब्दों से आकाश गूँज उठा कितने ही रथ ध्वजाओं और पताकाओं से वंचित हो गये और कितने ही घोड़े तथा हाथी अंगहीन होकर एक दूसरे पर गिर पड़े। कटे हुए हाथियों का अम्बार लग गया। सहस्रों अश्वारोही पृथ्वी पर सो गये। रुण्ड मुण्ड शवों से जमीन भर गई। भयानक शब्दों से वायुमंडल गूँज उठा। सुन्दर परिधान में सुसज्जित अप्सरायें मृतकों को स्वर्ग की ओर ले जाने लगीं। युद्ध ने उस समय ऐसा रूप धारण कर लिया कि कुछ समझ नहीं आता था कि कौन किसको मार रहा है। पृथ्वी पर शोणित की एक नदी थी, जो बही जा रही थी। भीमसेन ने तो जैसे कौरव सेना में आतंक व्याप्त कर दिया। उसकी गदा के प्रहारों के सामने से अन्त में कौरव सेना को भागना पड़ा। परन्तु कर्ण भी कम नहीं था। उसकी एक ही ललकार से सैनिक लौट पड़े और दोबारा युद्ध रत हो गये।

अर्जुन को आज भी संसप्तकों ने उलझा रखा था। सुशर्मा की गोपाली और नारायनी सेना बहुत प्रसिद्ध थी! किन्तु अर्जुन भी प्राणप्रण से जुटा हुआ था। सुशर्मा बार-बार अर्जुन पर आक्रमण करता था किन्तु अर्जुन सतर्कतापूर्वक उसके प्रत्येक आक्रमण को विफल बनाये जा रहे थे।

अपनी कोई युक्ति सफल न होते देखकर अन्त में सुशर्मा ने अपने सैनिकों समेत अर्जुन को घेरना आरम्भ किया। अर्जुन उनकी इस चाल को समझ गये। ज्यों ज्यों सुशर्मा के सैनिकों की परिधि कम होने लगी त्यों त्यों अर्जुन के बाणों का वेग बढ़ने लगा। अन्त में अर्जुन के गांडीव से निकले बाणों को सुशर्मा के सैनिक सहन नहीं कर पाये और भागने लगे।

अर्जुन की वीरता

सूत जी बोले—हे राजन्, निस्संदेह अर्जुन की मार बड़ी विकट थी किन्तु सुशर्मा भी कुछ कम नहीं थे। पल भर में ही उन्होंने अपनी सेना को फिर जोड़ लिया और दोबारा अर्जुन को घेर कर उन पर आक्रमण किया। अब की बार अर्जुन को संभालना कठिन हो गया। सुशर्मा नें स्वयं तीव्र बाणों के प्रहार से अर्जुन की भुजाओं और छाती को घायल कर दिया। अर्जुन इस विकट प्रहार को सहन नहीं कर पाये और बेसुध हो गये। लोग चिल्लाने लगे कि अर्जुन मारे गये।

इस आवाज के कानों में पड़ते ही अर्जुन में जैसे विद्युत प्रवेश कर गई। एक दम से वह संभल कर उठ खड़े हुए और वायु वेग से अपने इन्द्र अस्त्र द्वारा सुशर्मा के सैनिकों का संहार करने लगे। सहस्रों रथों और सहस्रों घोड़ों तथा हाथियों का नाश हो गया। असंख्य वीर परम गति को प्राप्त हुये।

इस तीव्र आक्रमण से अपनी सेना का इस प्रकार नाश होते देखकर सुशर्मा ने मोर्चेबन्दी तोड़ दी और पीछे हट गया। अब अर्जुन दूसरी ओर मुड़ कर कौरवों का नाश करने लगे। परन्तु संसप्तकों के पीछे हटने से दुर्योधन जल उठा। उसने चौदह हजार पैदल, तीन हजार हाथी और दस हजार रथ देकर सुशर्मा को फिर से अर्जुन के साथ भिड़ा दिया। अब अर्जुन फिर उसे काटने लगे। इतने में युद्ध होते-होते पांडवों के सैनिक अर्जुन के साथ और कौरव दल के सेनापति कर्ण, दुर्योधन, कृतवर्मा कृपाचार्य इत्यादि सब पांडवों से भिड़ गये। फिर तो दोनों दिशाओं के सैनिक युद्ध के बाजे बजा-बजा कर भयानक शस्त्रों का प्रयोग करने लगे। दोनों ओर के वीर मृत होने लगे।

जब कृपाचार्य की मार से शिखंडी बेसुध होकर गिर पड़ा तब वीर सुकेतु ने कृपाचार्य का सामना किया। परन्तु कृपाचार्य ने अपने तीव्र अस्त्रों प्रहार से पहले उसके सारथि को मारा और फिर स्वयं उसको भी धराशायी कर दिया। सुकेतु के मरने से पांडव सेना में बड़ा शोर और हाय-हाय मच गई। धृष्टद्युम्न को आगे करके पांडव निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। इससे कृपाचार्य घायल होगया। दूसरे कौरव भी हताहत हुए और घायल हुए। जब अपनी सेना का यह हाल देखा तो कृपाचार्य सामने से हट गया।

उस समय पांडवों का जोर इतना बढ़ गया कि किसी ने भी सामने आने का साहस नहीं किया। परन्तु उसी समय कृतवर्मा ने अत्यन्त दुस्साहस पूर्वक सामने आकर पांडवों का ललकारा। उसके सामने आने से कौरवों में जान आगई। फिर तो कौरवदल प्राणपण से युद्ध करके पांडवों पर टूट पड़ा। उसी समय कर्ण भी आगया और वह भी पांडव सेना का असंख्य की संख्या में संहार करने लगा। जैसे सूर्य के निकलते ही अंधेरा मिट जाता है, वैसे ही कर्ण के सामने आते ही उसके बाणों से पांडव सेना इस संसार से मिटने लगे।

भीमसेन का पराक्रम

कर्ण के इस उत्कट आवेग को भीमसेन ने देखा और वह गर्व से झूमते हुए गदा लेकर उसके सामने आ गये। देखते ही देखते अकेले भीमसेन ने वाल्यकि, केकेय, वासल्य और संधेय इत्यादि योद्धाओं को काट डाला। उनको मार कर भीमसेन दुर्योधन की शक्ति-सेना में घुस गये। वहाँ उन्होंने पलभर में ही अनेक हाथियों को मार गिराया। कितने ही हाथी सैनिक और रथ सदा के लिए युद्धभूमि में खेत रहे। उनकी कटी हुई लाशों से युद्धभूमि भर गई। कौरव सेना का तेज हलका पड़ गया। दुर्योधन पागल हो गये। इससे भीमसेन को अच्छा अवसर हाथ लगा। वह मस्त होकर कौरव सेना को मारने लगे।

इधर कर्ण ने अब तक पांडव सेना को और संसप्तकों ने अर्जुन को घेर रखा था। कर्ण के जोर से पांडव सैनिक बहुत व्याकुल हो रहे थे। धृष्टद्युम्न और पांचाली सेना की बड़ी दुर्गति हो रही थी। इसको देख कर अर्जुन न श्रीकृष्ण से कहा—महाराज, अब संसप्तक तो भाग रहे हैं। उनके पीछे पड़ना उचित नहीं। उधर देखिये कर्ण की मार से हमारे सैनिक आकुल हो रहे हैं। इसलिए आप मेरे रथ को कर्ण के सामने ले चलिये। संसप्तकों को छोड़ कर अब मैं उसी से युद्ध करना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण जी हँसकर रथ कर्ण की तरफ बढ़ा दिया। रथ का बढ़ना था कि संसप्तकों ने अर्जुन को फिर घेर लिया। अर्जुन बाण बरसाने लगे। बहुत देर तक युद्ध हुआ। सहस्रों सैनिकों को कटा कर संसप्तक फिर भाग खड़े हुए।

अर्जुन पर युधिष्ठिर का प्रकोप

संशप्तकों को भगा कर अर्जुन का दिल घबरा गया। उन्होंने श्रीकृष्ण जी से कहा, " जनार्दन ! मुझे न जाने क्यों युद्धिष्ठर को देखने की

इच्छा उत्पन्न हो रही है। आप मेरा रथ उधर ही ले चलिये। श्री कृष्ण ने कहा, "सामने शत्रु ललकार रहे हैं, उधर रथ कैसे बढ़ाऊँ'। यह देख कर अर्जुन ने गांडीव उठा कर कौरवों का नाश करना शुरू कर दिया। मार्ग अवरोध स्वरूप जितने भी शूर वीर थे अर्जुन ने सब को मार गिराया। कृष्ण जी ने रथ को कुछ ही आगे बढ़ाया था कि अश्वत्थामा सामने आ गया। उसके साथ बाणों के भरे हुए ऐसे आठ-आठ छकड़े थे जिन्हें आठ आठ बैल खींच रहे थे अश्वत्थामा ने आते ही अर्जुन पर बाणों की वर्षा शुरू कर दी। अर्जुन उन के बाणों को काटने लगे। दो घड़ी तक खूब बाण चले। अश्वत्थामा के बाण चुक गये। अर्जुन ने उस के रथ इत्यादि को काट दिया जिस से निरस्त्र हो कर अश्वत्थामा वापिस लौट गया।

अब अर्जुन अपनी सेना की तरफ चले। रास्ते में कर्ण के साथ युद्ध करते भीमसेन से भेंट हुई। युधिष्ठिर को वहाँ न पाकर उन्होंने भीमसेन से पूछा कि युधिष्ठिर कहां हैं? भीम ने उत्तर दिया कि वह कर्ण से घायल हो कर डेरे की तरफ गये हैं।

श्री कृष्ण जी जलदी से रथ डेरे की तरफ बढ़ा ले गये। डेरे पर पहुँच कर दोनों रथ से उतर पड़े। अन्दर जा कर अर्जुन ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और देखा कि युधिष्ठर अच्छी हालत में हैं फिर भा अर्जुन को सन्देह हुआ। और। कृष्ण और अर्जुन को एक साथ वापिस आ गया देख कर युधिष्ठिर यह समझे कि यह कर्ण को मार कर आ रहे हैं, सो वह खुश होकर बोले—अर्जुन! क्या आप दोनों कर्ण को मार कर आ रहे हैं। आप दोनों के शरीर पर खून के छींटे तो बहुत पड़े हैं, परन्तु कोई चोट दिखाई नहीं देती। क्या बिना उसकी चोट खाये ही आपने उसको मार डाला। चलो, बड़ा अच्छा हुआ। वही तो दुर्योधन को पागल बनाता था। हमारे मार्ग का वही तो काँटा था। उसकी दूषित नीति से ही दुर्योधन

हमारे विरुद्ध हुआ। अरे भाई ! आज उसने युद्ध में मुझे बहुत मारा। कहाँ तो उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक अर्जुन को न मार लूंगा, हस्तिनापुर न लौटूंगा और कहाँ आज वह स्वयं ही मारा गया।"

अर्जुन ने उत्तर दिया महाराज ! आप जानते हैं कि मैं संसप्तकों के साथ युद्ध कर रहा था। अभी वह युद्ध समाप्त भी न हुआ था कि अश्वथामा मुझ से उलझ पड़ा। परन्तु श्रीकृष्ण के सहयोग तथा आपके आशीर्वाद से उसे अपनी सेना समेत पीछे हटना पड़ा। तब मैं अपने सैनिकों सहित दूसरे कौरवों पर आक्रमण करने चला। इतने में आपको वहाँ न पाकर भीम से आपके बारे में पूछा। उन्होंने कहा कि आप सूतपुत्र के हाथों घायल होकर डेरे की तरफ चले गये हैं सो मैं आपको देखने चला आया हूँ। मुझे खेद है कि मैं कर्ण को अभी तक नहीं मार सका हूँ। परन्तु आपके आशीर्वाद से मैं शीघ्र ही उसे यमलोक पहुँचा दूँगा।

अर्जुन के मुख से जब युधिष्ठिर ने यह सुना कि कर्ण जीवित है तो उनके दुःख का पारावार न रहा ! उन्होंने अर्जुन को सम्बोधित करके कहा,—"धिक्कार तुझ पर अर्जुन ! तुम आज से स्वयं को वीर कहना छोड़ दो। भूल गये अपनी वह प्रतिज्ञा जब तुमने कहा था कि तुम अकेले ही कर्ण को समाप्त करोगे। आज तुम्हारे साथ भीम जैसे योद्धा और पांचाली जैसी सेना है, तब भी तुम कुछ नहीं कर सके हो। मुझे तो आश्चर्य है तुम्हारे इस गाण्डीव पर कि यह महाप्रलयंकारी अस्त्र आज कैसे एक लकड़ी का टुकड़ा बन कर रह गया है। मेरा कहा मानो तो इस लकड़ी को पृथ्वी पर फेंको और वीरता का यह बाना भी उतार दो।"

युधिष्ठिर के इतने कठोर वचन सुनकर अर्जुन के भी क्रोध की सीमा न रही ! कोई उनके गांडीव को लकड़ी का टुकड़ा मात्र बताये, यह उन्हें भी स्वीकार न था। चाहे कहने वाला उनका भाई ही क्यों न हो। सो उन्होंने

तत्काल म्यान से तलवार निकाल ली और हवा में उठाकर युधिष्ठिर की तरफ बढ़े। परन्तु उनके मध्य में श्रीकृष्ण आगये। उन्होंने कहा "अर्जुन! यह तुम क्या पागलपन करते हो?"

अर्जुन ने कहा! "भाई ने मेरे गांडीव का अपमान किया है। मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि जो मेरे गांडीव का अपमान करेगा, वह इस संसार में जीवित नहीं बचेगा। मैं उसे अवश्य मारूँगा।"

श्रीकृष्ण बोले-"अरे मूर्ख! तलवार को म्यान में डाल। अपने से बड़े का अपमान करने से ही उसको मार देना होता है। तुम बुद्धिमान् हो। बुद्धि से काम लो! अपने से बड़े भाई को मारने जा रहे हैं। इसमें कौन सी धर्म की बात है। युधिष्ठिर ने जो कुछ तुमसे कहा है उनका तात्पर्य तो यह था कि तुम आवेश में आकर शीघ्रता से कर्ण को मार दो, न कि यह कि तुम तलवार लेकर उन्हीं पर चढ़ जाओ।"

श्रीकृष्ण के यह वचन सुनकर अर्जुन ने तलवार को तो म्यान में डाल लिया किन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह युष्ठिठर को अपशब्द कहने लगे। बोले-हे धर्मराज! यदि यही बात भीम ने मुझ से कही होती तो कुछ अर्थ भी होते! तुम्हारे जैसे जुआरी के मुख पर यह बात नहीं सुहाती। स्वयं तो युद्धभूमि से कायरों की भाँति भाग आये और यहाँ अपने से छोटे से कह रहे हैं कि तुमने शत्रु को क्यों नहीं मारा। वाह! कितनी सुन्दर बात है। हमने आपकी हठ के कारण से अपने समस्त सुखों को छोड़ कर वनों का रास्ता लिया और अब आप हमें ही धिक्कार सुनाते हैं।"

अर्जुन के इन कटु वचनों से युधिष्ठिर पर भी बहुत भयंकर प्रतिक्रिया हुई। वह बोले-"हे अर्जुन! तुम ठीक ही कहते हो! सभी दुःखों का मूल कारण मैं ही हूँ। मेरे ही कारए से आप सबको इतना कष्ट उठाना पड़ा

है। मूर्ख भी मैं ही हूँ और जुआरी भी ! मैं आप से यह नहीं कहूँगा कि मुझे क्षमा कर दो ! तुम मुझे दंड दो ! जब मैं ही नहीं रहूँगा तो तुम्हारे दुःख भी समाप्त हो जायेंगे। तुम अपनी तलवार म्यान से निकालो और मुझे मार दो ! मैं समाप्त हो जाऊँगा तो सारा झगड़ा ही मिट जायेगा।" यह कह कर युधिष्ठिर ने अपना सर अर्जुन के आगे झुका दिया।

अब अर्जुन का मन परिवर्तन हो गया। भाई को अपने सामने झुका देख कर उनका आवेश शांत हुआ किन्तु मन में जब इस बात से उद्वेलन हुआ कि उसने बड़े भाई को बहुत अपशब्द कहे हैं तो लाज और पश्चात्ताप से उसने तलवार निकाली और चाहा कि स्वयं का सर काट दे। किन्तु श्रीकृष्ण ने आगे बढ़ कर उसका हाथ रोक लिया और "कहा, अर्जुन यह क्या करता है ?"

अर्जुन ने कहा—पिता के समान जो मुझे पूज्य हैं, आज मैंने उनका अपमान किया है, इसलिए स्वयं का नाश करूँगा !

श्रीकृष्ण ने कहा—"अरे मूर्ख ! बड़ों के सामने अपनी बड़ाई करना ही स्वयं का नाश करना है। और तुमने युधिष्ठिर के सामने अपनी खूब बढ़ाई की है। इसलिए इन से क्षमा माँग।"

अर्जुन युधिष्ठिर के पैरों पर गिर गये और कहने लगे—हे भ्राता ! मुझ अपराधी को आप क्षमा कर दीजिये न ! मैं तो आपको बहुत कष्ट पहुँचाया है।

तब तक युधिष्ठिर भी शांत हो गये थे। इन्होंने अर्जुन को ऊपर उठाया और उसे गले से लगा कर रोने लगे। श्रीकृष्ण की भी आँखों से अश्रुओं की धारा बह चली।

अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ताकि

युद्धभूमि में शीघ्र ही कर्ण को जमीन पर सुला दूँ और आपकी इच्छा को पूर्ण कर पाऊँ।

युधिष्ठिर ने उसे आशीर्वाद दिया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण डेरे से निकल कर फिर युद्धभूमि की ओर चल पड़े।

दुशासन की मृत्यु

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! इधर अब तक महा बली भीमसेन कौरवों से अकेले ही युद्ध कर रहे थे। संग्राम भूमि में उस समय अर्जुन और युधिष्ठिर भी उपस्थित न थे। इसलिये कर्ण पांडव सेना को बुरी तरह मार रहा था। महावीर अर्जुन की अनुपस्थिति से पांडव सेना लड़ते-लड़ते थक गई थी। भीम अकेला क्या कर सकता था। परन्तु फिर भी वह बड़ी वीरता से कौरवों का सामना कर रहा था। सब कौरव भीम को मारने पर तुले हुए थे। पड़ाव से चल कर अर्जुन रणभूमि में तो पहुँच चुके थे, परन्तु अभी भीम से बहुत दूर थे। और फिर कर्ण ने उन्हें रास्ते में ही घेर लिया था। वह कर्ण और संसप्तकों को मारने लगे। इस तरह से युद्ध दो भागों में बंट गया। किन्तु भीम को इसकी खबर नहीं थी। वह तो बड़े उत्तरदायित्व से अर्जुन की अनुपस्थिति को महसूस करते हुए बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने कौरव सेना को खूब छका दिया। उस समय दुर्योधन के सब भाई मिलकर अर्जुन पर बाण चला रहे थे। परन्तु भीम दुर्योधन के हाथियों की सेना को मार-मार कर पछाड़ रहे थे। उसी समय भीम के वेग को रोकने के लिए दुःशासन सामने आगया। सामना होते ही दुःशासन ने पलभर में भीम के धनुष को काट कर ६० बाण मार कर उसके शरीर को छेद डाला। इससे आवेश में आकर भीम ने अपनी एक अमोघ शक्ति को दुःशासन पर फेंका। परन्तु दुःशासन ने उसे रास्ते में ही काट दिया।

दुःशासन की इस सतर्कता पर कौरव सेना वाह वाह करने लगी। दुःशासन की इस प्रशंसा को सुनकर महाबली भीम जल उठे। उन्होंने कहा—दुःशासन सावधान! मैं तेरे बाणों को सह चुका, अब तुम मेरी गदा के आक्रमण को रोको। मैं अपनी गदा के एक ही वार से द्रौपदी के समस्त अपमान का बदला तुम से चुका लूंगा।" भीम की इस कड़वी बात को सुन कर दुःशासन के क्रोध की भी सीमा न रही। उसने भी भीम पर अपनी शक्ति चलाई। किन्तु भीम ने उसे रास्ते में ही काट दिया। शक्ति के कट जाने पर दुःशासन अभी संभल कर दूसरा वार करने भी न पाया था कि भीम ने अपनी गदा के भयानक वार से उसे रथहीन कर दिया। रथ के टूट जाने पर भीम ने गदा का दूसरा वार किया जिससे दुःशासन मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। उसके शरीर से खून बहने लगा और वह पीड़ा से कराहने लगा। दुःशासन को कराहते देखकर पांडवों और पांचाल सेना को परम प्रसन्नता हुई। वह अपने-अपने बाजों को बजाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। भीम के गर्जन की कोई सीमा न थी। वह गरज कर रथ से कूदे और दुःशासन की छाती पर बैठकर उसे मारने लगे। दुःशासन बेसुध हो गया। परन्तु जब उसे तनिक होश आया तो भीमसेन ? उससे कहा—"बोल रे दुष्ट! तूने किन हाथों से द्रौपदी के बाल और उसका चीर खींचा था। और फिर क्रोध में भीम ने उसका दायाँ हाथ उखाड़ लिया। इसी हाथ से दुःशासन ने द्रौपदी का चीर खींचा था। फिर भीम ने तलवार की नोक उसके गले में घुसेड़ कर उसे छात तक चीर दिया। उसकी छाती से खून का फव्वारा छूटने लगा! भीम ने उस खून को अंजलि में भर कर मुँह से लगाया और कहा—"जूए के जो लोग हमें गऊ हैं, बैल हैं, कह कर नचाते थे, आज मैं उन्हें गऊ हैं, बैल हैं, कह कर नचाता हूँ। भीमसेन के हृदय की इस कठोरता को देखकर कौरवों का दिल दहल गया और वह आतंकित होकर वहाँ से भाग खड़े हुए।

वृषसेन का मारा जाना

दुःशासन जैसे वीर भाई की इस अधोगति पर दुर्योधन छाती पीट कर रोने लगा। वह रोता हुआ कर्ण के पास आया। कर्ण ने जब दुर्योधन से इस दुःखान्त घटना का जिक्र सुना तो वह भी क्रोध में भर उठा। उसने अर्जुन को छोड़ दिया और प्रतिशोध की भवना में डूबा हुआ भीम की ओर बढ़ चला। भीम रथ पर चढ़कर अर्जुन की तरफ जा रहे थे। कर्ण ने उन पर अनायास ही बाण-वर्षा आरम्भ करदी। भीम भी स्थिति को समझ कर कर्ण को प्रत्याक्रमण में बाण मारने लगे। पल भर में ही दोनों के शरीरों से खून की अविरल धारा बह चली। तभी कर्ण का पुत्र वृषसेन भी पिता की सहायता के लिए आगे बढ़ आया। परन्तु उसे अर्जुन ने रोक लिया। वृषसेन और अर्जुन में घोर युद्ध होने लगा। वृषसेन बहुत वीर था। अर्जुन का उसके साथ युद्ध देखकर सब लोग वाह वाह करने लगे। जो जो अस्त्र अर्जुन चलाते थे वृषसेन उन्हें काट देते थे। तब अर्जुन कहीं वृषसेन को मार न देवें, इस विचार से कर्ण भी भीम से लड़ना छोड़ अर्जुन से युद्ध करने लगा। अब पिता और पुत्र मिल कर अर्जुन पर शस्त्र चलाने लगे। भीमसेन भी ऐसे समय में पीछे हटने वाले न थे! वह जाकर अर्जुन से मिल गये और दोनों पक्षों में घमासान युद्ध होने लगा।

महाबली भीम के साथ मिल जाने से अर्जुन का साहस दुगुना हो गया। वह कर्ण पर अविराम बाणवर्षा करने लगे। किन्तु कर्ण भी कम नहीं था। वह भी अपने धनुष से एक साथ इतने इतने तीर बरसाते कि पांडव सेना के पल भर में ही कितने सैनिक गिर जाते, इसका किसी को पता नहीं चलता। अर्जुन के बाण असंख्य संख्या में कौरव दल का नाश करने लगे और कर्ण के बाण पांडव सैना का। दोनों ओर हा हा कार मच गया।

इस घोर युद्ध से आकाशमंडल गूँज उठा। घायल हाथियों की चिंघाड़ और रथों की गड़गड़ाहट से कान फटने लगे। सैनिक लोग अपना और पराया भूल गये। माता वसुन्धरा की छाती खून से लथ-पथ हो गई। पृथिवी रुंड-मुण्डों से भर गई।

इस भयंकर युद्ध को देखकर आचार्य द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बहुत क्लेश हुआ। वह दुर्योधन के पास जाकर बोले—भाई अब युद्ध करना बन्द करो। राज्य के लिए देश के वीरों का नाश मत करवाओ। परन्तु महाहठी दुर्योधन ने अश्वत्थामा के इन वचनों पर ध्यान नहीं दिया। उसने आवेश में आकर युद्ध की गति बढ़ा देने का आदेश दे दिया।

विवश अश्वत्थामा भी लौट कर युद्ध करने लगे। तब वृषसेन को मारना ही ठीक समझ कर अर्जुन ने उसके धनुष को काट दिया और एक बाण निकाल कर अर्जुन ने कर्ण से कहा,—ऐ कर्ण! तुम लोगों ने मेरे पीछे धोखे से अभिमन्यु को मारा था परन्तु मैं तुम्हारे सामने ही वृषसेन को मारता हूँ।

यह कह कर अर्जुन ने बाण चलाकर वृषसेन का सिर काट दिया। कर्ण हाय हाय करने लगा। कौरवों का साहस टूट गया। वृषसेन के मारे जाने पर कर्ण के क्रोध की सीमा न रही। वह भीषण रूप से संग्राम करने लगा। कौरव सेना ने भी अब प्राणों की बाजी लगा दी। दोनों ओर से भयंकर हिंसता का प्रदर्शन होने लगा। वीरों के फेंके गये बाणों से आकाशमण्डल ढक गया। अर्जुन ने अपने तरकश से एक भयानक बाण निकाला और कर्ण पर छोड़ा। उस एक बाण में से कई बाण निकले और कर्ण का समस्त शरीर छिप गया। इस पर कर्ण ने आवेश में आकर अपने तरकश से सर्प-मुख बाण निकाला। यह बाण उसने बहुत दिनों से अर्जुन को मारने के लिए रखा हुआ था। बाण में तक्षक नाग का पुत्र अश्वसेन घुसा हुआ था जो अर्जुन का परम शत्रु था। जब खांडव बन जल रहा था। तब अश्वसेन

की माता अपने पुत्र को बचाने के लिए उसे मुँह में लेकर आकाश में उड़ गई थी। अर्जुन ने तब बाण चलाकर उसकी माता को तो मार दिया था किन्तु अश्वसेन बचकर निकल भागा था। तभी से वह अर्जुन से प्रतिशोध लेना चाहता था।-आज समय पाकर वह कर्ण के बाण में घुस गया था। कर्ण ने उसी बाण को अर्जुन पर चलाया। अन्तर्यामी श्री कृष्ण उस बाण के जोर को समझ गये। उन्हों ने तत्काल रथ के घोड़ों को दबा दिया। घोड़े घुटनों के बल बैठ गए। जहाँ अर्जुन का सर था वहाँ उसका मुकुट आगया। शल्य ने तब वहीं से कहा--"कर्ण निशाना चूक गया। बाण फिर से चलाओ। महावीर अर्जुन का मारना सरल कार्य नहीं है।" कर्ण ने कहा--चलाए हुये बाणों को कर्ण फिर प्रयोग में नहीं लाता।

कर्ण का बाण अर्जुन के मुकुट को काटकर पृथ्वी में धँस गया था। यदि यह बाण निशाने पर जा लगता तो अर्जुन के सर को काट देता। परन्तु ऐसा न हो सका। तब अपने प्रतिशोध को पूर्ण न हुआ देखकर अश्वसेन ने कर्ण से आकर कहा--आपका निशाना चूक गया। आप मुझे फिर से बाण के साथ चलाइये। कर्ण ने कहा, "मैं किसी की सहायता नहीं लेना चाहता।" तब विवश होकर अश्वसेन स्वयं अर्जुन पर झपटा। परन्तु अर्जुन ने दो बाण चला कर उस के तीन टुकड़े कर दिए।

कर्ण की मृत्यु

सूत जी कहते हैं--हे राजन्! अश्वसेन को मारने के पश्चात् अर्जुन कर्ण पर बाण वर्षा करने लगे। उत्तर में कर्ण ने भी बाणों की झड़ी लगा दी। तब अर्जुन ने बहुत तीव्रता से एक ऐसा बाण मारा कि वह बाण कर्ण के कवच को चीर कर पृथ्वी में धँस गया। कर्ण के शरीर से रक्त बहने लगा। इससे क्रुद्ध हो कर कर्ण ने बारह बाणों से कृष्ण को और ९९ बाणों से अर्जुन को छेद डाला। श्रीकृष्ण के चोट लगने से विषधर सर्प की तरह

फुंकार कर अर्जुन ने अनेक बाण बरसाकर कर्ण को ऐसा घायल किया कि कर्ण पल भर को विचलित हो उठा। कर्ण का सर्व प्रथम मुकुट कट कर पृथ्वी पर गिरा। फिर अर्जुन ने उस के कुंडलों को काटा। कवच और कुंडलों के कटजाने से कर्ण परम क्रुद्ध हुए और उन्होंने अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगा दी। किन्तु अर्जुन ने उनके द्वारा छोड़े गये प्रत्येक बाण को रास्ते में ही काट कर फेंक दिया। फिर अर्जुन ने एक साथ कई बाण चला कर कर्ण पर इतना भयंकर आक्रमण किया कि कर्ण मूर्छित होकर रथ में गिर पड़ा। कर्ण को गिरा हुआ देख कर अर्जुन ने बाण चलाना उचित नहीं समझा सो वह दूसरी ओर घूम कर सैनिकों का वध करने लगा। तब उसकी इस धर्मपरायणता को देख कर श्री कृष्ण ने अर्जुन से झुंझला कर कहा--अर्जुन यह क्या कर रहा है? सूतपुत्र को मारने का यही समय उत्तम है। किन्तु तब तक कर्ण की मूर्छा दूर होगई और वह उठकर अचानक क्रोध से अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। वह जैसे अर्जुन को मारने पर ही तुल गया था। उसने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। किन्तु गांडीवधारी ने उस अस्त्र को भी काटदिया और उस का वह बाण भी व्यर्थ चला गया।

इसी समय पृथ्वी के कोमल भाग पर कर्ण के रथ के आजाने के कारण से कर्ण का पहिया जमीन में धंस गया। कुछ देर तो कर्ण बाण चलाता रहा। उसने अपने बाणों की तीव्र वर्षा से अर्जुन के धनुष की डोरी काट दी। अर्जुन ने दूसरी डोरी चढ़ाई तो उसने फिर काट दी। इस प्रकार उस ने अर्जुन के धनुष की ग्यारह बार डोरियाँ काटीं और अर्जुन ने ग्यारह ही बार पल भर में डोरियाँ चढ़ा लीं। कर्ण वास्तव में अपने रथ का पहिया निकालने के लिए समय चाहता था। परन्तु जब उसे इस प्रकार समय नहीं मिला तो वह यह सोच कर कि अर्जुन निरास्त्र पर बाण नहीं चलायेगा, रथ से नीचे उतरा और पहिया निकालने लगा। परन्तु अर्जुन रुका नहीं इस पर कर्ण ने ऊँची आवाज से कहा--अर्जुन! निरस्त्र पर बाण चलाना

कहाँ का धर्म है? मुझे रथ का पहिया निकाल लेने दो तब मैं तुम से युद्ध करूँगा। तुम वीर हो तुम्हें यह अधर्म शोभा नहीं देता।

उसकी बात सुन कर अर्जुन के हाथ सचमुच रुक गये। परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा, ऐ कर्ण! तू अब धर्म का उपदेश करता है। जब भीमसेन को जहर मिले हुए लड्डू खिलाये थे, जब लाक्षागृह में सोये हुए पांडवों को जला दिया था, जब भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी खिंचवाई थी और जब अकेले अभिमन्यु को छः छः महारथियों ने अन्याय से मारा था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? आज अपने पर विपत्ति आई तो धर्म-धर्म पुकार रहे हो। अर्जुन! तुम रुको नहीं। चलाओ बाण।"

वास्तव में कर्ण को एक ब्राह्मण का शाप था कि जब युद्ध कर रहा होगा तब उसके रथ के पहिये को पृथ्वी पकड़ लेगी और अनेक प्रयत्न करने पर नहीं छोड़ेगी यही कारण था कि पहिया पृथ्वी से नहीं निकला। तब कर्ण ने पृथ्वी पर खड़े-खड़े भार्गव अस्त्र चलाना चाहा परन्तु परशुराम के शाप से भार्गव अस्त्र के चलाने का ढंग भूल गया। बाल अवस्था में कर्ण परशुराम से विद्या सीखने गया था। तब उसने अपने आपको ब्राह्मण बतलाया था। विद्या पढ़ लेने पर एक दिन परशुराम जी कर्ण की जंघा पर सर रख कर सो रहे थे। उसी समय एक बड़े कीड़े ने कर्ण की जंघा पर काट खाया। उसको पीड़ा तो बहुत हुई, परन्तु इस डर से कि गुरु जी जाग पड़ेंगे, उसने टाँग न हिलाई। घाव से गर्म-गर्म खून बहकर जब परशुराम जी के सर में लगा तो उनकी नींद खुल गई। उठकर उन्होंने देखा कि कर्ण की जंघा पर घाव हो गया है। कारण पूछने पर कर्ण ने सब हाल बता दिया। परशुराम जी ने कहा—"हे कर्ण! सच कह कि तू किस जाति का है? ब्राह्मण में इतना साहस कहाँ? झूठ बोलेगा तो भस्म कर दूँगा।" विवश होकर कर्ण ने अपना ठीक ठीक परिचय दे दिया। परशुराम जी ने कहा—"जिसके लिए तूने झूठ बोला, उससे युद्ध होने पर तुझे मंत्र भूल जायेगा!"

यही कारण हुआ कि कर्ण उस समय मंत्र भूल गया। उधर अर्जुन ने बाण पर ब्रह्म, वायु, इन्द्र और वज्र के मंत्र पढ़ कर कर्ण पर बाण चलाया। कर्ण समझ गया कि अब समय आगया, सो वह अपना सर ऊँचा करके खड़ा हो गया। अर्जुन के बाण ने उसका सर काट दिया।

पल भर में ही पांडव सेना में खुशी की भेरियाँ बजने लगीं और कर्ण को मृत्यु को प्राप्त होते देख कर कौरव सेना भाग खड़ी हुई।

दुर्योधन कर्ण को याद करके रोने लगा।

अर्जुन ने पड़ाव में युधिष्ठिर के पास कर्ण की मृत्यु का समाचार भेजा। राजा युधिष्ठिर ने युद्धभूमि में आकर कर्ण के मृत शरीर को देखा। कर्ण का शरीर बाणों से इतना छलनी हो गया था कि वह पहचाना नहीं जाता था। तब युधिष्ठिर ने उसके पाँवों के तलवों को देखा। उन्होंने सुना था कि कर्ण के पाँवों के तलवे माता कुन्ती के पाँवों के तलवों के समान हैं। उन्हें वह तलवे ठीक वैसे ही मिले। अब उन्हें कर्ण के मरने का विश्वास हो गया। उन्होंने प्रसन्नता से अर्जुन को गले लगा लिया।

कर्ण ने बड़ी पीड़ा से अपना शरीर त्याग किया उसके शरीर त्याग के समय तक संध्या हो गई थी। सो युद्ध बन्द कर दिया गया। पांडव सेना खुशी में अपने पड़ावों में नाचती रही और कौरव दल अपने निवास स्थान पर मातम मनाता रहा।

शल्य पर्व

कृपाचार्य का बेसुध होना

सूत जी कहते हैं—हे राजन् ! महावीर कर्ण के मारे जाने पर कौरव सेना निराश्रित हो गयी। दुर्योधन छाती पीट-पीट कर रोया। सारी संग्राम-भूमि लाशों से अटी पड़ी थी। उस दिन का युद्ध अपूर्व रूप से भयंकर था। खून की नदियाँ बह रही थीं। इस भयंकर दृश्य को देख कर कृपाचार्य का दिल दहल गया। वह सीधे दुर्योधन के पास जाकर बोले—"राजन् ! अब बहुत हो चुका। युद्ध से कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा। जब कुल में कोई पानी देने वाला तक नहीं रह जायेगा तब राज्य किस काम आयेगा। अब पांडवों के समक्ष विजय प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है। यदि तुम्हें मेरा कुछ भी सम्मान है तो मेरी बात मान लो और पांडवों से समझौता कर लो। युधिष्ठिर बड़े दयालु हैं। कृष्ण भी संधि चाहते हैं। यदि आप कहें तो मैं उनसे मिलकर सब बात ठीक करा दूँ। नहीं तो अर्जुन के बाणों की चोट खाकर मौत के घाट उतरना होगा। क्योंकि अब हमारी सेना में कोई ऐसा वीर नहीं है जो अर्जुन का सामना कर सके। महाप्रतापी भीष्म, आचार्य द्रोण और महावीर कर्ण जैसे बड़े योद्धा तो मार डाले गये, अब कौन ऐसा है जो सेनापति बनाया जाये। श्रीकृष्ण की उपस्थिति में मनुष्य की तो गिनती क्या है, देवता भी अर्जुन को नहीं हरा सकते। जब देखो, अर्जुन के डर से हमारी सेना काँप जाती है। युद्ध के समय उसके चलाये हुए बाण चारों ओर फैल कर नाश मचा देते हैं श्रीकृष्ण जी भी बहुत तीव्रता से

उसके रथ को हाँकते हैं। उसकी मार से आपके सैनिक ऐसे भाग जाते हैं जैसे सिंह के भय से मृगशावक। जिस कर्ण पर आपको इतना भरोसा था, अब तो वह भी नहीं रहा। आप सब ने जयद्रथ को बचाने की कोशिश की किन्तु वह भी न रहा। इसलिए मेरे मत से अब युद्ध को समाप्त कर देना ही उचित है। इसके अतिरिक्त महाबली भीम और वीर सात्यकि की शक्ति भी कम नहीं है। भीम निरन्तर अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा कर रहा है। यह कोई साधारण बात नहीं है। आपके सभी संबन्धी और मित्र आपका साथ छोड़ते जा रहे हैं। फिर आप क्यों अपने हठ पर अड़े हुए हैं। आप स्वयं अपनी रक्षा जब नहीं कर सकते तो क्यों अपनी सेना को व्यर्थ में मरवाते हैं। संधि करने में आपका कुछ न बिगड़ेगा। राजाओं में युद्ध होते हैं, किन्तु प्रायः बाद में संधियाँ हो ही जाया करती हैं। इसलिए आप कायर नहीं गिने जायेंगे। आप मेरी बात मानिये और पांडवों से संधि कर लीजिये।"

कहते-कहते कृपाचार्य का गला रुँध गया और वह बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर गये।

दुर्योधन का दृढ़ निश्चय

सूत जी कहते हैं--हे राजन्! महात्मा कृपाचार्य की बात दुर्योधन को न भाई। मूर्छा से जागने पर दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा--"बन्धु! आप की बात ठीक है। सच्चे मित्र के नाते आपका यही कर्तव्य था। पर आप की यह बातें मुझे इस समय अच्छी नहीं लगेंगी। यह बातें मुझे ऐसे ही अच्छी नहीं लगतीं जैसे पुराने रोगी को कोई औषधि। मैंने पांडवों को बड़ा दुःख दिया है। संधि का निवेदन करने पर भी वह मेरी बात न मानेंगे। उन्होंने युद्ध में काफी सफलता प्राप्त करली है। वह अब हम से संधि क्यों करने लगे। दूसरे मैंने सदैव पांडवों पर राज्य किया है। अब उन

से संधि का निवेदन कर के मैं छोटा बनना नहीं चाहता। संधि से अब मुझे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। अब पांडव मुझे अपना दास बनाने की चेष्टा करेंगे। दास बनने से तो अच्छा है कि मृत्यु की गोद में सो जाया जाय फिर भी लोग मेरे लिए सद्गति को प्राप्त हुए और जिनका मैं सदा आभारी रहूँगा, उन की आत्मा क्या कहेगी। यदि अब मैंने अपनी मृत्यु से डर कर सन्धि करली। सो सन्धि का तो अब विचार भी निरर्थक है। सन्धि की अपेक्षा मैं युद्ध में लड़ते-लड़ते मरजाना अधिक पसन्द करूँगा। इस लिए मैं आशा करता हूँ कि इसी कार्य में आप मेरी सहायता करेंगे।"

दुर्योधन के इन शब्दों ने कृपाचार्य पर पर्याप्त प्रभाव डाला और उन्हों ने यह भी देखा कि दूसरे वीर भी दुर्योधन के साथ लड़ते हुए मरजाना ही अधिक अच्छा समझ रहे हैं सो उन्हें चुप रहजाना पड़ा।

शल्य का सेनापति बनना

रात के समय दुर्योधन के शिविर में कौरव एकत्र हुए। कर्ण की मृत्यु पर शोक करने के उपरान्त यह चिन्ता प्रगट की गई कि अब किसको सेनापति बनाया जाये। इस पर आचार्य द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने शल्य का नाम सामने रक्खा। महाराज शल्य बहुत बहादुर थे। इसलिए सभी ने इस विचार को पसन्द किया। परन्तु स्वयं शल्य का अभी इस बात को स्वीकार करना शेष था। तब दुर्योधन ने हाथ जोड़ कर उनसे विनती की कि मामा जी अब आप ही हमारे सब कुछ हैं। इस समय हमारी नैया मँझधार में पड़ी है यदि आप नहीं बचायेंगे तो कौरव डूब जायेंगे। हमें पूरी आशा है कि आपके सेनापति बनने से हम विजय प्राप्त करेंगे। कृपा करके आप हमारे निवेदन को स्वीकार करलें।

महाराज शल्य की सेनापति बनने की इच्छा न थी। परन्तु दुर्योधन

के इस निवेदन को वह ठुकरा न सके। उन्होंने दुर्योधन को बहुत आश्वासन दिला कर सेनापति बनना स्वीकार कर लिया। तब कौरवों ने वेद-विधि से शल्य को सेनापति का तिलक लगा कर सिंहासन पर बिठाया। सैनिकों को बड़ी खुशी हुई। सबने मिल कर रात के उस प्रहर में शंख और भेरियां बजा कर अपनी प्रसन्नता को प्रगट किया।

कौरव सेना की व्याकुलता

सूत जी बोले—हे राजन्! प्रातः होते ही शल्य के सेनापति में कौरव सेना युद्धभूमि में आ खड़ी हुई। शल्य के निदेशानुसार कौरवों ने सम्पूर्ण सेना को व्यूहबद्ध किया और पांडवों पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनायें परस्पर उलझ गईं। फिर तो रथी रथी से, पैदल पैदल से और दूसरे सैनिक अपने अपने जोड़ों से युद्ध करने लगे। बहुत घमसान युद्ध हुआ। पल भर ही पृथ्वी मृत शरीरों से अट गई अस्त्रों शस्त्रों की भयंकर गति के आगे कोई ठहर नहीं पा रहा था और दोनों ओर के सैनिक कट कट कर गिरे जा रहे थे। लाशें एक दूसरे के ऊपर गिर रही थीं और लड़ने वाले प्रत्येक सैनिक के शरीर से खून रिसने लगा था।

तभी महाबली भीम अपनी गदा सहित युद्ध भूमि में आगये और उन्होंने विद्युत-गति से ऐसे ऐसे प्रहार किये कि पलभर में ही कौरव सेना के पाँव उखड़ने लगे। उनके सामने जो भी आया, बस दोहरा होकर जमीन पर आ रहा। कौरव सैना ने उखड़ते उखड़ते भी कुछ सामना किया पर जब भीम अविराम बिजली की तरह अपनी गदा चलाये ही गया तो उनके लिए टिकना कठिन हो गया और वह भाग खड़े हुए।

शल्य की वीरता

कौरव सेना को इस प्रकार भागते देखकर वीर शल्य ने बहुत जोर से गर्जन किया और पांडव सेना पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। शल्य की इस भयंकर मार से पांडव सैनिक कुछ ही समय में त्राहि त्राहि करने लगे। अब अपनी सेना को इस प्रकार चीखते देख कर युधिष्ठिर घबरा गये। परन्तु उस समय और कुछ नहीं किया जा सकता था। सो वह स्वयं ही ललकार कर शल्य के सामने आकर युद्ध करने लगे। परन्तु शल्य उस समय वेग में थे। युधिष्ठिर को सामने पाकर शल्य ने बाणों की गति और भी तीव्र कर दी और कुछ ही देर में युधिष्ठिर शल्य के बाणों से छलनी होगये।

युधिष्ठिर को इस प्रकार शल्य के हाथों घायल होते देख कर भीमसेन नकुल और सहदेव सहित आगे बढ़ आये और उन्होंने शल्य को घेर कर उसपर आक्रमण कर दिया। तीन योद्धाओं का शल्य आखिर कब तक मुकाबिला करते? सो उन की गति क्षीण होने लगी। किंतु उसी समय कृत वर्मा, कृपाचार्य, शकुनी, अश्वत्थामा और अलूप ने तीनों पांडवों को घेर लिया और तीव्र तीव्र बाण बरसाने लगे। सब से पहले कृतवर्मा ने भयंकर आक्रमण करके भीम के रथ के घोड़ों को मार डाला। घोड़ों के मारे जाने पर भीम गदा हाथ में लेकर रथसे कूद पड़ा। और उसकी गदा के एक ही वार से कृतवर्मा के रथ के घोड़े भी मृत्यु को प्राप्त होगये। इससे यह हुआ कि कृतवर्मा भी रथहीन होकर अपनी गदा सहित जमीन पर उतर आया और भीम से भिड़ गया। दोनों गदा युद्ध करने लगे। उधर शल्य फिर वेग में आगये और पांडवों की सेना तथा सैनिक इत्यादि पर भयंकर रूप से बाण बरसाने लगे। शल्य के इस तीव्र आक्रमण को सहन करने की ताब किसी में भी न थी सो कुछ हीदेर में पांडव सेना में कोहराम मच गया। उधर इस तरह की हालत

देख कर भीम ने कृतवर्मा को कुछ देर के लिये छोड़ा और स्वयं फिर शल्य के मुकाबिले में चला गया। शल्य ने दस बाण मार कर भीम का कवच काट डाला। भीम ने गदा के एक ही प्रहार से शल्य के रथ को चूर चूर कर दिया। घोड़े मार दिये और सारथि की इह लीला समाप्त कर दी। इस से शल्य रथहीन होकर पीछे हट गये।

शल्य और भीमसेन में गदा-युद्ध

सूतजी कहते हैं--हे राजन्! कुछ ही देर में देखा गया कि शल्य महाराज के हाथ में गदा थी और वह महाबली भीम से उलझे हुए थे। दोनों ही गदा-युद्ध में पारंगत थे। इसलिए देर तक दोनों युद्ध करते रहे। कोई किसी को नहीं मार पाया। तब दोनों ने एक साथ गदा चलाई, जिस से एक दूसरे के प्रहार से दोनों मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब दोनों गिर गये तो कृपाचार्य आकर शल्य को तो अपने रथ में डाल कर शिविर की ओर लेगये किन्तु भीम वहीं पड़े रहे। कुछ समय पश्चात जब भीम की चेतना लौटी तो वह शल्य, शल्य, कह कर उसे युद्ध के लिए बुलाने लगे।

भीम की इस पुकार पर भी जब कोई नहीं आया तो उसने 'कायर शल्य कहाँ गया' इस तरह कह कर पुकारा। अब जो अपने सेनापति के लिए कौरवों ने 'कायर' जैसा शब्द सुना तो उनके क्रोध और आवेश की कोई सीमा न रही। दुर्योधन ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। उधर से पांड़वों की सेनाभी आगे बढ़ी। दुर्योधन ने इतने तीव्र बाण चलाये कि पांडव सेना हताहत होने लगी। कैकेय घायल होगये। इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनी ने मिल कर युधिष्ठर पर आक्रमण कर दिया युधिष्ठर भी उनका वीरता पूर्वक सामना करने लगे। उस समय दोनों सेनाओं की ओर से बाणों की इतना विकट वर्षा हो रही थी कि सूर्य का प्रकाश तक आकाश से नीचे आना बंद

होगया सैनिकों के कराहने और चीखने तथा नारों से आसमान गूँज उठा दोनों दिशाओं के सैनिक भयंकर युद्ध कौशल दिखला रहे थे ।

तब तक शल्य चेतना में आये और एक नये रथ में बैठ कर वह फिर रणभूमि में आगयें । वह युधिष्ठिर के सामने आये और उन्होंने कई बाण मार कर युधिष्ठिर को घायल कर दिय । उत्तर में युधिष्ठिर ने चौदह बाण मार कर शल्य को घायल कर दिया । क्रोधित होकर शल्य ने अनेक बाण मार कर युधिष्ठिर को बाणों से ढक दिया । परन्तु युधिष्ठिर ने अपनी शक्ति चला कर सब बाणों को काट दिया । शल्य ने क्रोधित होकर विद्यु त गति से बाण चलाये, तब सभी बस सिर्फ यही देख पाये कि पाँडव नेना नष्ट हुई जा रही है । उस समय का शल्य का वेग दर्शनीय था । पल पल में वह असंख्य बाण चलाते और पांडवों के असंख्य सैनिक धराशायी हो जाते ।

शीघ्र ही पांडव सेना की व्याकुलता बढ़ने लगी और शल्य की तीव्रता अपनी सीमा को पहुँचने लगी । युधिष्ठिर ने बहुत पराक्रम दिखाया कि शल्य उनके बस में आजायें किन्तु शल्य बाणकला में अत्यन्त धुरन्धर थे सो वह विद्यु त वेग से बाण चला चला कर पांडव सेना का नाश करते रहे ।

तभी उधर अर्जुन आ निकले । वह संशप्तकों को मात देकर आ रहे थे । उनको देखते ही युधिष्ठिर में जैसे नई जान आगई । वह दुगुने साहस से लड़ने लगे । उन्होने अपनी प्रत्यंचा पर शिवरिपुर बाण चढ़ा कर शल्य पर छोड़ा । वह वार बहुत सफल रहा । उस एक हो बांण से शल्य के रथ का सारथि और घोड़े दोनों धराशायी हो गये । रथहीन होकर शल्य ने तलवार निकाल ली और बड़ी निपुणता से युद्ध करने लगे ।

शल्य की मृत्यू

तब तक शल्य के लिए दूसरा रथ आगया और वह उस पर सवार हो कर युद्ध करने लगे। रथ के आने से शल्य नये उत्साह से पांडवों से लड़ने लगे। तलवार को उन्होंने म्यान में रखी और धनुष उठा कर फिर से पांडवों पर छागये। भीम और उसकी सेना युधिष्ठि की सहायता को आगे बढ़ी तो उसे कृपाचार्य ने रोक लिया। भीम और उसकी सेना को विवश होकर वहीं युद्ध करना पड़ा। युधिष्ठिर अकेले ही रहे। शल्य ने युधिष्ठिर को रथहीन कर दिया। अपने सारथि और रथ के इस तरह छूट जाने पर युधिष्ठिर अत्यन्त क्रोधित हुए। परन्तु उन्होंने जो वार किया शल्य ने उसे बड़ी निपुणता से काट दिया। उस समय के युद्धने अत्यंत भयंकर रूप ग्रहण कर लिया। धरती लाशों और टूटे हुए रथों से भर गई। शोणित की जैसे नदी बहने लगी। कृपाचार्य से लड़ते-लड़ते भीमने जब यह देखा कि शल्य युधिष्ठिर पर विजित हुआ जा रहा है तो उसने वहीं से ऐसे बाण चलाये कि शल्य का कवच टूट गया। शल्य ने भी भीम पर बाण बरसाए। बस इतने से समय में युधिष्ठिर फिर से संयत होगये और उन्होंने अपने धनुष से अनेक बाड़ छोढ़ कर शल्य को ढक दिया। स्वयं को इस तरह बंधते देख कर शल्य ने उन्नीस बांण चला कर युधिष्ठिर के धनुष की डोरी काट दी और उन्हें घायल कर दिया। युधिष्ठिर के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने तब क्रोध में आकर अपनी शक्ति छोड़ी। विद्युत की भांति शक्ति शल्य की छाती में जाकर लगी और शल्य भूमि पर गिर गये। युधिष्ठिर की वह शक्ति शल्य की छाती को फोड़ कर निकल गई थी। जिससे पृथ्वी पर गिरते ही शल्य ने प्राण त्याग दिए।

कौरवों की सेना में हा हा कार मच गया, वह रणभूमि छोड़-छोड़ कर भागने लगे। किन्तु शल्य की जो निजी सात सौ सनिकों की सेना

थी उसे शल्य के इस प्रकार से मरने पर अत्यन्त क्रोध आया और वह पांडवों की सेना से जूझ गये। पांडवों की सेना उस समय शल्य के मारे जाने से बहुत खुश थी इसलिये उन्होंने उन सात सौ सैनिकों को भी कुछ ही समय में पृथ्वी पर सुला दिया।

शाल्व की मृत्यु

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! भागती हुई कौरव सेना को म्लेच्छराज शाल्व ने एकत्र किया और वह पांडवों से युद्ध करने आ पहुँचा। शाल्व ने आते ही पांडवों के असंख्य वीरों को जमीन पर सुला दिया। पांडवों ने भी बहुत पराक्रम दिखलाया किन्तु शाल्व के उस वेग के सामने भीम तक विवश हो गये। वह अपनी भयानक बाण विद्या से पांडवों की सेना का नाश कर रहा था। उसी समय उसके सामने धृष्टद्युम्न आ गये। शाल्व ने धृष्टद्युम्न को अपने सामने पाया तो उसका संहार करने के लिए उसके रथ पर अपने हाथी को दौड़ा दिया। हाथी ने सूंड से धृष्टद्युम्न के रथ को उलट दिया। किन्तु रथ इस प्रकार से गिरा कि धृष्टद्युम्न के नीचे दब जाने पर भी वह बच गये। कुछ पल पश्चात् धृष्टद्युम्न अपने रथ से निकले और उन्होंने शाल्व पर अपनी गदा से प्रहार किया। शाल्व ने स्वयं को तो बचा लिया किन्तु वह गदा हाथी को लगी और वह कराहता हुआ वहीं बैठ गया। तभी सात्यकि ने चन्द्राकार के इतने बाण शाल्व पर चलाये कि अनेक बाण तो उसकी छाती में धंस गये और एक बाण शाल्व की गर्दन हो उड़ा ले गया।

शाल्व के मारे जाने से कौरव सेना भाग निकली। परन्तु दुर्योधन ने अपनी सेना को फिर वापिस ललकारा और उन्हें एकत्र करके फिर से पांडवों के साथ लड़ने को तैयार कराया। आश्वासन पाकर सेना फिर लौटी और युद्ध दोबारा आरम्भ हो गया।

अर्जुन ने जब दुर्योधन को सेना का संचालन करते देखा तो उसने श्रीकृष्ण से कहा कि वह रथ को दुर्योधन की ओर बढ़ा कर ले चलें, ताकि आज दुर्योधन से अन्तिम निर्णय हो जाये। अर्जुन की इच्छानुसार श्रीकृष्ण ने रथ दुर्योधन की ओर बढ़ा दिया। दुर्योधन उस समय अपनी सेना सहित पांडवों की सेना का नाश कर रहा था।

दुर्योधन के दस भाइयों का मारा जाना

सूत जी कहते हैं—हे राजन्! श्रीकृष्ण ने रथ आगे बढ़ाया और अर्जुन ने गांडीव संभाल लिया। दुर्योधन तक पहुँचने के सभी रास्ते वीरों से घिरे थे किन्तु अर्जुन तीव्रतम बाण वर्षा करते हुए अपने रथ के लिये रास्ता बनाये जा रहे थे।

इधर भीमसेन कौरवों में कोलाहल मचाये हुये थे। उन्होंने अपनी गदा के भयानक वारों से कोई पाँच सौ महारथियों को धराशायी कर दिया था। उनका इस विकट रूप में देख कर सात सौ हाथी और आठ सौ घोड़ों की सेना लेकर दुर्योधन के दस भाई—यथा दर्शन, श्रुतांत, जैत्रेय, भूमिबल, रवि, जीतसेन, सुरजीत, दुर्दीश, द्रवीमोचन, दुशपर्दश, और श्रुतवर्मा इत्यादि ने भीम को घेर लिया। पल भर को तो भीम इतनी सारी सेना को देख कर विचलित हो गये किन्तु फिर एक दम आवेश में आ उन्होंने अपनी गदा चलानी जो आरम्भ की तो तब तक नहीं रोकी, जब तक कि दुर्योधन के वह दसियों भाई मृत्यु को प्राप्त नहीं हो गये। उन दसों वीरों के मरते ही शेष सेना आतंकित हो कर स्वयमेव भाग खड़ी हुई।

स्वशर्मा की मृत्यु

अब तक दुर्योधन के सब भाइयों का अन्त हो चुका था। केवल

दुर्योधन और सुदर्शन ही शेष रह गये थे। तब अर्जुन ने उनका संहार करने के लिये प्राणपण की बाजी लगा दी। भीम इत्यादि भी उधर ही बढ़े। उसी समय शकुनी ने उन्हें रोका युद्ध होने लगा। सहदेव की मार से दुर्योधन को मूर्च्छा आ गई। इसके बाद त्रिगर्तराज स्वशर्मा ने अर्जुन को ललकार दिया। स्वशर्मा बहुत वीर था। अर्जुन पांडवों सहित उसका सामना करने लगे। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से त्रिगर्त सेना कट-कट कर गिरने लगी स्वशर्मा ने अपने सैनिकों को इस प्रकार यमपुरी जाते देखा तो वह अपना रथ बिल्कुल अर्जुन के सामने ले आये किन्तु अर्जुन के गांडीव से निकले प्रथम कुछ ही बाणों ने स्वशर्मा का शरीर बेध दिया और तब अर्जुन ने एक चन्द्राकार बाण चला कर स्वशर्मा की गर्दन काट दी।

शकुनी का अन्त

सूतजी बोले—हे राजन्! वीर स्वशर्मा की मृत्यु से कौरवों को बहुत दुःख हुआ। दुर्योधन ने बची-खुची सेना को ललकार कर एकत्र किया और युद्ध फिर भयंकर रूप ग्रहण करने लगा। दोनों ओर के सैनिक प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिरने लगे। उसी समय शकुनी का सहदेव से सामना हो गया। सहदेव ने उस पर असंख्य बाण चला कर उसे ढंक दिया। इस पर शकुनी आवेश में आकर भीम और सहदेव को मारने लगा। आकाश सहदेव के बाणों से ढक गया। सूर्य का प्रकाश धरती पर आना बन्द हो गया। युद्धभूमि टूटे हुए रथों, मृतक शवों तथा प्राणहीन हाथी घोड़ों से भर गई। घायल सैनिक मृतकों को कुचल कर भागने लगे।

उसी समय वीर शकुनी ने सहदेव को खींच कर एक ऐसा भाला मारा कि वह बेसुध होकर रथ के पार्श्व भाग में जा गिरा। सहदेव का अचेत होना था कि महाबली भीम के क्रोध की सीमा न रही। वह गदा लेकर कौरव सेना पर टूट पड़ा।

इधर जब सहदेव की मूर्छा टूटी तो उन्हें बहुत क्षोभ हुआ और वह उसी क्षोभ में दोबारा धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर आवेश से शकुनी को ललकारने लगे। शकुनी फिर इनकी तरफ बढ़ आया और दोबारा इन दोनों का युद्ध भयंकर गति से होने लगा। पहले सहदेव ने तीन बाण चला कर शकुनी के धनुष के तीन टुकड़े कर दिये। और फिर तेरा बाण चला कर उन्होंने अलूप का सर उड़ा दिया। अलूप को इस प्रकार मरता देखकर शकुनी ने दूसरा धनुष उठाया और चाहा कि सहदेव पर बाण बरसायें कि सहदेव ने फिर तीन बाण चला शकुनी के धनुष के तीन टुकड़े कर दिये। अब तो क्रोध के मारे शकुनी की आँखों से चिनगारियां बरसने लगीं। उन्होंने फिर से धनुष उठाया और सहदेव पर एक साथ दस बाण चलाये। परन्तु सहदेव ने भी दस बाण चला कर उसके दसों बाणों को काट दिया। शकुनी ने शक्ति चलाई। सहदेव ने शक्ति चला कर शकुना की शक्ति को भी काट दिया। शकुनी ने सांग फैंका। परन्तु सहदेव के सांग ने उस के सांग को भी काट फैंका। तब क्रुद्ध हो कर शकुनी तलवार लेकर सहदेव के निकट पहुँच गये। किन्तु सहदेव ने अपनी तलवार से उस की तलवार भी तोड़ दी अब शकुनी परास्त हो गये। जब वह भागने की सोच रहे थे। तब सहदेव ने पाँच बाण चला कर शकुनी को पृथ्वी पर गिरा दिया। वह तीनों बाण शकुनी की छाती में गड़ गये थे। जमीन पर गिरते ही शकुनी नेप्राण छोड़ दिये।

दीपायन तालाब में दुर्योधन

सूत जी कहते हैं—हे राजन्! उधर सहदेव ने शकुनी को मारा और इधर अर्जुन ने कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा तथा दुर्योधन इत्यादि को परास्त कर के उन की बची खुची सेना का भी संहार कर दिया। कौरवों की ग्यारह लाख सेना में से अब केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और स्वयं दुर्योधन को मिला कर मुट्ठी भर सेना ही थी जो बची रह गई थी। भीम और अर्जुन

के प्रबल वेग के सामने एक तो यह वैसे ही खड़े नहीं रह पा रहे थे, दूसरे जब इन्होंने शकुनी की मृत्यु का समाचार सुना तोरण छोड़कर भाग खड़े हुए। दुर्योधन पैदल ही जंगल की तरफ भागा। दुर्योधन को पानी में अपना सांस रोकना आता था। सो जंगल में स्थित दीपायन तालाब के पानी में जाकर वह छुप गया।

दुर्योधन को युद्धभूमि में न पाकर युधिष्ठिर ने उसे खोजने के लिए चारों तरफ गुप्तचरों को दौड़ाया। परन्तु बहुत खोजने पर भी उस का पता न चला। पांडव उस के न मिलने के कारण से विजय प्राप्त कर के भी विजयी न कहला सके। वह चिन्तित थे, कि उसी समय एक शिकारी ने आकर युधिष्ठिर से कहा कि महाराजा हमने स्वयं तो दुर्योधन को नहीं देखा हैं किन्तु एक तालाब के पास कृपाचार्य और कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा को पानी में बैठे किसी व्यक्ति से बातें करते अवश्य देखा है।

यह सुनकर पांडवों को विश्वास हो गया कि वह दुर्योधन के अतिरिक्त और कोई न होगा।

जब पांडव सेना तालाब के किनारे पहुँची तो देखा कि तब भी कृपाचार्य इत्यादि बैठे किसी से बातें कर रहे हैं। पांडवों को तालाब के किनारे देख कर वह तीनों उठ कर चले गये। युधिष्ठिर पानी के पास आये और उन्होंने ललकार कर कहा—'ऐ' दुर्योधन! ग्यारह लाख सेना को इस तरह मरवा कर तुम स्वयं अपनी जान बचाने के लिए पानी में आ छिपे हो! क्या तुम्हें यह शोभा देता है। डरना ही था तो युद्ध शुरू नहीं करना चाहिये था। वीरों की तरह सामने आओ और लड़ो। कायर होकर बचने से तो अच्छा है वीरता के साथ आदमी मर जाये। पानी से निकलो बाहर।'

दुर्योधन ने पानी के अन्दर से कहा—हे युधिष्ठिर! मैं अपने प्राणों

के भय से यहां नहीं घुसा हूँ। परन्तु इस लिए कि मैं अकेला किस किस से लड़ूँगा। अब भी मैं भागूँगा नहीं। सेना एकत्र करूँगा और फिर तुम से लड़ूँगा। और यदि कोई मुझ अकेले से लड़ना चाहे तो मैं अभी बाहर आ सकता हूँ। तुम में से जिसे भी अपने बाहुबल पर विश्वास हो, वह मेरे साथ द्वंद्व युद्ध करके देख ले। पर शर्त एक होगी कि जो भी हारेगा उस व्यक्ति की नहीं पूरे पक्ष की हार समझी जायेगी। मैं हार गया तो कौरवदल हार गया और तुम्हारा व्यक्ति हार गया तो पांडव हार गये। कहो, मंजूर हो तो बाहर आऊँ।

युधिष्ठिर ने कहा—आओ। हमारी ओर से तुम्हारे साथ भीम लड़ेगा।

इतना सुनते ही दुर्योधन जल से बाहर आ गया। भीम और दुर्योधन दोनों को एक एक गदा मिल गई। दोनों तैयार हो गये।

परन्तु उसी समय तीर्थयात्रा से लौट कर बलराम जी भी वहाँ पहुँच गये। उनका उस समय वहाँ आना श्रीकृष्ण को अच्छा नहीं लगा। परन्तु राजा युधिष्ठिर ने उनकी बड़ी आवभगत की। कुशल मंगल के बाद बलराम जी ने दुर्योधन और भीम को आशीर्वाद देकर कहा—तुम दोनों ही मेरे शिष्य हो। मेरा प्रेम तुम दोनों पर एक समान है। आज मैं बयालिस दिन की तीर्थयात्रा के बाद लौटा हूँ। परन्तु अभी तक तुम्हारा युद्ध समाप्त नहीं हुआ। यह मेरे ही सामने होने को था। अच्छा लड़ो! आज मैं तुम दोनों का युद्धकौशल देखूँगा।

दोनों ने बलराम जी को नमस्कार किया और फिर मैदान में उतर गये। दोनों की गदायें परस्पर टकराईं, जिस से जोर का शोर हुआ और दोनों गदाओं से चिनगारियां निकलीं। दुर्योधन गदा-युद्ध में भीम से अधिक निपुण था और फिर बलराम जी के आने से उस में साहस और भी बढ़ गया था।

इस लिए भीम को अधिक चोट लग रही थी। दुर्योधन आगे बढ़ कर आक्रमण करता और भीम के प्रत्याक्रमण करने से पूर्व ही पीछे हट जाता। जब काफी समय तक भीम एक भी आक्रमण दुर्योधन पर नहीं कर पाया तो कृष्ण ने अपनी जंघा पर हाथ मार कर भीम को संकेत किया कि दुर्योधन की जंघा-पर आक्रमण करो। इस समय दुर्योधन उछल कर अपनी गदा का वार भीम के सर पर करने जा रहा था कि भीम ने गदा को घुमा कर इतनी ज़ोर से दुर्योधन की जंघा पर वार किया कि उसकी जंघा टूट गई और वह पीड़ा से कराहते हुये धरती पर गिर गया। भीम झपट कर उसका सर कुचलने लगा। अभी तक तो बलराम चुप थे। परन्तु जब भीम ने दुर्योधन की जंघा पर गदा मारी तो वह क्रोध से उठ खड़े हुये, और अपना मूसल लेकर भीम को मारने दौड़े। परन्तु श्री कृष्ण ने बीच में आकर कहा, यह आप क्या करते हैं? बलराम जी ने कहा--गदा-युद्ध में कमर से नीचे के भाग में आक्रमण करना नियम विरुद्ध है। भीम ने युद्ध का नियम भंग करके अन्याय से काम लिया है, इस लिये मैं इसे दंड दूँगा।

श्रीकृष्ण ने कहा--इस में कुछ भी अन्याय नहीं है। भीम क्षत्रिय है। इसने भरी सभा में क्षत्रियों के सामने दुर्योधन की जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा की था। क्या वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करे? अगर आप भीम को अन्यायी कहते हैं तो पांडवों को कइ प्रकार से राज्य से वंचित करने वाला दुर्योधन क्या अन्यायी नहीं है? भीमसेन को जहर के लड्डू खिलाने वाला, पांडवों का लाक्षागृह में जलाने वाला, युधिष्ठिर को धोखे से जूआ खिलाकर उससे राज्य छीनने वाला, भरी सभा में एक सच्चरित्र नारी द्रोपदी की साड़ी खींच कर उसे नग्न करने वाला अन्यायी नहीं तो क्या है?"

श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर बलराम जी ने कहा, "ओह। अब मैं समझ गया। यह सब तुम्हरी ही लीला है। अब तो मुझे यहाँ से चले जाना ही उचित है। यह कह कर बलराम जी वहाँ से चले गये।

उन के जाने के पश्चात् पांडवों ने भी अपने पड़ाव की ओर चलने का निश्चय किया। चलते समय युधिष्ठिर ने दुर्योधन की उस दयनीय अवस्था को देख कर कहा—"हाय! संसार कितना स्वार्थी है। उसे अपनी नश्वरता का बिल्कुल ज्ञान नहीं है। जो व्यक्ति पलभर पूर्व राजा था वही इस समय धूल के साथ धूल हो रहा है। यदि वह अपने राज्य से ही संतुष्ट रहता तो उसकी यह अवस्था न होती।"

तब भीमसेन ने कहा—ए दुर्योधन! अपनी हालत देख और वह समय याद कर जब तूने जंघा पर हाथ मार कर द्रोपदी से कहा था कि यहाँ आकर बैठ। रे मूर्ख! अब बुलाऊँ द्रोपदी को, ताकि वह तेरी यह अवस्था देख पाये। दुर्योधन चुप रहा।

किन्तु तभी श्रीकृष्ण ने कहा—"शत्रु मर रहा है। मरते हुए व्यक्ति से कभी कठोर वचन न कहने चाहियें।"

तब सर उठा कर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कटु स्वर में कहा—"ऐ कृष्ण! अब मीठी बातें न बना। तेरे ही संकेत पर भीम ने अधर्म युद्ध करके मेरी जंघा को तोड़ा है। नहीं तो भीम गदा-युद्ध में मुझ से अधिक निपुण न था। परन्तु तुम बड़े कृतघ्न हो। जो ऐसी नियमविरुद्ध चालें चल कर पांडवों को विजय दिलाई है। तुमने पहले भी कई बार ऐसी ही अन्याय की बातें कर के पांडवों को विजय प्राप्त कराई है। तुम्हीं ने युधिष्ठर से झूठ बुलवा कर गुरु द्रोण की हत्या करवाई और वीर भूरिश्रुवा भी तुम्हारे ही परामर्श से मारा गया है।"

उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—"मैंने कुछ नहीं किया, दुर्योधन! जो कुछ हुआ सब तेरी करनी का फल है। छोटी आयु से ही तू पांडवों के पीछे पड़ा था। राज्य के लोभ से अपने सम्बंधियों का शत्रु बना हुआ था। उसी लोभ का यह

परिणाम है कि आज तू अकाल मृत्यु मर रहा है। फिर इस के लिए दूसरों पर दोष क्यों लगा रहा है। जैसा किया है, अब उसका फल भोगने में रोता क्यों है?"

दुर्योधन ने कहा–"रोने की कोई बात नहीं। परन्तु जनता जनार्द्दन के घातकी जो चाल तू ने चली है, में वह बता रहा था। नहीं तो मैं युद्ध-भूमि में मर कर बड़ा प्रसन्न हूँ। मुझे संसार के भोगों की कोई इच्छा नहीं है। जब तक मेरा वश चला है, मैंने शत्रु को सपने में भी आगे नहीं बढ़ने दिया है। क्षत्रिय-कर्म का पूर्ण रूपेण पालन करने से मुझे पूरा विश्वास है कि मैं वीर गति पाऊँगा। ऐ कृष्ण! मेरा रास्ता तो स्वर्ग का है! इस लिए पछताने की क्या बात है। अब तो पांडव पछतायेंगे, जिन्ह ऐसा राज्य भोगना पड़ेगा जिस में न धन रहा है और न मनुष्य।"

इसके उपरान्त भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल सहदेव तथा सात्यकि इत्यादि को लेकर श्रीकृष्ण अपने पड़ाव में आ गये। वहाँ श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा––दुर्योधन मर रहा है वह आपका भाई है। धर्म के नाते आज की रात आप को उसके साथ रहना चाहिये।

युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार करली और उनका रात को वहाँ जाना निश्चित हो गया।

दुर्योधन का विलाप

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! इधर जब दुर्योधन के पास से पांडव हट गये तो अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा फिर से दुर्योधन के पास आ गये। उन्होंने देखा कि जंघा के टूटने से दुर्योधन खून में लतपथ पड़ा वहाँ कराह रहा है। उन्होंने देखा कि उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तब अश्वत्थामा ने आगे बढ़ कर कहा–हे राजन्! आपकी यह अवस्था मुझसे

सहन नहीं हो रही। यूँ तो शरीर नश्वर है। परन्तु जिस शरीर से स्नेह और प्यार हो उसको जाते देखकर बहुत दुःख होता है।'

दुर्योधन ने कहा—"बन्धु! मुझे और तो किसी बात का दुःख नहीं किन्तु इतना दुःख अवश्य है कि मुझे क्षत्रिय धर्म के अनुसार नहीं मारा गया। मुझसे भीम ने छल किया है। मैं जानता हूँ कि एक न एक दिन सभी को मरना है पर जिसने मेरे साथ यह किया है वह यदि जीवित रहा तो मुझे बहुत दुःख होगा।"

दुर्योधन की यह बातें सुनकर अश्वत्थामा का भुजायें फड़कने लगीं। वह बोला—"इन पांडवों ने जब छल से मेरे पिता जी को मारा था, तब भी मुझे इतना दुःख नहीं हुआ था जितना आपकी यह अवस्था देख कर हो रहा है। इसलिए मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जब तक पांडवों को मार नहीं लूंगा तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। आप मुझे आदेश भी दीजिये और आशीर्वाद भी।

दुर्योधन ने जब अश्वत्थामा के यह वचन सुने तो परम आनन्दित हुआ उसने कृपाचार्य से कहा—कि आप जाकर एक कलश जल भर कर लाइए! मैं अभी विधीवत अश्वत्थामा को सेनापति बनाता हूँ! क्योंकि शास्त्र धर्म के अनुसार राजा की आज्ञा से ही युद्ध करना चाहिये।

कृपाचार्य जाकर जल का कलश भर लाये और उन्होंने दुर्योधन की आज्ञानुसार अश्वत्थामा को सेनापति बना दिया।

तब अश्वत्थामा ने उठकर एक गर्जना की और झुक कर दुर्योधन को नमस्कार करके कृपाचार्य और कृतवर्मा सहित युद्ध भूमि की ओर चलपड़ा। दुर्योधन वहीं पड़ा रहा।

सौप्तिक पर्व

अश्वत्थामा का दुष्कृत्य

सूतजी कहते हैं–हे राजन् ! इस प्रकार वह तीनों वीर दुर्योधन को प्रणाम करके वन की तरफ चले गये। वन में एक घने पेड़ के नीचे वह तीनों रुक गये। दिन भर के युद्ध और परिश्रम से वह तीनों खूब थक गये थे। इसलिये वहीं वन में वह तीनों अपने अपने रथ पर सो रहे। कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को तो थोड़ी देर में नींद आ गई किन्तु अश्वत्थामा दुःख में डूबा जा रहा था। वह सोच रहा था कि कौनसा ऐसा उपाय करूँ जिससे दुर्योधन का प्रतिशोध लिया जाये। उस की समझ में यह नहीं आ रहा था कि वह तीन व्यक्ति किस प्रकार इतने सारे योद्धाओं का मुकाबिला कर पायेंगे वह लोग इस के अतिरिक्त क्या कर सकते हैं कि प्रातः होने पर लड़ते लड़ते अपने प्राण त्याग दें ?

परन्तु तभी एक बडी विचित्र घटना घटी।

किस पेड़ के नीचे अश्वत्थामा सोया हुआ था, उसी पेड़ पर उस रात बहुत से कौए विश्राम कर रहे थे। इतने सारे कौओं के कारण से सारा पेड़ घिर गया था जिससे वहाँ रहने वाले कुछ उलूक युगलों के लिए परेशानी उत्पन्न हो गई थी। कुछ न समझ कर सहसा ही उलूकों ने कौओं पर आक्रमण कर दिया। अब क्या था ? दोनों में युद्ध होने लगा। किन्तु उलूक तो है ही रात का पक्षी। इसलिए उसे तो कौऐ नज़र आ रहे थे। किन्तु कौओं को कोई उलूक नजर नहीं आता था। इससे उलूकों ने कौओं को बहुत मारा और कुछ ही देर में सभी कौए भटकते भटकते वहां से उड़गये।

उस पक्षी-युद्ध को देखकर सहसा ही अश्वत्थामा को विचार आया कि क्यों न वह भी शत्रु पर रात्रि के समय आक्रमण करें ? बस उसने तत्काल कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगाया। वह दोनों उठ बैठे। तब अश्वत्थामा ने उन्हें कौओं और उलूकों का वृत्तांत सुनाकर अपना मत प्रगट किया और पूछा कि पांडवों के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार क्यों न किया जाये।

उत्तर में कृपाचार्य ने कहा—हे वीर मनुष्य दो प्रकार के कर्मों से बंधे हुए हैं। एक तो प्रारब्ध से दूसरे उद्योग से। परन्तु उद्योग से सफलता भाग्य से ही मिलती है। हमें तो बस कर्म करते रहना चाहिये और फल ईश्वर के आधीन छोड़ देना चाहिये। बुद्धिमान् जन भाग्यपर भरोसा करके ईश्वर के प्रति समर्पित भाव से कर्म किये जाते हैं। परन्तु आलसी और मूर्ख व्यक्ति कार्य करते ही नहीं। उल्टे ईश्वर की निन्दा करते हैं। जिससे अन्त में दुःख उठाते हैं। इसलिए कर्म करते रहने तथा भाग्य को भगवान् के अर्पण करके ही सुख की उपलब्धि होती है। कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि पूरा कार्य करने पर भी मनुष्य को उचित फल की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु इससे वह मनुष्य दुःखी नहीं होता। क्योंकि वह जानता है कि कर्म के करने में ही उस की भलाई है। वह पूर्ण उद्योग करके ही अपने आप को सफल मानता है। और वास्तव में वह है भी सफल भले ही उसे पहले सुख न मिले और कर्म का सुन्दर फल प्राप्त न हो परन्तु किसी न किसी समय दूसरे रूप में वह उद्योग फल देकर ही जायेगा। जो मनुष्य अपने गुरुजनों और बड़ों का कहना मानकर कर्म करते हैं उन्हें अवश्य सफलता प्राप्त होती है। परन्तु उल्टा काम करने वाला शीघ्र ही निर्धन होकर नष्ट हो जाता है। हे आचार्य! दुर्योधन तो बड़ा मूर्ख था कि उसने अपने बड़ों का अपमान करके युद्ध शुरू किया और अपने भाइयों और मित्रों से व्यर्थ की शत्रुता मोल लेली। नहीं तो वह कितना बलवान था, कभी नाश को प्राप्त न होता। परन्तु अपने बड़ों का अपमान करके

भी वह सर्व गुण होते हुए भी पांडवों पर विजय प्राप्त करना चाहता था। यह तो सम्भव न था। आज वह अपने किये हुए कर्मों का फल भोग रहा है। उसकी बात में पड़कर हम लोगों ने भी बड़ा कष्ट उठाया। परन्तु अब तो सोच विचार कर ही कदम रखना चाहिये। बुद्धिमानी से काम लेकर सफलता प्राप्त की जा सकती है। नहीं, तो चलिये महाराज धृतराष्ट्र विदुर जी तथा माता गाधांरी के परामर्श से कार्य करें। इस पर भी यदि हम लोगों को अच्छा फल प्राप्त न हो तो यह समझना चाहिये कि भाग्य ही खोटा है।"

कृपाचार्य के इन वचनों से अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ उसकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। वह क्रोध में आकर कृपाचार्य तथा कृतवर्मा से बोला-हे वीरो! अपनी बुद्धि की प्रशंसा तो सभी लोग करते हैं। परन्तु दूसरे की प्रशंसा कोई नहीं करता। लोग उल्टे निन्दा ही करते हैं। आप मेरे उत्तरदायित्व को नहीं समझ रहे हैं। राजा दुर्योधन ने मुझे सेनापति बनाया है और अपने इस कर्तव्य को निभाने के लिए मैं व्याकुल हो रहा हूँ। मैंने पांडवों के नाश का दृढ़ निश्चय किया है। इसलिए मैं क्षत्रिय धर्मका पालन अवश्य करूंगा। बिना इसके शांति नहीं प्राप्त हो सकती। यह रातका समय है। इसलिये पांडव अपने २ कवचों को उतार कर सो रहे होंगे। चलिये उन पर आक्रमण किया जाये। सर्वप्रथम मैं पिता के शस्त्र से धृष्टद्युम्न को मारूँगा। फिर पांडव तो मौत के घाट उतरेंगे ही।

अश्वत्थामाकी इस भावना को समझ कृपाचार्य ने कहा-हे आचार्यपुत्र! निस्सन्देह आप वीर योद्धा हैं। परन्तु यह कहाँ की वीरता है कि रात के समय सोते हुए शत्रु पर आक्रमण किया जाये। अभी सो जाइये। रात काफी बाकी है। प्रातः होते ही हम तीनों वीर चलेंगे और जिस प्रकार होगा पांडवों को नष्ट किया जायेगा। कृतवर्मा के साथ रहते हुए स्वयं इन्द्र भी आप का कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

इस बात से अश्वत्थामा को और भी आवेश आगया। वह अपने उस कार्य को हर हालत में पूरा करना चाहता था। वह झुंझला कर बोला- आप यह क्या करते हैं? नारी के वश में रहने वाले क्रोधी और विजय के इच्छुक को नींद नहीं आती। मेरी ठीक ऐसी ही अवस्था है। मैंने इसी रात में पांडवों को मारने का निश्चय किया है। इसीलिये मैं इस निश्चय से पीछे न हटूँगा। आप दोनों की इच्छा हो तो मेरा साथ दीजिये, नहीं तो मैं जा रहा हूँ। पांडवों ने हमारे साथ बड़ा अन्याय किया है और आप सिर्फ रात के आक्रमण को ही धोखा समझते हैं। पांडवों ने जिस अन्याय से युद्ध किया है और धृष्टद्युम्न ने जिस तरह शस्त्रहीन मेरे पिता को मारा है और महा-बली कर्ण के रथ के पहिया के पृथ्वी में धंसने की जिस अवस्था में अर्जुन ने कर्ण को मारा है और अखंड ब्रह्मचारी भीष्म पितामह के आगे जिस प्रकार शिखंडी को खड़ा करके अर्जुन ने उनको मारा है, और जिस प्रकार सात्यकि ने भूरिश्रुवा का सर काट लिया है उन सब को आप क्या धोखा नहीं कहेंगे। क्या इसे आप न्याय कहेंगे? इन सब अत्याचारों को सोच कर मेरा दिल व्याकुल हो रहा है। और अब मैं अपने आप को नहीं रोक सकता।

अश्वत्थामा का आक्रमण

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! यह कह कर अश्वत्थामा अपने रथ में घोड़ों को जोतने लगा। कृपाचार्य ने पूछा—क्या कर रहे हो?

अश्वत्थामा ने कहा—राजा दुर्योधन के दुःखों को मिटाने का यत्न और दुष्ट धृष्टद्युम्न समेत पांडवों को मारने का विचार कर रहा हूँ।

कृपाचार्य ने कहा—क्या हम दोनों पर विश्वास न करके अकेला ही जायेगा?

अश्वत्थामा कुछ न बोला। इस पर कृतवर्मा और कृपाचार्य ने कवच धारण करके कहा—चलिये आप का साथ हम भी छोड़ने वाले नहीं।" और तीनो रथ में बैठ गये।

अब पांडवों के पड़ाव पर पहुँच कर अश्वत्थामा ने देखा कि फाटक पर स्वयं शंकर भगवान् साक्षात् अपने रूप में पहरा दे रहे हैं। पहले तो अश्वत्थामा ने क्रोध आकर शंकर जी पर अनेक शस्त्रों से आक्रमण किया परन्तु जब उन शस्त्रों का कोई प्रभाव न हुआ तो अश्वत्थामा का क्रोध टल गया और वह प्रार्थना करने लगा। एक ओर से द्रोणपुत्र विनती कर रहे थे और दूसरी ओर महादेव जी के भयानक केशधारी अनेक गण कई जीवों को भस्म कर रहे थे। प्रार्थना करते करते अश्वत्थामा महादेव जी को प्रसन्न करने के लिये अपने आप को बलिदान चढ़ाने का विचार करके बोला—हे महादेवजी! यदि मैं अपने शत्रुओं को जीत न सकता होऊँ तो मेरा बलिदान स्वीकार करें। क्यों कि शत्रुओं के आधीन जीवित रह कर मैं अपना जीवन मृत्यु समान समझूँगा।'

इतना कह कर अश्वत्थामा हवन-कुंड में, जो शंकर जी की माया से वहाँ कुछ देर पूर्व ही बना था, अपने सर को काट कर डालना ही चाहता था कि शंकर जी हँस कर बोले—'हे अश्वत्थामा! मैं तेरी सच्चाई, वीरता पर भरोसा और तेरी भक्ति से प्रसन्न हूँ। अब तेरे रास्ते में रुकावट न आयेगी। पांडवों का समय पूरा हो गया है।" यह कह कर शंकर जी ने उसे एक तेज़ और शक्तिशाली तलवार दी और स्वयं अश्वत्थामा के शरीर में प्रविष्ट हो गये। अब उसका शरीर और भी तेजस्वी हो गया।

धृष्टद्युम्न की मृत्यु

सूतजी कहते हैं—हे राजन् अब निर्भय होकर अश्वत्थामा पांडवों के

डेरे में घुस गया। घुसते समय उसने कृपाचार्य और कृतवर्मा से कहा—आप दोनों व्यक्ति पड़ाव के दोनों द्वारों पर रहिये। मैं अन्दर जाकर शत्रुओं का नाश करता हूँ। यदि कोई भाग कर बाहर जाना चाहे तो उसे मार डालियेगा।

अश्वत्थामा के निर्देशानुसार कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों द्वारों पर ठहर गये। अश्वत्थामा ने अन्दर जाकर देखा कि धृष्टद्युम्न एक सुन्दर तथा कोमल बिस्तर पर सोया हुआ है। अश्वत्थामा एक दम से उसकी छाती पर चढ़ गया और उसे मारने लगा। धृष्टद्युम्न ने चौंक कर आँख खोलीं तो स्वयं को बेबस पाया। परन्तु उसने क्षीण स्वर में कहा—हे आचार्यपुत्र! तेरे हाथों से मर कर मैं जरूर स्वर्ग को जाऊँगा। इस लिये तू मुझे तत्काल समाप्त करदे।

अश्वत्थामा ने कहा—तेरे जैसे पापी तो नरक में जाते हैं। तेरे जैसे गुरुघातकों के लिए स्वर्ग के द्वार कभी नहीं खुलते। यह कह कर अश्वत्थामा फिर उसे भयंकर चोटें लगाने लगा। तब पीड़ा से धृष्टद्युम्न ज़ोर ज़ोर से चीखें मारने लगे। इस पर डेरे के लोग जाग उठे। लोग अभी अन्दर प्रविष्ट हो ही रहे थे कि अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को तलवार घोंप कर मार डाला। इस के बाद जो लोग सामने आये उन्हें भी उसने मौतके घाट उतार दिया। पांडव वहाँ से काफी दूर सो रहे थे। किंतु साथ वाले शिविर में सोये युद्धमन्यु की आँख खुल गई। और जब वह बाहर आया और उसने यह दृश्य देखा तो उसने भी तलवार खींच ली। लेकिन अश्वत्थामा के पहले ही वार को वह सहन नहीं कर पाया और जमीन पर आ रहा।

शिखण्डी तथा द्रौपदी सुतों की हत्या

इस तरह धृष्टद्युम्न इत्यादि को मार कर अश्वत्थामा उस ओर बढ़ा जिधर द्रोपदी के पुत्र सो रहे थे। किंतु रास्ते में शिखंडी मिल गया। उस

ने अपने शिविर में अश्वत्थामा को देखा तो झट तलवार निकालने लगा। किन्तु इससे पूर्व ही अश्वत्थामा की तलवार के भयानक वार से उसकी गर्दन उड़गई। शोर सुन कर द्रौपदी-सुत जग गये और वह भी बाहर अपनी अपनी तलवारें लेकर आ गये। परन्तु अश्वत्थामा का उस समय का ऐसा ज़ोर बढ़ा हुआ था कि उन सब को भी एक एक कर के उसने मार डाला। सर्वप्रथम उसने प्रीतिविंध का पेट चीर डाला। तब सतसोम की भुजा काट दी और उसके बाद शतानीक, श्रुतिकर्म, और श्रुतकीर्ति को, भी मार डाला।

इस भयानक आक्रमण से डेरे में बड़ा कोहराम मच गया। पृथ्वी खून से रंगी गई। कितने ही वीर डर के मारे इधर उधर भागने लगे। परन्तु फाटक पर पहुँच कर वह भी मारे गये। डेरे में जो घोड़े हाथी सामने आये अश्वत्थामा ने उन को भी काट डाला। रुंड मुंड और खून के फौआरे चलने लगे। उस समय अश्वत्थामा के वेग के सामने जो भी आया, वही शोणित की धारा में वह गया। उस भयंकर आक्रमण में उस को यह मालूम न हुआ कि कौन कौन वास्तव में मारा गया है। परन्तु काफी आदमियों के मारे जानें पर उसे बड़ी खुशी प्राप्त हुई। तब वह डेरे से बाहर निकल आया। तथा कृपाचार्य और कृतवर्मा को बतला दिया कि पांडव इत्यादि सब मार डाले गये हैं। यह सुन कर वह तीनों प्रसन्नता से नाच उठे।

दुर्योधन का प्राण त्यागना

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! अब अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा हँसते कूदते हुए अपने इस आक्रमण का हाल महाराज दुर्योधन को उसकी मृत्यु से पहले सुनाने के लिए उसकी ओर चल पड़े। जहाँ दुर्योधन दुरवस्था में पड़ा हुआ था वहां पहुँच कर उन्होंने देखा कि दुर्योधन अब अपनी अन्तिम सांसें गिन रहा है। उसके मुँह से खून बह रहा था। गीदड़, भेड़िये

तथा दूसरे मांसभक्षी जीव उसे घेरे हुए थे। जब वह उसका मांस नोचने के लिए निकट आते थे तो लेटे-लेटे दुर्योधन उनको अपनी गदा से मारता था और अपने शरीर की रक्षा बड़े दुःख से करता था। उस महाप्रतापी राजा की इस दुरावस्था को देखकर अश्वत्थामा इत्यादि तीनों वीर रोने लगे। उन्होंने महाराज दुर्योधन के सर को अपनी गोद में लेकर धूल और खून को पोंछा। फिर दुःख प्रकट करते हुए अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा—हे महाराज! आप बड़े बलवान थे। शूद्र भीम ने अन्याय से आप को मारा है। इसीलिए बलराम भीम को मारने चले थे। परन्तु श्रीकृष्ण जी ने रोक दिया था। परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि यह अधर्म-युद्ध युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के सामने कैसे हुआ? हे राजन्! यह दुनिया जब तक बनी रहेगी वीरगण भीम के इस अधर्म-युद्ध की निन्दा करते रहेंगे। हे वीर! आप धन्य हैं। कि धर्म-युद्ध करते रहे। इससे हमको आप पर गर्व है। दुःख केवल अंधी आँखों वाले धृतराष्ट्र और माता गांधारी का है कि आपके साथ अमरपुरी को नहीं जा रहे हैं।

अश्वत्थामा कहता रहा किन्तु दुर्योधन चुप रहा। अश्वत्थामा ने सोचा, शायद दुर्योधन की सुनने की शक्ति क्षीण हो गई है। सो, उसने उसके कान के पास अपने मुँह को ले जाकर कहा—राजन्! यदि आप जीवित हैं और सुन सकते हैं, तो कानों को सुख देने वाले एक शुभ समाचार को अवश्य सुन लें। पिछली रात मैंने पांडवों की सेना को मार डाला है। इस में द्रोपदी के पुत्र और अपने सहायक समेत धृष्टद्युम्न और दूसरे सहायक राजा महाराजा मारे गये हैं। पांडव संतानहीन हो गये हैं। अब उन के कुल का दीपक बुझ गया है। पांडवों की सात अक्षोहिणी सेना में से केवल सात वीर अर्थात् पाँचों पांडव, सात्यकि और श्री कृष्ण शेष बचे हैं। इधर आपकी सेना में से केवल तीन व्यक्ति शेष बचे हैं अर्थात् मैं कृतवर्मा तथा कृपाचार्य।

इस शुभ समाचार से दुर्योधन के चेहरे पर पल को कुछ दीप्ति हो आई। वह प्रसन्न होकर बोला—'हे आचार्यपुत्र! हम आप लोगों की वीरता से परम प्रसन्न हैं। अब स्वर्ग के राज्य से भी बढ़कर सुख मुझे इस अवस्था में प्राप्त हो रहा है।'

यह कह कर दुर्योधन ने आँखें बन्द कर दीं और बहुत सुखपूर्वक अपने प्राग त्याग दिये।

पाँडवों की व्याकुलता

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! जिस समय पांडवों के शिविर में यह हत्या का नाटक हुआ, पांडव उस समय दूसरे शिविर में सो रहे थे। जब इस भयानक आक्रमण का हाल युधिष्ठिर को मालूम हुआ तो वह बे सुध होकर गिर पड़े। तब कृष्ण, अर्जुन, भीम इत्यादि ने दौड़कर उन्हें जमीन से उठाया और कारण पूछा। तब युधिष्ठिर ने म..ा विलाप करते हुए अश्वत्थामा के हाथों धृष्टद्युम्न शिखंडी और द्रोपदी के पुत्रों के मारे जाने का हाल बताया। उन्होंने कहा—प्रकृति कितनी निष्ठुर है। जो योद्धा कर्ण, भीष्म और गुरु द्रोण के काल के समान गर्जन करने वाले और भगवान शंकर के समान मार करने वाले वाणों से भी मर न सके थे, वह बेबस होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए। हाय! यह समाचार द्रोपदी कैसे सुनेगी? निस्संदेह वह अपने प्राण त्याग देगी! हे नकुल जाओ और उसे पांचाल की स्त्रियों समेत यहां लाओ।

नकुल से ऐसा कहने के उपरान्त और नकुल के जाने के पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं उस स्थान पर गये जहां उनके पुत्र तथा धृष्टद्युम्न और शिखंडी इत्यादि वीर मरे पड़े थे। निर्दयता से की गईं इन हत्याओं को देखकर वह पागल हो उठे तथा बहुत विलाप करने लगे। उसी समय इन

हत्याओं का समाचार सुनकर पुत्रों के शोक में रोती चिल्लाती तथा केले के पत्ते के समान काँपती हुई द्रोपदी युधिष्ठिर के सामने आकर गिर पड़ी। वह बहुत जोर से रो रही थी।

द्रोपदी के इस विलाप से पांडवों को और भी दुःख हुआ। उग्रस्वभाव के भीम से द्रोपदी का वह रोना सहन नहीं हुआ। वह आगे बढ़ आये। और उन्होंने द्रोपदी के नेत्रों की अश्रुधारा पोंछी और ज़ोर से सुना कर प्रतिज्ञा करने लगे–उन्होंने कहा––'हे भामिनी! तेरे पुत्रों के अत्यारे अश्वत्थामा के सर में जो मणि है, मैं उसे मार कर वह लाऊँगा और उसे तेरे माथे पर शोभित करूँगा। तू धीरज और संतोष रख। तेरे पुत्रों को मारने वाला मेरी गदा से जीवित नहीं बच सकता।'

द्रोपदी को सांत्वना देकर भीम अपने रथ में चढ़े और अश्वत्थामा की खोज में चल पड़े।

उन के जाने के पश्चात् श्री कृष्ण ने ब्रह्मशर की विस्तृत कथा युधिष्ठिर इत्यादि को सुनाई और कहा–हे वीरो! अश्वत्थामा के पास भीम को मारने वाले अस्त्र विद्यमान हैं। जिससे भीम अकेले अश्वत्थामा के हाथों से बच नहीं सकते। इस लिए हमें चाहिये कि हम भी भीम के पीछे चल कर उस का साथ दें।

उत्तरा के गर्भ पर वज्रपात

कृष्ण जी की बात सभी को उचित जान पड़ी। तब अर्जुन और युधिष्ठिर इत्यादि, सभी अपने अपने रथों पर सवार होकर अश्वत्थामा की खोज में चले। आगे चल कर उन्हें पता चला, कि अश्वत्थामा गंगा के किनारे व्यास इत्यादि ऋषियों सहित सारे शरीर में धूल लपेटे हुये बैठा है।

बस, ये लोग तत्काल वहाँ पहुँच गये। भीम ने हाथ में धनुष बाण लेकर उसे युद्ध के लिये ललकारा। भीम को देख कर अश्वत्थामा ने ज्योंही ब्रह्म-शर को अभिमंत्रित करके छोड़ा कि तभी श्रीकृष्ण के बतलाने पर अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मअस्त्र छोड़ दिया। इससे भीम हट गये और दोनों शर परस्पर टकरा गये। वह अश्वत्थामा का अन्तिम वार था। और इससे पांडव भस्म हो जाते। दोनों बाणों के परस्पर भिड़ जाने से भयंकर आवाज उत्पन्न हुई। तब उन दोनों अस्त्रों को लड़ते देख कर महा मुनि नारद और वेदव्यास जी बीच में आकर खड़े हो गये। तब अर्जुन ने तो वेद व्यास के कहने पर अपना अस्त्र लौटा लिया किन्तु अश्वत्थामा ने नहीं लौटाया। जब वेदव्यास ने उसे बहुत समझाया तो उसने कहा—हे मुनि! आप नहीं जानते पांडव मेरे सर की मणि को माँगेंगे। और वह मुझे प्राणों से भी प्यारी है इस लिये मैं अस्त्र न लौटाऊँगा। इतना कर सकता हूँ कि उसे पांडवों के गर्भ पर छोड़ दूँ।

व्यास जी ने कहा—अच्छा, यही करो।

सो, अश्त्वथामा ने उसे उत्तरा के गर्भ पर चला दिया। अश्वत्थामा के इस नीच विचार को श्रीकृष्ण समझ गये। उन्होंने हँसकर कहा—हे आचार्य-पुत्र! तेरा यह कार्य व्यर्थ जायेगा। एक ब्राह्मण के आशीर्वाद से उत्तारा के गर्भ से परीक्षित नामी पुत्र उत्पन्न होगा और वही पांडव वंश का राज्याधिकारी होगा।

इस पर अश्वत्थामा कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीकृष्ण ने उसे श्राप दे दिया—कहा, तू चांडाल और काले दिल का व्यक्ति है, इसलिए तू तीन सहस्र वर्षों तक जीवन में इस तरह के दुःख उठायेगा और अन्त में मुक्ति पायेगा।

अश्वत्थामा का मणि-हरण

सूतजी कहते हैं—हे राजन ! श्रीकृष्ण के इस श्राप का समर्थन वेदव्यास ने भी किया । तब अश्वत्थामा अपने सर की मणि पांडवों के हवाले करके सबके सामने बन को चल दिया। इधर श्रीकृष्ण सहित सब पांडव अपने डेरे में लौट आये । भीम ने मणि द्रोपदी को देकर और युद्ध का सारा हाल सुनाकर कहा कि अश्वत्थामा को पराजित कर के मणि उससे छीन ली गई है । तथा अस्त्र रखवा कर उसे अकेला छोड़ दिया गया है । क्योंकि ब्राह्मण और आचार्य-पुत्र की हत्या धर्म-विरुद्ध थी।

द्रोपदी ने कहा-अच्छा ही किया। गुरु का पुत्र मेरे लिये गुरु के ही समान है । परन्तु यह मणि आप मुझे नहीं महाराज युधिष्ठिर को दीजिये क्योंकि इसके वास्तविक अधिकारी वही हैं ।

और तब द्रोपदी की प्रार्थना पर महाराज युधिष्ठिर ने उसको अपने मस्तक पर धारण कर लिया । इससे उनकी शोभा और भी बढ़ गई ।

———

स्त्री पर्व

धृतराष्ट्र का विलाप

सूतजी कहते हैं—हे राजन् ! इधर दुर्योधन समेत सारी सेना के मारे जाने का हाल सुन कर महाराज धृतराष्ट्र दुःखी होकर सूखे हुये पेड़ की तरह जमीन पर गिर पड़े। और विलाप करते हुये कहने लगे—हाय ! मैंने कौनसा अपराध किया था कि मुझे अपने पुत्र-पौत्रों बांधव और मित्रों इत्यादि की मृत्यु देखनी पड़ी। मुझे याद नहीं कि मैंने कौन सा ऐसा पाप किया है। जिस का बदला मुझे ईश्वर ने इतना बड़ा दुःख देकर दिया है। मैं अन्धा हूँ मित्रों तथा सम्बन्धियों के बिना मेरा जीवित रहना बहुत कठिन है। इस जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। मैंने भीष्म इत्यादि महापुरुषों की चेता-वनियों पर ध्यान नहीं दिया यह उसी का परिणाम है।

धृतराष्ट्र के इस विलाप से चारों ओर हलचल मच गई। सभी ओर जैसे दुःख का बादल छागया। तब संजय ने पहुँच कर धृतराष्ट्र को समझाया और कहा—हे राजन् ! सभी जीवों की अन्तिम गति यही है। युद्ध करने वाले भी मरते हैं और न करने वाले भी। परन्तु युद्ध में शरीर का त्याग करने वाले अमर हो जाते हैं। युद्ध से बढ़ कर क्षत्रिय के लिए शरीर त्यागने का और कोई स्थान नहीं। इसलिए आप दुःखी न होईये।

परन्तु इस पर धृतराष्ट्र का मोह कम नहीं हुआ। वह पुत्र के वियोग में अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। उसी समय कुछ मुनिगण वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने जल के छींटे डाल कर उन्हें तीन पुरोक समझाया। तब अन्त में

विदुरजी ने उन्हें समझाते हुये कहा--हे राजन् ! दुर्योधन काल का रूप धारण कर के गांधारी के पेट से उत्पन्न हुआ था। यह सत्यानाश ईश्वर को ही मंजूर था। दुर्योधन का तो सिर्फ बहाना बना है। एक बार मैं इन्द्र-सभा में गया था। वहाँ सभी देवता और नारद इत्यादि मुनि उपस्थित थे। पृथ्वी भी वहाँ गई थी। विष्णु ने पृथ्वी से हँसते हुये कहा था कि दुर्योधन निमित्त होकर पृथ्वी पर पैदा हो चुका है। लोगों के नाश का वही कारण बनेगा, जिससे तुम्हारा बोझ हलका हो जायेगा।

इस प्रकार विदुरजी ने ज्ञान-प्राप्ति के कई उपाख्यानों द्वारा जब धृतराष्ट्र को धीरज बंधाया तो धृतराष्ट्र ने कहा कि रण-भूमि में चलने के लिए रथ तैयार करो। और कुल की स्त्रियों से कहो कि वह भी चलें।

रण-भूमि में

सूतजी कहते हैं--हे राजन ! तब धृतराष्ट्र का आदेश पाकर गांधारी कुन्ती इत्यादि सब कुल की स्त्रियाँ बाल खोल कर तथा सफेद कपड़े पहन कर विधवाओं का सा रूप धारण कर रोती तथा चिल्लाती हुई रण-भूमि में चलने के लिए अपने-अपने घरों से निकलीं। दिल को हिला देने वाले उन के विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। कोहराम से हस्तिनापुर का आकाश गूँज उठा। अब रथों पर बैठ कर स्त्रियाँ और धृतराष्ट्र रण-भूमि की तरफ चले। नगर से एक कोस दूर निकल जाने पर रण-भमि से लौटते हुये अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले। इन लोगों ने दुर्योधन के स्वर्गबास होने का समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया और बताया कि गत रात हमने पांडवों के डेरे में घुस कर उनकी बची खुची सेना को मार दिया था। और द्रोपदी के पाँचों पुत्र भी इस आक्रमण में मारे गये थे। इस लिये वह हमें ढूँढ़ते हुये आते ही होंगे। हम डर रहे हैं। सो, यहाँ नहीं ठहर सकते। आप अपना दुःख निवारण कीजिये। आपके पुत्र वीर-गति को प्राप्त हुये हैं।

यह कह कर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा आगे बढ़ गये। कुछ दूर आगे जाकर वह तीनों एक दूसरे से छाती लग कर मिले। इसके बाद कृपाचार्य हस्तिनापुर को, कृतवर्मा द्वारका को, और अश्वत्थामा व्यास मुनि के आश्रम की तरफ चले गये।

स्त्रियों का विलाप

सूतजी बोले--हे राजन्! परिवार की स्त्रियों के साथ धृतराष्ट्र का विलाप करते हुये रण-भूमि की तरफ आना सुन कर महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और श्रीकृष्ण के साथ एक कोस आगे आकर धृतराष्ट्र से मिले। वहाँ युधिष्ठिर ने देखा कि कौरव कुल की बहुत सी स्त्रियाँ बहुत करुण विलाप कर रहीं हैं। उन सहस्रों स्त्रियों के मध्य राजा धृतराष्ट्र बैठे हैं। और वह सब अपने-अपने प्यारे पुत्रों, पौत्रों और दूसरे सम्बन्धियों का नाम लेकर छाती पीट कर रो रही हैं। रो रो कर वह बराबर युधिष्ठिर को कोस रही थीं। उसी समय युधिष्ठिर उनके मध्य जा पहुँचे। तब वह स्त्रियाँ कहने लगीं—हे युधिष्ठिर! अब तो तुम इन लोगों का वध करवा चुके हो! अभिमन्यु को भी तुमने मरवा डाला। अब कहो, आगे तुम्हारी क्या मर्जी है? सब कुल का नाश हो जाने पर अगर तुम्हें राज्य मिला तो क्या? क्या तुम अब भी इस राज्य को भोगना चाहते हो?

पांडव-धृतराष्ट्र-मिलन

यह सुन कर युधिष्ठिर कुछ उत्तर न दे सके। और नाक और सर नीचे करके राजा धृतराष्ट्र के पास चले धृतराष्ट्र को बिलखते देख कर युधिष्ठिर उनके पाँवों में गिर पड़े। धृतराष्ट्र ने उनकी इस विनम्रता पर उठा कर उन्हें गले से लगा लिया। परन्तु वह भीम को ऐसा प्यार न करना चाहते थे। क्योंकि भीमने ही उनके सब पुत्रों को मारा था। वह चाहते थे कि भीम यदि मिले तो वह उस को पीस डालें। परन्तु हस्तिनापुर से चलते समय जब उनके

मन में यह भाव उठा था तभी श्रीकृष्ण जी को मालूम हो गया था। उन्होंने उसी समय भीमसेन की तरह एक लोहे की मूर्ति बनवा कर रखली थी।

जब युधिष्ठिर धृतराष्ट्र से मिल कर चुके तो भीमसेन की बारी आई। परन्तु जब वह धृतराष्ट्र को प्रणाम करते हुये आगे बढ़े तो श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक लिया और उनकी जगह लोहे की मूर्ति को मिला दिया। धृतराष्ट्र ने दोनों हाथों से पकड़ कर उसे इतनी जोर से दबाया कि वह मूर्ति चूर चूर हो गई। अधिक ज़ोर लगाने के कारण से धृतराष्ट्र के मुँह से रक्त बह निकला और वह बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। स्वयं ही, हाय भीम पुत्र ! मैंने तुम्हें मार डाला, कह कर विलाप करने लगे।

श्रीकृष्ण ने कहा---आप न रोयें और न दुःखी हों। मैं आपके विचार को पहले ही समझ गया था। इसलिये लोहे का भीम बनवाकर रखा गया था। और उसी से आप को मिलाया गया था। नहीं तो आपके हाथों में पड़ कर कौन बच सकता था।

धृतराष्ट्र ने कहा—बहुत अच्छा। आपकी दया से मैंने भीम को पाया अब मुझे भीम पर कोई क्रोध नहीं है।

इसके बाद भीमसेन धृतराष्ट्र से मिले। भीमसेन के पश्चात् अर्जुन और और नकुल सहदेव भी मिले।

गान्धारी का श्राप

सूतजी कहते हैं---हे राजन्! अब श्रीकृष्ण समेत पांडव माता गांधारी से मिलने चले। निकट जाकर युधिष्ठिर उनके पाँवों पर गिर पड़े। गांधारी ने श्राप दिया, जिससे युधिष्ठिर के हाथों और पाँवों के नाखून काले पड़ गये। युधिष्ठिर की यह अवस्था देख कर गांधारी का क्रोध कम हो गया। तब पांडव अपनी माता कुन्ती से मिले कुन्ती। बहुत ज़ोर ज़ोर से रोने लगी।

इस पर पांडव भी रोने लगे। द्रोपदी को बड़ा दुःख हुआ सुभद्रा अभिमन्यु का और द्रोपदी अपने पुत्रों का नाम ले लेकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगीं। तब गांधारी ने सबको चुप कराया।

अब व्यास जी की आज्ञानुसार राजा धृतराष्ट्र पांडवों और श्रीकृष्ण जी को साथ लेकर रण-भूमिमें पहुँचे। वहाँ उन विधवा स्त्रियों ने देखा कि उनके मरे हुए भाई, पुत्र, पिता और पति पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। उनके मांसों को गीदड़ों, कौओं, चीलों तथा दूसरे पशुओं ने नोच डाला है। रणभूमि में रक्त ही रक्त है, सहस्रों शूरवीर और हाथी घोड़े घायल हो कर तड़प रहे हैं। गीध, चीलें, तथा गीदड़ उनके मांस को कुरेद कर भयानक आवाजें निकाल रहे हैं।

इस भयानक दृश्य को देख कर स्त्रियाँ अपनी छाती को पीटती हुई और विलाप करती हुईं उतर पड़ीं। वह दुःख से पीड़ित होकर बेसुध होगईं कुछ तो मरे हुए शरीरों पर गिर पड़ीं और कुछ जमीन पर गिर पड़ीं। वह समय उनके लिए बड़े दुःख का समय था।

श्रीकृष्ण जी को श्राप

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! उस भयानक दृश्य को तथा स्त्रियों के विलाप के भयानक स्वर को देख कर गांधारी ने श्रीकृष्ण को अपने निकट बुलाकर कहा—"हे कृष्ण! देखो इन विधवाओं के रुदन को देखो। मेरी सब बहुएँ विधवा होगई हैं। और अब यह अपने पुत्र, भाई, और पतियों के गुणों को याद करके बहुत विलाप कर रही हैं। रण-भूमि कैसी भयानक मालूम हो रही है। चारों ओर मांस, मज्जा और खून भरा हुआ है। हे कृष्ण! इस भयानक दृश्य को देख कर इन स्त्रियों का दुःख बढ़ रहा है। इसलिए तुम इन छोटी आयु वाली विधवाओं के दुःख को अनुभव करो।" यह

कहती हुई गांधारी अपने मरे हुए पुत्रों के निकट जाकर विलाप करने लगी। विलाप करते वह बेसुध हो गई। सुध आने पर वह क्रोध से श्रीकृष्ण जी से कहने लगी--हे कृष्ण तुम बड़े पराक्रमी और बलवान् थे। और तुम्हारे पास बड़ी सेना थी। यदि आप चाहते तो कौरवों और पांडवों को युद्ध से रोक सकते थे। तुमने दोनों में संधि न कराके इस इतनी बड़ी प्राणों की हानि को होने दिया और मेरे कुल का नाश कर दिया। इस लिए मैं तुम्हें श्राप देती हूँ कि आज से छत्तीस वर्ष बाद तुम अपने कुल का भी इसी तरह से नाश कर दोगे और स्वयं उजाड़, जनहीन जंगलों और वनों में घूमते हुए एक शिकारी के हाथ से मारे जाओगे। कौरव कुल के समान तुम्हारे परिवार की स्त्रियाँ भी इसी तरह से विलाप करेंगी।

श्रीकृष्ण ने गांधारी के इस श्राप को सर नीचा करके स्वीकार कर और कहा–हे देवी! यह तो मैं पहले से ही जानता हूँ कि मेरा कुल भी इसी प्रकार से नष्ट होगा पर अब तुम अपने दुःख को तो छोड़ दो। श्रीकृष्ण को श्राप देने के बाद गांधारी के मनका कुछ संतोष हुआ और तब वह चुप होगई।

अग्नि-संस्कार

सूतजी कहते हैं–हे राजन्! इसी समय राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से पूछा कि युद्ध में कितने लोग मारे गये हैं। युधिष्ठिर ने बताया--एक अरब छियासठ करोड़ और बीस हजार वीर मारे गये। धृतराष्ट्र ने कहा--अब इन सब का अन्तिम संस्कार भी तो करना होगा। तुम उसकी तैयारी करो।

युधिष्ठिर ने उन सब वीरों के अग्नि-संस्कार का बड़ा आयोजन किया। विदुर संजय सुशर्मा और धौम्य प्रमल तथा इन्द्रसेन इत्यादि सारथियों ने मिल कर चन्दन, अगर बत्ती, घृत तथा वस्त्र एकत्र किया। युद्ध में टूटे सब के रथ और वस्त्र इत्यादि भी चिताभूमि में एकत्र किये गये। इस के

पश्चात् सामवेद के मंत्रोच्चारण के साथ दुर्योधन तथा उसके भाई शल्य, जयद्रथ, अभिमन्यु, सुदर्शन, लक्ष्मण, राजा विराट, द्रुपद, शिखंडी तथा धृष्टद्युम्न, शकुनी, घटोत्कच तथा पुत्रों समेत कर्ण इत्यादि का अन्तिम संस्कार किया गया।

अग्निसंस्कार कर चुकने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर और दूसरे लोग तर्पण देने के लिए पुण्य भागीरथी गंगा में उतरे। कुलकी स्त्रियाँ विलाप करती हुई अपने पतियों, पुत्रों और दूसरे बंधुओं को पानी देने लगीं। उसी समय कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—"बेटा जिस महावीर कर्ण को तुम लोग राधा का पुत्र कहते थे, वह राधा का पुत्र नहीं, मेरा पुत्र था और तुम्हारा बड़ा भाई था। इसलिये तुम उसे भी तर्पण दो।"

कर्ण का यह परिचय पाकर युधिष्ठिर चौंक पड़े और बहुत दुःख से बोले—हे माता! तुमने इस बात को अब तक क्यों प्रकट नहीं किया। यदि हमको पहले से मालूम होता तो हमारी कुछ कठिनाइयां कम हो जातीं। कर्ण भाई के इस परिचय पर मुझको बड़ा दुःख हो रहा है। हाय! मैं नहीं जानता था कि वह मेरा भाई है।

———

शान्ति पर्व

युधिष्ठिर का मोह

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! कुरुक्षेत्र के मैदान में मारे गये वीरों का तर्पण संस्कार गंगाजी के तट पर कर चुकने के पश्चात् युधिष्ठिर ने एक मास तक सौनिक के रूप में नगर के बाहर रहने का विचार किया। महामुनि नारद, महर्षि व्यास, और ऋषि महात्मा, साधु और ब्राह्मण धर्मराज युधिष्ठिर से मिलने और उनको राज्य-धर्म तथा नीति-धर्म का उपदेश देने के लिये एकत्र हुए।

महाराज अपने परिवार के इतने प्राणों की हानि देखकर दुःख से तड़प उठे। विशेषरूप से कर्ण का दुःख उन्हें बहुत सता रहा था। तब उन का दुःख दूर करने के लिये महामुनि नारदजी ने कहा—हे महाराज! कर्ण का दुःख करना व्यर्थ है वह क्षत्रिय-धर्म का पालन करके वीर-गति को प्राप्त हुआ है। वह अपने प्रताप से अपना नाम सदा के लिए अमर कर गया है। इसीलिये तुम कर्ण के लिए चिंता न करो। दूसरे वीरों के लिये भी दुःख नहीं करना चाहिए। क्षत्रिय के लिए युद्ध-भूमि मे शरीर छोड़ने के अतिरिक्त और कौनसा अच्छा अवसर है। यह कहकर नारद जी चुप होगये। परन्तु युधिष्ठिर का दुःख कम न हुआ। वह भाई कर्ण की वीरता और यश का वर्णन करके विलाप करते थे। यह देखकर माता कुंती ने कहा—हे पुत्र! कर्ण का दुःख न करो।

परन्तु युधिष्ठिर ने कोई ध्यान नहीं दिया और कहा—हे माता! तुमने

मुझसे कर्ण के उत्पन्न होने का जिक्र क्यों नहीं किया ? तुमने मुझसे बात छुपाई। इसलिए अब मैं श्राप देता हूँ कि आज से स्त्रियों के पेट में कोई बात न छुप सकेगी।

इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे भाई ! यदि हम लोग आज तक भिक्षाटन ही करते होते तो निस्सन्देह इस कुलनाश के भयंकर पाप के भागी न होते। हम लोगों से अच्छे तो वह साधु और बैरागी हैं जो वनों में रहते हैं। कहावत है कि युद्ध में मर कर क्षत्रिय अमरलोक को जाते हैं। परन्तु तृष्णा में लिप्त जिन की मृत्यु हुई है, उनको स्वर्ग कैसे प्राप्त होगा ? उनको न तो इस लोक में शांति मिली और न आगे चलकर मिलेगी ? इसलिए भाई लोगो ! यह राज्य का सुख तुम भोगो। मैं सारे सुखों-लोभ, ममता और मोह को त्याग कर कहीं अकेला चला जाऊँगा।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! ऐसे वीरता-हीन शब्द आपको शोभा नहीं देते। जंगल में वास करना ब्राह्मणों और संन्यासियों का धर्म है। यह आप जैसे क्षत्रिय के लिए शोभा नहीं देता। राजा का दर-दर फिरना महा पाप है।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—मैं तुम्हारी बात न मानकर सारे सुखों को त्याग, साधु-कर्म का अनुसरण करूँगा। जंगलों में मृगछाला पहन कर अनाज न खाकर, अपनी सब इन्द्रियों को बस में करके आत्मा को परमात्मा में लीन करके ईश्वर के दर्शन करूँगा।

युधिष्ठिर के इन वचनों को सुनकर अब भीम ने भी कहा—महाराज ! आप की तुलना तो उस प्यासे मनुष्य से की जा सकती है जो जल पीने के लिये तालाब के निकट तो जाता है, किन्तु डर के मारे पानी नहीं पीता और लौट आता है। यदि आप को राज्य नहीं भोगना था तो पहले ही यह बात प्रकट कर देनी चाहिये थी। फिर यह खून-खराबा और कुल का नाश क्यों होता ?

हम सब भाइ मोक्ष के लिए भीख ही मांग लेते। परन्तु हे राजन्! क्षत्रिय-धर्म यह उपदेश नहीं देता। शास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय का कर्म राज्यपाट के कार्य में भाग लेना है। और इस धर्म में संन्यास धारण करना मना है। इस सम्बंध में अधिक दोष तो हमारा हीं है कि आपको बड़ा समझ कर हम लोग आप के पीछे चलते रहे। यद्यपि हम लोग बलशाली थे और जो चाहते कर सकते थे। परन्तु आपके आधीन रह कर कुछ न कर सके। यह संसार कर्म में बंधा है। और इस से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिए कर्म करना ही उत्तम है।

तब नकुल ने भी कहा--हे सम्राट्! यूप नाम के क्षेत्र में वेदियाँ बनी हैं जिससे मालूम होता है कि सभी देवता यज्ञ इत्यादि का कार्य करते हैं। इसलिए कर्म ही सर्वमान्य है। वेदों के अनुसार जिसको जो कर्म मिला हुआ है, उसका उसी को पालन करने से ही धर्म का पालन हो सकता है, कर्म के त्यागने पर नहीं। सच्चा त्यागी वही है जो यज्ञ-मय धर्म से धन एकत्र करके दान देता है। परन्तु जो गृहस्थ-आश्रम छोड़ कर वन में जाकर शरीर त्यागता है, वह तामसी त्यागी है। पंडितों ने ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास इन चारों आश्रमों की तुलना की तो गृहस्थ आश्रम को शेष तीनों से अधिक महान् पाया। ब्रह्मा ने गृहस्थ आश्रम के लिए ही सृष्टि रची किंतु जो गृहस्थ अपने धन के द्वारा यज्ञ इत्यादिक कर्म न करेगा, वह कठोर पाप का भागा बनेगा। इसलिए हे राजन्! संसार के त्याग का रास्ता क्षत्रिय के लिये ठीक नहीं है। इससे मुक्ति नहीं मिल सकती। मानसिक त्याग और मेरे तेरे का भेद भाव टूट जाने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है। जब तक यह ज्ञान न हो स्मृतियों के बनाये मार्ग पर चलना ही धर्म है। हे राजन्! वन में मोक्ष की तलाश में भटकने वाले साधुओं का भी मेरा तेरा नहीं छूटा और यदि उनकी प्रवृत्ति भी मोह और माया की ओर है तो उन्हें भी मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

यह सब सुन कर भी जब राजा युधिष्ठिर कुछ न बोले तब द्रौपदी ने कहा—महाराज ! आप के यह सब भाई दुःखी होकर विलाप कर रहे हैं, आप इनको क्यों नहीं प्रसन्न करते । आपने अद्वैत वन में कहा था कि हम लोग युद्ध में दुर्योधन को मार कर राज का सुख भोगेंगे। आप ही ने इन लोगों को युद्ध के लिये उकसाया। और आप ही उन बातों को भूलकर इनको निराश कर रहे हैं। पृथ्वी का भोग क्षत्रिय का धर्म है और वह बिना राज भोगने के हो नहीं सकता। बिना राज्यपाट का प्रबंध संभाले प्रजा दुःखी रहती है और साधुओं को कष्ट होता है। प्राणि-मात्र का कल्याण करना ब्राह्मण का धर्म है। राजा का नहीं। दुष्टों को दंड देना और सज्जनों की रक्षा करना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है। आपने ब्राह्मण कर्म में या दान में राज्य प्राप्त नहीं किया बल्कि अपने क्षत्रिय धर्म के अनुसार द्रोण इत्यादि वीरों जैसे रक्षकों के रहते हुये भी कौरवों पर विजय प्राप्त करके पाया ह। इसलिए इस राज्य को संभालना आपका कर्त्तव्य है।

वेद व्यास का उपदेश

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"तुम लोग धीरजहीन होकर प्रमाद, ईर्ष्या इत्यादि पापों के आधीन होकर राज्य चाहते हो। और इसीलिये पंडिताई को बात करते हो। परन्तु जिसे वैराग्य, शांति, चित्त की एकाग्रता, नम्रता, इत्यादि गुण प्राप्त हों उसे राज्य की क्या आवश्यकता है? तुम लोग यह समझते हो कि राज्य प्राप्त करने के बाद वैराग्य, और त्याग अपने आप प्राप्त हो जायेगा, परन्तु यह गलत है। भोग भोगने से इच्छायें नहीं मिटतीं बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही रहती हैं सारी पृथ्वी पर राज्य करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा वह संन्यासी प्रसन्न है जो पत्थर और स्वर्ण को एक समान समझता है। इसलिये मोह-माया को तोड़े बिना दुःखों का नाश नहीं हो सकता। इसलिये मुझे राज्य को त्यागने का जरा भी दुःख नहीं। मुक्ति

के जानकारों का कहना है कि यज्ञ इत्यादि की कथायें व्यर्थ हैं। और इन से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। तुम लोग शास्त्रार्थ की कला में पारंगत हो—इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु धर्म बहुत गहन समस्या है। इसमें तुम लोगों को हस्तक्षेप न करना चाहिये।"

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—धर्मराज ! क्षत्रिय का युद्धभूमि में मरना वैसा ही महान् और मुक्ति प्रदान करने वाला है जैसा ब्राह्मण भी का सन्यास ग्रहण के पश्चात शरीर को त्यागना। हे महाराज ! यदि ब्राह्मण भी क्षत्रिय का धर्म स्वीकार करे तो उस का जीवन भी सफल होता है। क्षत्रिय का धर्म संन्यास नहीं है। क्षत्रिय का धर्म कर्मरत रहना है। आपको इस राज्य को धर्मानुसार चलाना ही चाहिये। और इससे उलटा चलना क्षत्रिय के लिये अधर्म होगा।

अर्जुन की इन बातों का महाराज युधिष्ठिर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

तब महामुनि व्यास बोले—हे राजन् ! अर्जुन का कहना ठीक है और क्षत्रिय-धर्म के अनुसार है। आप का गृहस्थ आश्रम को छोड़ कर वनगमन करना अधर्म है। पशु-पक्षी और दूसरे जीव गृहस्थ से ही पलते हैं। क्योंकि दूसरे सभी आश्रमों से गृहस्थ आश्रम दुःखदायक और कठोर है, इसलिये इसे सब आश्रमों सेउत्तम माना गया है"।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—हे मुनिवर ! पुत्र; पौत्रों और दूसरे बंधुओं की स्त्रियों का विलाप सुन सुनकर मेरे मन की शांति नष्ट हो गई है। वह विधवायें अब किसी भी यज्ञ के आयोजन से अपने वीर पतियों को दोबारा प्राप्त नहीं कर सकतीं। इसलिये हे महामुनि ! पृथ्वी का राज्य करने के लिये मुझे कोई विवश नहीं कर सकता। क्योंकि इससे मेरे मन को प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती।

व्यास जी कहा—हे युधिष्ठिर! यह ज्ञान तुम्हें कहाँ से मिला है? संयोग और वियाग ईश्वर के आधीन हैं। उन स्त्रियों को अपने पतियों से बिछुड़ना ही था। कोई मनुष्य किसी को पाने का चाहे कितना ही यत्न क्यों न करे, परन्तु उस समय तक नहीं पा सकता, जब तक कि उस को पाने का समय ईश्वर के आदेश से न आ जावे। समय आने पर कोई भी मनुष्य बिना प्रयास किये ही उसे प्राप्त कर सकता है। सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य समय के अनुसार ही होता है। हे राजन्! राजा सेनजित ने कहा है कि स्त्री पुत्र और माता पिता का मरना, धन का नाश और यश और बुराई समय पाकर ही हुआ करती हैं। फिर उनके लिये तुम व्यर्थ दुख और शोक क्यों करते हो? यह शरीर और यह धरती अपनी नहीं है। और न किसी दूसरे का है। इसलिये इस पृथ्वी और शरीर के जीवित रहने या नाश होने पर शोक नहीं करना चाहिये। वे तो मूर्ख हैं जो इसके लिए हाय हाय करते हैं। फिर इस संसार में दुःख के अतिरिक्त और है ही क्या? इच्छा ही दुःख का कारण है। इसलिये यदि सुख ही सुख चाहते हो तो दुःख और सुख के भेद भाव को मिटा देना चाहिये। और कामना रहित हो जाना चाहिये। हे राजन्! संसार में वह ही सुख भोगते हैं जो पूर्ण आत्मज्ञानी हैं अथवा भारी मूर्ख हैं। परन्तु जो दोनों के मध्य उलझे हुये हैं, वह सदा दुःख ही भोगते हैं। जिन्होंने संसार का केवल दुःखमय ही जान लिया है वह चाहे जिस अवस्था में रहें, सदा सुख ही अनुभव करते हैं। इसलिये वीर और ज्ञानी मनुष्यों को न तो दुःख में दुःखी और न सुख में सुखी होना चाहिये। हे युधिष्ठिर अहंकार मे न पड़ कर धर्म के अनुसार तथा न्याय से राज्या करते हुये यज्ञ इत्यादि करके कर्म करना ही तुम्हारा संन्यास है।

क्षत्रिय-धर्म का उपदेश

सूतजी कहते हैं—'हे राजन्! इस ज्ञान पूर्ण बात-चीत से युधिष्ठर जब

कर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त न हुए तो महर्षि वेदव्यास जी फिर बोले—"हे धर्मराज युधिष्ठिर ! वेद में ब्राह्मणों का कर्त्तव्य तप और क्षत्रियों का कर्त्तव्य रक्षा कहा गया है। इसलिए तुम लड़ाई से विजय किये गए राज्य को धर्म के अनुसार ग्रहण करो।"

युधिष्ठिर ने कहा—"हे ब्राह्मण ! राज्य के लोभ में पड़ कर कितने ही पूजनीय बुजुर्गों और गुरुओं का नाश किया गया है। इसको याद करके शरीर दुःख से तड़प उठता है।"

वेदव्यास ने कहा—हे राजन् ! तुम अपने को किसी कार्य के करने वाला समझते हो तो यह अज्ञान है। इस सृष्टि का संचालन ईश्वर के द्वारा होता है। मनुष्य तो एक कठपुतली की तरह कर्मों को करता है। फिर हे राजन् ! तुम्हें अपने धर्म के लिए भी दुःख नहीं करना चाहिये। जो राजा और महाराजा युद्धभूमि में मारे गये हैं, उनके मारने वाले तुम नहीं हो। तुम लोग तो केवल नाम के रूप में बीच में खड़े किये गये थे। यह हत्याओं का नाटक तो काल ने ही किया है। क्योंकि उसके अतिरिक्त किसी और में मारने की शक्ति नहीं है। भला तुम ही सोचो कि कौरवों ने तुम्हें क्या क्या कष्ट नहीं दिये। तुम उस समय तक लड़ाई के लिए तैयार न हुये, जब तक उन्हें काल ने नहीं घेरा। हे राजन् ! कितने ही कार्य जो बाहर से बुरे मालूम होते हैं, वास्तव में धर्म के अनुसार होते हैं इसलिये तुमको धर्म की गहना में न बैठ कर क्षत्रियधर्म के द्वारा प्राप्त किये हुए राज्य को भोगना चाहिये। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।

राज्य-धर्म

सूतजी कहते हैं—हे राजन् ! व्यास जी के इस कथन को सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—"हे ब्राह्मण ! आपके धर्म-व्याख्यान को सुन कर मुझे बहुत

संतोष मिला है। परन्तु मैं आप से राज्य-धर्म और चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन सुनना चाहता हूँ।" वेद व्यास ने कहा—"हे राजन्! पहले तुम हस्तिनापुर चलो। फिर बाण-शय्या पर पड़े हुये त्रिकालदर्शी राजर्षि भीष्म से इस ज्ञान को प्राप्त करो।

इस पर श्रीकृष्ण जी ने कहा—"हे युधिष्ठिर! महर्षि वेदव्यास जी जो कहते हैं, वह ठीक है। उठो और राज्य को स्वीकार करके ब्राह्मणों, मित्रों और प्रजा का कल्याण करो।

युधिष्ठिर का राज्य-तिलक

सूतजी कहते हैं—हे राजन्। जब श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर से यही सब करने को कहा तो युधिष्ठिर मान गये। सर्वप्रथम उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा करके उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। फिर सोलह बैलों से जुते हुये एक बहुत ही सुन्दर रथ पर सवार होकर अपने भाइयों समेत हस्तिनापुर की तरफ चल दिये। उनके पीछे श्रीकृष्ण गांधारी तथा कुंती इत्यादि सब स्त्रियाँ और अनेक हाथी-घोड़े एक समूह की सूरत में हस्तिनापुर की तरफ चले।

इधर जब हस्तिनापुर वालों को महाराजा युधिष्ठिर के आने का समाचार मिला तो नगर में स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। द्वार-द्वार पर कलश रखे गये। सड़कों के दरवाजे सजाये गये। धूप, चन्दन तथा दूसरी ऐसी वस्तुओं से वायु को सुगंधमय बनाया गया। ब्राह्मणों और सौतिकों ने युधिष्ठिर की जय-जयकार की। जिस समय पांडवों ने नगर में प्रवेश किया उस समय उनके स्वागत हेतु लाखों जनों की भीड़ थी। ब्राह्मणों ने विधिवत पांडवों की सवारी उतारी, वेदमंत्रों की आवाज से आकाश गूंज उठा।

परन्तु उसी समय एक दुर्घटना घटित हो गई। एक नीच जाति का

व्यक्ति ब्राह्मण का रूप धारण कर के पांडवों के बराबर खड़ा हो गया था। इस बात को ब्राह्मण सहन नहीं कर सके और उसे मार डाला गया।

स्वागत के बाद राजा युधिष्ठिर को तिलक लगाया गया। श्रीकृष्ण भीम, अर्जुन, और सात्यकि इत्यादि के सुन्दर आसनों पर विराजमान हो चुकने पर महाराज युधिष्ठिर अग्नि के समान दिखाई देने वाले सोने के सिंहासन पर बैठे। ब्राह्मणों ने विधिपूर्वक वेदमंत्रों से राजतिलक की रीति पूरी की। महाराज युधिष्ठिर ने अपने मित्रों और सहायकों को धन्यवाद देने के उपरान्त हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना की और कहा—हे जनार्दन ! यह राज्य हमलोगों के परिश्रम का फल नहीं है। यह राज्य आप का परिश्रम, कूटनीति और बुद्धिमत्ता का सुपरिणाम है।

महात्मा भीष्म का उपदेश

सूतजी कहते हैं—हे राजन् ! राज्य-तिलक की रीति सम्पूर्ण होजाने के पश्चात् राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों और भगवान् श्रीकृष्ण तथा सात्यकि को साथ लेकर राजधर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गंगातट पर बाणों की शय्या पर पड़े हुए महात्मा भीष्म के निकट पहुँचे।

चरण-वन्दना के बाद श्रीकृष्ण ने पांडवों के आने का कारण कहा, जिसे सुन कर भीष्म ने आँखें बन्द करलीं। फिर कुछ समय पश्चात् उन्होंने कहा—"हे जनार्दन ! बाणों के आक्रमण से मेरा शरीर छलनी हो गया है। शरीर के अन्दर और बाहर बहुत पीड़ा हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि जान निकलने ही वाली है। मेरा ज्ञानदीप बुझ गया है। और चित्त बहुत ही दुःखी है। अन्दर अंधेरा है, जिसके कारण मे कुछ भी दिखाई नहीं देता। ऐसी अवस्था में हे जनार्दन ! मैं ज्ञान का उपदेश कैसे कर सकता हूँ।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"हे गंगापुत्र ! जिस कष्ट और पीड़ा की बात तुम

कह रहे हो, उस पीड़ा और कष्ट से मैं भली भाँति परिचित हूँ। परन्तु मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जिससे कष्ट और पीड़ा तथा भूख-प्यास के दुःख से तुम मुक्त हो जाओगे। तुम्हें निर्मल ज्ञान ज्योति दिखाई देगी। और चित भी शांत हो जायेगी।"

यह बातें हो ही रहीं थीं कि संध्या घिर आई। जिससे दूसरे रास्ते ऋषि महर्षि और पांडव भी महात्मा भीष्म के पास से उस दिन वापिस चले आये। और फिर दूसरे दिन युधिष्ठिर सब को साथ लेकर दोबारा भीष्म की सेवा में उपस्थित हुए। तब महात्मा भीष्म ने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से मेरा मन बलवान् और वाणी शुद्ध हो गई है। मुझे अब ज्ञान की ज्योति दिखाई दे रही है। इसलिये हे युधिष्ठिर! तुम मुझ से जो पूछना हो, पूछो! मैं सत्य-ज्ञान का उपदेश करूँगा!"

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर कहा—हे पितामह! प्रजापालन का भार मुझे बहुत ही भारी और असहनीय मालूम हो रहा है। इसलिए आप कृपा कर के मुझे राजधर्म का उपदेश देवें।

श्री भीष्म जी ने उत्तर दिया—हे युधिष्ठिर! राजा का धर्म प्रजा को सुख पहुँचाना और ब्राह्मणों तथा दूसरे देवताओं की सेवा करना है। राजा को परमार्थ और ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये। राजा को सत्यवादी, धीर, शीलवान् सरल, कोमलचित्त, धर्म पर दृढ़, जितेन्द्रिय, उदार और वीर होना चाहिये।

इसके पश्चात ज्ञानी भीष्म ने राजनीति—राजा को धर्म-प्रिय अथवा प्रजाप्रिय होने का ढंग, प्रजापालन, राजा का कर्तव्य, राष्ट्र और राष्ट्र-नीति, रक्षण-नीति, अधिकारियों और राज-कर्मचारियों को नियुक्त करना, मंत्रिमंडल की रचना, राजधानी निर्माण, राजस्व-नीति, व्यापार-नीति, अप-धर्म, युद्ध-नीति, और दूसरी नीतियों का विस्तार से वर्णन करके समझाते हुये कहा—

हे राजन् ! जो राजा सच्चाई और धर्म पर चलने वाला होगा वह अन्त में विजयी और लोकप्रिय हो कर बड़ा यश प्राप्त करेगा ।

राजा युधिष्ठिर ने कहा--हे पितामह ! सत्य और असत्य क्या हैं और धर्मानुसार कैसे चला जा सकता है ?

भीष्म बोले--हे धर्मराज ! सत्य और असत्य की गुत्थी सुलझाना बहुत कठिन है। और बहुत दिनों के अभ्यास के बाद ही इसके अन्तर की पहचान की जा सकती है। यह संसार सत्य और असत्य से फैला हुआ है। जहाँ तक संभव हो, सत्य का पालन करना चाहिये। परन्तु जहाँ सत्य और असत्य साफ साफ दिखाई न दें, वहाँ अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार कर्म करने में कोई अपराध नहीं है।

हे युधिष्ठिर ! जहाँ असत्य सत्य के समान हो और सत्य असत्य के समान हो, वहाँ सत्य बोलने की कोई अवश्यकता नहीं। वहाँ तो झूट ही बोलना उचित है। परन्तु जो स्थान सत्य बोलने का है, वहाँ असत्य कभी न कहना चाहिये। बस, इस बात को दृष्टिगत रख कर ही सत्य और असत्य कहना चाहिये। यूँ तो यह प्रश्न बड़े ही महत्त्व का और बड़ा गूढ़ है। इसको समझना ही बहुत कठिन है। फिर भी यह जानना बहुत आवश्यक है कि धर्म वही है जो प्राणिमात्र की रक्षा करे। धर्म की उत्पत्ति प्रजा की रक्षा के लिए की गई है, यह वेदों का मत है।

इसके पश्चात् आपद्धर्म से सम्बंध रखने वाले युधिष्ठिर के अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुए भीष्म पितामह ने कहा--हे युधिष्ठिर ! तू बड़ा ज्ञानी और गंभीर प्रकृति का है। अब तू मुझ से मोक्ष धर्म के भी कुछ प्रश्न कर ले। क्योंकि ऐसा समय फिर न मिलेगा।

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कर कहा--हे महाज्ञानी ! अब मैं आप से इस

बारे में पूछने ही वाला था। परन्तु यह मेरे सौभाग्य का लक्षण है कि आपने स्वयं ही इसे याद करा दिया। इसलिए हे पितामह ! अब आप कृपा करके उत्तम धर्मों के पालन करने का वर्णन कीजिये।

भीष्म जी ने कहा–हे युधिष्ठिर ! इसी शरीर से धर्म होता है। परन्तु धर्म के मार्ग अनेक हैं। इनमें से चाहे किसी मार्ग से धर्म किया जाये सभी सफल होते हैं। और इनका सम्बंध मोक्ष से है। इसमें जो कामना सहित धर्म इस लोक में किया जाता है, प्रायः वह इस जन्ममें फल नहीं देता। परन्तु इसका फल दूसरे जन्म में अवश्य प्राप्त होता है। परन्तु जो धर्म ज्ञान से इस लोक में किया जाता है, उसका फल इसी शरीर में प्राप्त होता है अर्थात् यह कि कामना युक्त धर्म का फल शीघ्र नहीं मिलता। और ज्ञान धर्म का फल शीघ्र मिलने वाला होता है। इसलिए मनुष्य कामनायुक्त धर्म न करे। बल्कि ज्ञानयुक्त करे। यूँ तो किया हुआ कर्म कभी नष्ट नहीं होता, परन्तु ऐसे कर्म से पहले विचार से काम लेना चाहिये। पुत्र इत्यादि की इच्छा, स्वर्ग की इच्छा, वेदान्त की इच्छा–यह तीन प्रकार की इच्छा हैं। इन तीनों इच्छाओं में मनुष्य जैसी कामना करता है, उसीके अनुसार उसे फल प्राप्त होता है।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा–'हे पितामह ! आपका कहना सही है। परन्तु आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि माता, पिता, पुत्र और धन तथा स्त्री के नष्ट होने पर दुःखी मनुष्य को किस प्रकार शांति मिल सकती है।"

भीष्म जी ने कहा–"हे युधिष्ठिर ! धन, स्त्री और पुत्र इत्यादि के नष्ट हो जाने के कारण से सभी जीव दुःखी होते हैं। किसी न किसी तरह का दुःख सभी को है। परन्तु यह जान लो–यह शरीर भी मेरा नहीं। सब

लोग इसके सम्मिलित अधिकारी हैं। ऐसा सोचने से दुःख नहीं होता। जिस तरह नदी में दो लकड़ियाँ एक साथ ही बहा करती हैं और फि नदी के बहाव के जोर से अलग अलग हो जाती हैं वैसे ही धर्म नदी के वेग से पुत्र, स्त्री इत्यादि मिल जाते हैं और कर्म के वेग से अलग हो जाते हैं। इस में दुःख करने का क्या काम है ? दुःख के पश्चात सुख और सुख के पश्चात दुःख आता है। इस समय यदि दुःख है तो फिर सुख अवश्य आवेगा। न कोई सदा दुःखी रहता है और कोई सदा सुखी ही। प्रेमवश होकर लोग पुत्र इत्यादि के दुःख सुखको सामने रखकर सुखी-दुःखी होते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। प्रारब्ध के अनुसार मनुष्य को दुःख सुख होता रहता है। अपने कर्म से दुःख होता और अपने ही कर्म से सुख। इसलिए यदि विचार किया जाये तो मनुष्य को इन दुःखों से अवश्य शांति मिलेगी।

इसके अतिरिक्त दान करने से भी आत्मा को बहुत से सुख मिलते हैं। जो किसी भूखे को भोजन देता है उसको बड़ा पुण्य मिलता है। जो लोग मैदान में भूमि पर पड़े रहते हैं और उन्हें जो कोई रुपया पैसा और कपड़े तथा भोजन इत्यादि देता है उसका भाग्य बढ़ता है। और जो मांस नहीं खाता उसे पुत्र पौत्रों का सुख मिलता है। और जो जल में वास करता है तथा सदा एकांत में रहता है वह परम पद को प्राप्त करता है। इसी प्रकार पद, आसन, दीप, अन्न और गृह इत्यादि का दान पंच दक्षिणा यज्ञ है।

कह कर भीष्म जी चुप हो गये। उनके इन उपदेशों से युधिष्ठिर का चित्त शांत होगया था और उसके मन में शांति आ बिराजी थी।

———

अनुशासन पर्व

कर्म की महत्ता

सूतजी कहते हैं--हे राजन् ! भीष्म पितामह की पवित्र वाणी के द्वारा राजधर्म, आपद्-धर्म और मोक्षधर्म के अनेक उपदेशों को सुन कर युधिष्ठिर को कुछ शांति प्राप्त हुई। परन्तु महाभारत के उस भयंकर हत्याकांड से वह इतने प्रभावित हुये थे कि उन्हें पूरी शांति न मिल सकी। तब वह खुश होकर हाथ जोड़ कर भीष्मजी से बोले-"हे पूज्य पितामह ! आपने अनेक शांति देने वाले विचारों को मुझे सुनाया। परन्तु इन सब उपदेशों से भी मुझे शांति नहीं मिल रही है। इस का एक बड़ा कारण यह भी है कि आप मेरे ही बाणों से घायल होकर बाण-शय्या पर पड़े हुये हैं। हे महाज्ञानी ! आपको बाणों से छलनी हुआ देख कर मेरा दिल बहुत व्याकुल हो रहा है। हाय ! मैं कैसा कृतघ्न हूँ कि मेरे लिये शिखंडी को आगे करके अर्जुन ने आपको मार गिराया। और अब मैं आपके शरीर से खून बहता हुआ देख रहा हूं अभी ज्ञात नहीं कि जिस क्रोध और स्वार्थ को दृष्टिगत करके मैंने और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने यह घोर पाप किया है, उसके नाते हम आगे चल कर क्या करेंगे। परन्तु धृतराष्ट्र के पुत्र तो अच्छे रहे कि युद्ध में प्राण देकर स्वर्ग चले गये और इस भविष्य के दुःखों को देखने के लिए वर्तमान न रहे। वह रहते भी तो कैसा ! वह थे पुण्यात्मा ! परन्तु मैं कैसा पापी हूँ जो इस दुःख को बैठा देख रहा हूँ। दुर्योधन बड़ा अभिमानी और दुष्ट था फिर भी वह अपने भाईयों समेत मर कर स्वर्ग को चला गया। क्षत्रिय के

लिए युद्ध में प्राण गँवा देना ही उत्तम है। दुर्योधन तो दोनों प्रकार से अच्छा रहा। एक तो उसने अपने क्षात्र-धर्म का पालन किया, दूसरे अब आपको इस अवस्था में देखने के लिए भी न रह गया। परन्तु मैं कैसा व्यक्ति हूँ कि आपको बाणों से छलनी करके दुःखी हो रहा हूँ। इसलिए मुझसे बढ़ कर इस संसार में पापी कौन है अच्छा तो तब होता, यदि मैं अपने भाइयों सहित मारा जाता। जिससे आपको बाण-शय्या पर पड़े हुये न देखता। यदि आप हम पर दयालु हैं तो अब जैसे परलोक में हम लोग राग द्वेष से रहित रहें, वही शिक्षा दीजिए।

यह सुन कर भीष्मपितामह ने कहा—हे युधिष्ठिर! यह तुम कैसे जानते हो कि यह सम्पूर्ण काल तुम्हारे आधीन रहा है और है? क्योंकि यह तो ईश्वर के आधीन की बात है। जो कि इन्द्रियों द्वारा जाना ही नहीं जा सकता। यह बड़ा सूक्ष्म विषय है। परन्तु यदि इस बारे में तुम्हें सन्देह है तो मैं तुम्हें एक प्राचीन वृत्तांत सुनाता हूँ।

हे युधिष्ठिर! एक ब्राह्मणी, जिसका नाम गौतमी था, के पुत्र को किसी विषैले सर्प ने काट लिया। उसके काटने से उस ब्राह्मणी का पुत्र तत्काल मर गया। पुत्र को काट सर्प भागा जा रहा था कि अर्जुनक नामक एक शिकारी ने पहुँच कर उसे पकड़ लिया और बिना कुछ कहे सुने वह उसे लिये हुए बुढ़िया के पास पहुँचा। बुढ़िया पुत्र के शोक में विह्वल हो रही थी। अर्जुनक ने वहाँ पहुँच कर उससे कहा—माता जी! लीजिये! आपके पुत्र को काटने वाले इस शत्रु को पकड़ लाया हूँ। अब आप दुःखी न हों और अपने पुत्रके इस हत्यारे को मार कर प्रतिशोध चुका लीजिये। यदि आप न मार सकें तो मुझे आदेश दीजिये ताकि मैं इसका काम समाप्त कर दूँ।"

बुढ़िया ने कहा—हे अर्जुनक! तू यह क्या कह रहा है? इसको मारने

से क्या प्राप्त होगा ? अंततः पिछले कर्मों के अनुसार फल तो भोगना ही होगा। क्या हमें ही यह दुःख पहुँचा है ? नहीं, इस संसार में कितने ही प्राणी दुःख के सागर में डूब रहे हैं। इसमें कुछ डूब रहे हैं कुछ तैर रहे हैं। परन्तु विचार करके देखना चाहिये कि डूबने वाले कौन हैं और तैरने वाले कौन हैं ? धर्मात्मा व्यक्ति इस दुःख रूपी सागर को नौका-रूप होकर पार कर लेते हैं। और पापी पुरान लोहे के समान भारी होकर डूब जाते हैं।

इसलिये यह ज्ञान होते हुए भी मैं कैसे कहूँ कि तुम इसे मार डालो। क्योंकि पिछले कर्मों का फल तो अवश्य भोगना ही है। मेरा पुत्र अपने कर्मों के अनुसार फल भोग कर चला गया। अब इस जीव को मार कर मैं नरक में क्यों जाऊँ ?"

शिकारी ने कहा—माता जी ! मैं जान रहा हूँ कि पाप के बोझ से दबे प्राणी दुःख भोगा करते हैं। परन्तु आप इस नीच साँप के सम्बंध में जैसा उतम विचार प्रगट कर रही हैं, मैं उसे मानने को तैयार नहीं हूँ। आप के पुत्र को इसने काट कर मार डाला है। इसलिये इसे अवश्य मारूँगा। आप इस सर्प की रक्षा के गूढ़ विचारों में न जाइये और इसको मार कर पुत्र के शोक से मुक्त होइये।"

बुढ़िया ने कहा—बेटा ! मुझे पुत्र की मृत्यु का कोई अधिक दुःख नहीं है। मैं जान रही हूँ कि उसने इतने ही दिनों तक जीवित रहना था। फिर इस जीवित साँप को मारने के लिए मैं तुम से कैसे कहूँ ? तू दया कर के इसे छोड़ दे।"

शिकारी ने कहा—यह आप क्या कह रही हैं ? भला शत्रु पर भी कभी दया की जाती है ! शत्रु को तो मार ही डालना चाहिए। छोड़ देने से क्या लाभ ?"

बुढ़िया ने उत्तर दिया—यदि छोड़ देने से कोई लाभ नहीं तो फिर पकड़ रखने या मार देने से भी कोई लाभ नहीं। और फिर मैं इस पर दया क्यों न करूँ।

व्याध ने कहा--यदि इसको मार डाला जाय तो बहुत से प्राणियों की रक्षा हो जायेगी। नहीं तो यह जिसको काटेगा वह मर जायेगा? फिर मैं इस जालिम को क्यों न मार डालूँ?

बुढ़िया ने कहा--अच्छा, यह तो बताओ कि यदि मैं इसे मार डालूँ तो क्या मेरा मरा हुआ पुत्र जीवित हो जायेगा? तुम इसका उत्तर यही दोगे कि नहीं। इसलिए जब मेरा पुत्र जीवित नहीं होगा तो फिर तुम इसको जीवित ही क्यों न छोड़ दो।

शिकारी ने कहा--"आपका पुत्र तो जीवित नहीं हो सकेगा, परन्तु यह क्या कम है कि तुम शत्रु को मार कर उसी प्रकार प्रसन्न होगी, जिस प्रकार वृत्रासुर को मार कर इन्द्र सुखी हुए थे।"

बुढ़िया ने कहा--"नहीं, मुझे ऐसे सुख की इच्छा नहीं है।"

भीष्म जी ने कहा--हे युधिष्ठिर! जब इस प्रकार शिकारी ने गौतमी को बार बार उस साँप को मारने के लिये कहा और उसने इन्कार किया, तब वह साँप स्वयं बोला कि ऐ शिकारी! तू बड़ा मूर्ख है। तू मुझे मारने पर तुला है। पर तू नहीं जानता कि इस बालक को मारने में मैं दोषी नहीं हूँ और न ही इस बालक का भी कुछ दोष है। इसको मृत्यु ने आ घेरा और मुझसे कहा कि काटो। मैं इसकी मृत्यु की प्रेरणा के आधीन हूँ। इसलिये इसमें न तो मेरा दोष है और न इस बालक का। यदि दोष है तो मृत्यु का।"

शिकारी ने कहा--नहीं! मृत्यु का क्या दोष है? तू तो अपने कर्मों में स्वतंत्र था। फिर तू इसकी मृत्यु की प्रेरणा में क्यों आया"?

सर्प ने कहा--"मृत्यु का और मेरा ऐसा ही सम्बंध है, जैसा कुम्हार का चाक के डंडे से सम्बंध होता है।"

शिकारी ने कहा-"तब तो निर्णय हो हो चुका। इसीसे प्रगट है कि तू अपना अपराध स्वयं बता रहा है। इसलिये अब तो मैं तुझे अवश्य मारूँगा।"

सर्प ने कहा-वह कैसे ? मेरा तात्पर्य तुम समझे नहीं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार डंडा और चाक कुम्हार के आधीन है और वर्तनों के बनने और बिगड़ने का उत्तरदायित्व कुम्हार पर है, उसी प्रकार मैं मृत्यु के आधीन हूँ। इस बालक की मौत का उत्तरदायित्व मृत्यु पर है। मैं इसका बिल्कुल दोषी नहीं हूँ।

शिकारी ने कहा-"अच्छा तेरे सिद्धान्तों के अनुसार न सही ! पर अपने सिद्धान्तों के अनुसार मैं तो यह समझता हूँ कि इस बालक की मृत्यु का कारण तू है, इसलिए मैं तो तुझे मारूँगा।"

साँप न कहा-"हे व्याध! तू भूल कर रहा है। क्योंकि कोई कार्य बिना कारण के नहीं होता। इस बारे में मैं तुम्हें साधारण रीति समझा रहा हूँ कि जिस प्रकार शस्त्रों द्वारा कितने प्राणी मार दिये जाते हैं और शस्त्र को दोष नहीं दिया जाता बल्कि उसके प्रयोग करने वाले को दोषी ठहराया जाता है, उसी प्रकार से इस बालक की मृत्यु म भी इसकी मृत्यु का कारण समझ।"

शिकारी ने कहा-"नहीं। मैं तेरी इस बात से सहमत नहीं हूँ। यह तो बात साफ नहीं है। तू निस्संदेह मेरे हाथ से मारे जाने योग्य है।"

साप ने कहा-"अब मैं तुम्हें किस प्रकार से समझाऊँ, जब कि तुम समझना ही नहीं चाहते।"

भीष्म जी ने कहा-हे युधिष्ठिर ! मृत्यु द्वारा प्रेरित उस सर्प और शिकारी में यह बातें हो ही रहीं थीं कि इतने में मृत्यु देवता ने पहुँच कर साँप से कहा-"हे सर्प ! इस शिकारी से कहकर तू मुझे क्यों दोषी मानता है ? मैंने तो तुम्हें काल-चक्र की प्रेरणा से इस ब्राह्मणी के पुत्र को काटने के लिए

उकसाया था। इसलिए न तो मेरा दोष है न तेरा। हे सर्प! जिस प्रकार वायु बालों को जिस ओर चाहती है खींच ले जाती है उसी प्रकार हमको भी काल जिस ओर चाहता है, बुला लेता है।

प्राणी में सात्विक, राजसी, और तामसी, तीन प्रकार के भाव रहते हैं। उन्हीं के अनुसार जीवमात्र अपने-अपने कर्मों में लगे रहते हैं। वह सब काल के आधीन हैं। यह संसार भी काल के आधीन है। हे सर्प! सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, विश्वादित्य, नदी, समुद्र इत्यादि को काल ही उत्पन्न और नाश करता है। हे सर्प! इस बात को जान बूझकर भी तू मुझे क्यों दोषी ठहराता है। यदि मैं दोषी हूँ तो तू भी दोषी है।"

"हे युधिष्ठिर! जब मृत्यु देवता ने ऐसा कहा, तब सर्प ने कहा—"हे मृत्यु देव! मैं आप को अपराधी नहीं बता रहा। मैंने तो इस शिकारी से केवल इतना ही कहा है कि मुझे मृत्यु ने भेजा है। चाहे आप में दोष हो या काल में। मुझे इससे क्या मतलब? मैं इसका निर्णय करने वाला कौन? मैं तो एक मात्र अपने आपको ही दोष से बचाना चाहता हूँ। यदि आप आगये हैं तो अच्छा हुआ। अब कृपा करके मुझे इस दोष से मुक्ति दिलाइये।"

भीष्म जीने कहा—"हे युधिष्ठिर! मौत से ऐसा कह कर सर्प ने शिकारी से कहा—हे शिकारी! लो अब! मेरे सौभाग्य से मृत्यु देवता भी आ पहुंचे। इसलिये तुम इनसे निपट लो और कृपा करके मुझे स्वतंत्र कर दो।"

शिकारी ने कहा—"मैंने तेरी और मृत्यु देव की बातों को सुन लिया है। परन्तु इससे क्या? तू अब भी दोष से मुक्त नहीं हुआ! मृत्यु देव आगये तो

अच्छा ही हुआ कि अब तुम दोनों अपराधी मिल गये। नहीं तो मृत्यु को भी मुझे ढूंढ़ना पड़ता।"

इस पर मृत्यु देव बोल उठे—हे अर्जुनक ! शिकारी ! तू भूल कर रहा है। इस बालक की मृत्यु का न तो मैं कारण हूँ और न यह साँप। बल्कि इसका कारण कुछ और ही है।

शिकारी ने कहा—नहीं। अब तक तो मैं इस काम का जिम्मेवार तुम दोनों को ही समझता था, अब यदि इस दुष्कृत्य में कोई और भी उलझा हुआ है तो उसका नाम भी प्रकट करो।

मृत्यु देव ने कहा—इस काम में काल सब से बड़ा कारण है। उसकी प्रेरणा से सब प्राणी भाँति-भाँति के बुरे काम किया करते हैं। हम और यह साँप दोनों ही काल के आधीन हैं। इसमें हम दोनों का कोई दोष नहीं है।"

उसी समय काल देव ने वहाँ पहुँच कर शिकारी से कहा—"तुम व्यर्थ में इन दोनों को कष्ट दे रहे हो। क्योंकि प्राणियों की मृत्यु में मेरा कोई अधिकार नहीं है। सब अपने कर्मों के अनुसार फल भोगा करते हैं। जिसका जैसा कर्म होता है, उसके अनुसार हम उसमें प्रेरित हो जाते हैं। इस बालक ने भी जैसा कर्म किया था, हमने उसके अनुसार कार्य किया है। इसलिए मेरा भी इसमें कोई दोष नहीं है। कर्म को ही प्रधान मानना चाहिये। जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है और उसी के अनुसार हम तीनों कार्य करते हैं।"

इस पर बुढ़िया ब्राह्मणी, जिसका पुत्र मर गया था, उस शिकारी से बोली—"हे अर्जुनक ! मेरे कहने से तू नहीं मानता था, परन्तु अब अच्छी तरह सुनले ! मैंने तो पहले ही कहा था कि साँप दोषी नहीं है। इसे छोड़ दे। परन्तु तुमने मेरी बात न मानी। इसलिये मैं फिर कहती हूँ

कि साँप को छोड़ दे। इसका कुछ भी दोष नहीं है और न मृत्यु का ही दोष है और न काल का ही। प्राणी अपने पिछले कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख का फल भोगते हैं। इसलिए अब तू इसे छोड़ दे। मैं विश्वास दिलाती हूँ कि निस्संदेह इसमें इसका कोई दोष नहीं है।'

भीष्म जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! उस बुढ़िया ब्राह्मणी की बात सुनकर तब उस शिकारी ने उस साँप को छोड़ दिया। वह काल और मृत्यु सहित अपने स्थान को चला गया।

युधिष्ठिर! इस कही कथा में शिकारी को जिस प्रकार शांति मिली उसी प्रकार तू भी कर्म को प्रधान जान कर शांत हो जा और व्यर्थ ही दुःख के सागर में न डूब। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख का भागी होता है। इस भयानक हत्याकांड को न तो तुमने किया है और न दुर्योधन ने ही। बल्कि इसका कर्ता धर्ता काल है। इससे पहले मारे गये अनेक राजाओं को भी काल ने ही मारा है।

कर्म और भाग्य

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! भीष्म जी की यह बातें सुनकर युधिष्ठिर को बड़ी खुशी प्राप्त हुई और उन्होंने भीष्म पितामह से कहा—हे महाज्ञानी! जिस प्रकार आपने इस वृत्तांत को सुनाया है उसी प्रकार कृपा करके अब यह भी बताइये कि परमात्मा की प्रकृति और पुरुषार्थ अर्थात् कर्म, दोनों में से कौन महान् और शक्तिशाली है?

भीष्म जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! यह प्रश्न भी बहुत अच्छा है। इसलिए इस बारे में मैं तुम्हें ब्रह्माजी की वाणी सुनाता हूँ। यह श्री वशिष्ठ और ब्रह्मा जी की बातचीत है।

एक बार श्री वशिष्ठ जी ने ब्रह्मा जी से ऐसा ही पूछा था । तब ब्रह्मा जी ने कहा था—हे वशिष्ठ ! बिना बीज के कुछ उत्पन्न नहीं होता । जिस प्रकार बिना बीज के खेत का जोतना भी व्यर्थ है और उससे कुछ फल प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार बिना उद्योग के पिछले जन्म के किये हुये कर्मों द्वारा भाग्य भी कुछ फल नहीं देता । जैसे कि खेत और बीज के सम्बंध के फल रूपी अनाज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उद्योग बीज है । मनुष्य जैसा उद्योग करता है, वैसा ही फल पाता है । और इस संसार में उसी के अनुसार सुख रूपी फल को भोगता है । जो प्राणी अच्छा काम करता है, अच्छा फल पाकर सुख पाता है । और जो बुरा काम करता है, वह उसके कारण से बुरा फल अर्थात् दुःख पाता है । कर्म ही प्राणी को अच्छा या बुरा फल देने वाला है । इसी के अनुसार मनुष्य का अच्छे लोगों में मान होता है । और इसीके अनुसार बुराई प्राप्त होती है । कर्म रूपी पुरुषार्थ से ही मनुष्य भाग्यवान् और लक्ष्मीवान् होकर ऊँचे पदार्थों को पाता है और कर्म के द्वारा ही आदमी तरह-तरह के दुःख भोगता है । कर्म के द्वारा मनुष्य को अच्छे-बुरे भोग, व्रत, श्रद्धा, निष्ठा, और बुद्धि चतुरता प्राप्त होती है ! देवता, नाग, यक्ष, चाँद, सूर्य, और हवा भी अपने शुभ कर्मों के द्वारा ही मनुष्य शरीर को छोड़कर देवरूप को प्राप्त हुए । परन्तु यदि कोई चाहे कि बिना कर्म के ही सुख प्राप्त करले तो यह हो नहीं सकता ।

यह निर्णीत बात है कि बिना कर्म के मनुष्य को धन, मित्र, कुटुम्ब, बड़ाई और लक्ष्मी नहीं मिलती । ब्राह्मण अपने अन्तःकरण और बाहर की सफाई अर्थात पवित्रता द्वारा धनी है और क्षत्रिय पराक्रम द्वारा, वैश्य व्यापार से और शूद्र अपने सेवा-भाव से धनवान् होता है । परन्तु जो प्राणी दान नहीं करता और बिना कर्म के रहता है । अथवा पुरुषार्थहीन है, या यज्ञ इत्यादि कर्मों से रहित अथवा जो संन्यासी है उसको धन प्राप्त

नहीं होता। क्योंकि जब सब शुभ कर्मों को छोड़ ही देगा तो लक्ष्मी भी उसे छोड़ जायेगी। जो भगवान् देवों और दैत्यों को जन्म देते हैं और त्रिलोक के स्वामी कहे जाते हैं, वह भी क्षीर सागर में ध्यान लगा कर अपने कर्मों के अनुसार तपस्या करते हैं। परन्तु बहुत से प्राणी भाग्य के भरोसे रहते हैं और कर्म-हीन जीवन व्यतीत करते हैं। वह सोचते हैं, जैसा भाग्य में होगा वैसे मिलेगा, परन्तु वह मूर्ख यह नहीं जानते कि जब कर्म ही नहीं होगा तो फल कहाँ से प्राप्त होगा ? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि कर्म कभी न छोड़े। फिर भाग्य में जैसा होगा वह अवश्य मिलेगा। नहीं तो, बिना कर्म किये मात्र भाग्य किसी को कुछ नहीं दे सकता। जब कि देवलोक तक में भी यह नियम है कि उत्तम कर्म किये बिना इन्द्र इत्यादि भी अपने स्थानों से हटाये जा सकते हैं। तब कहीं देवता यह कैसे मान सकते हैं कि संसार के लोग बिना कर्म उद्योग किये सुख भोगें। वह तो ऐसे प्राणियों के लिए एक न एक दिन विघ्न जरूर डाल देंगे। क्योंकि देवता लोग तो मन में हर समय द्वेषभाव रखते हैं और बहुत ईर्ष्यालु होते हैं। उन्हें अपने स्थान से हटाये जाने का डर रहता है। यही कारण है कि देवतायों और तपस्विओं में सदा से शत्रुता चली आ रही है। और देवतागण तपस्वियों की तपस्या में सदा से रुकावट डालते रहे हैं। परन्तु तपस्वी लोग उनकी चिन्ता न करके अपनी तपस्या करते रहते हैं। इस प्रकार देखा जाये तो संसार में कर्म ही सर्वोपरि है। नास्तिक तो ईश्वर को मानते ही नहीं परन्तु यह सारा संसार ईश्वर के आधीन है और इसमें रहने वाले प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से भाँति-भाँति की चेष्टाएँ करते हैं। जब यह स्पष्ट है कि उसके संकेत से ही सब संसार चल रहा है तो यह मानना होगा कि कर्म करना सबके लिए अनिवार्य है।

आत्मा ही अपनी शत्रु है। आत्मा ही अपने पापों और पुण्यों की गवाह है। आत्मा ज्ञानवान् है। मनुष्य अज्ञानी है। इसलिए व्यक्ति को चाहिये कि वह ज्ञान द्वारा अच्छे बुरे कर्मों को पहचान कर अच्छे कर्म करे।

क्योंकि शुभ कर्म रने वाले को पुण्यलोक प्राप्त होता है। और जो पुण्यात्मा हैं उसका देवता भी कुछ नहीं कर सकते। उनके पुण्य के आगे कोई कुछ नहीं कर सकता। जैसे थोड़ी सी भूल होजाने के कारण से राजा ययाति को देवताओं ने स्वर्ग से धकेल कर पृथ्वी पर गिरा दिया था, परन्तु उसका पुण्य ऐसा था कि उन्हें फिर स्वर्ग पहुँचा दिया गया।

इसी प्रकार राजर्षि पुरुरव भी ब्राह्मणासम्मान का अधर्म करके पुण्यलोक के भागो हुये थे। परन्तु यहीं पर आचार्यपुत्र अश्वत्थामा और श्री परशुराम जी यद्यपि बड़े धनुर्धारी थे परन्तु उनके कर्मानुसार उनको स्वर्ग प्राप्ति न हुई। इसी प्रकार कर्म के अनुसार ही राजा बलि बंधन में आये और पाताल लोक को भेजे गये। इसलिए दो चार नामों के उदाहरण से पता चलता है कि मनुष्य को अपने कर्मानुसार ही फल भोगना पड़ता है। सबसे स्पष्ट बात यह है कि राजा धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पांडुपुत्रों का राज्य छीन लिया। परन्तु उन्होंने युद्ध करके राज्य वापिस लेलिया। इससे यह प्रकट होता है कि पहले अपना कर्तव्य अर्थात् कर्म सहायक होता है। फिर बाद में उसकी सहायता के लिए भाग्य भी उसे सहयोग देता है। जिस प्रकार वायु की सहायता पाकर थोड़ी सी अग्नि बहुत कुछ कर सकती है और भयानक रूप ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार उत्तम कर्मों के करने में थोड़ी बहुत भाग्य भी सहायता करता है। परन्तु इस मृत्युलोक में रहकर यदि मनुष्य यह चाहे कि कर्म न किया जाये और भाग्य सहायता करे तो यह असंभव है। जिस प्रकार गुरु का आदेश मानने के लिए शिष्य तैयार रहता है, उसी प्रकार कर्म की आज्ञा में भाग्य भी साथ देने के लिये तत्पर रहता है।

इस प्रकार दान धर्म और आचार विचार सम्बंधी अनेक उपदेशों को सुनाकर भीष्म जी चुप हो गये। भीष्म जी के चुप होजाने पर महामुनि व्यास जी ने उन से कहा—हे महाज्ञानी भीष्म ! अब युधिष्ठिर आप के बतलाये हुए

अनेक उपदेशों को सुन चुके। निस्संदेह इससे उन्हें बहुत शांति प्राप्त हुई है। परन्तु यह बुद्धिमान् राजा आप ही के पास अभी तक श्रीकृष्ण सहित उपस्थित हैं, इसलिए आप इन लोगों को आदेश दें कि वह हस्तिनापुर जायें।"

वेदव्यास जी के ऐसा कहने पर भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा—हे राजन्! अब तुम खुशी खुशी अपने नगर में प्रविष्ट हो जाओ। और सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर के ईश्वर की भक्ति और अच्छे कर्म करो। हे युधिष्ठिर! अब तुम अपने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार देवता और पित्रों को प्रसन्न करो। उससे तुम्हारा कल्याण होगा। हे युधिष्ठिर! अब किसी सन्देह और शंका के बिना अपने नगर में जाओ और जब तुम यह जानना कि भगवान् भास्कार उत्तरायण हो गये हैं तब यहाँ मेरे शरीर त्याग के समय आ जाना।"

इस आज्ञा को पाकर युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह को बहुविधि नमस्कार किया और अपने भाइयों समेत माता गांधारी और राजा धृतराष्ट्र को आगे करके हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

भीष्म जी के निकट

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! हस्तिनापुर पहुँच कर युधिष्ठिर ने अपने सहायकों का बड़ा सम्मान किया और उनको अनेक प्रकार से प्रसन्न करके विदा किया। फिर उन विधवा स्त्रियों को, जिनके पति-पुत्र इत्यादि युद्ध में मारे गये थे, उनको भी उचित धन देकर संतुष्ट किया। जब सब लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान को चले गये तब युधिष्ठिर ने अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को राज्य करने के कार्य पर नियुक्त किया और स्वयं राज्य को प्राप्त करके प्रसन्नतापूर्वक राज्य करने लगे। परन्तु बारह दिन और बारह रातें उन्होंने ज्यों त्यों करके बिताई थीं कि सूर्य के उत्तरायण होने का समय आ गया।

जब सूर्य पूर्णतया उत्तरायण हो गया तो राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को बुला कर उनकी यथाविधि पूजा की और नगर से बाहर निकले। फिर वहीं ठहर कर उन्होंने घृत, फूल, माला, वस्त्र, चन्दन और अगर आदि और बहुत भाँति के मणि-रत्नों को भीष्म जी के अग्नि संस्कार के लिए भेजकर बाद में गांधारी, माता कुंती, विदुर, युयुत्सु, और अपने भाईयों तथा दूसरे बंधुओं को साथ लेकर युधिष्ठिर जी कुरुक्षेत्र की भूमि की ओर चले। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि वेदव्यास जी महर्षि नारद, देवल, असित, और युद्ध से बचे हुए बहुत से राजा और रक्षक चहुँओर से भीष्म जी को घेरे खड़े हैं। तब उनके निकट पहुँच युधिष्ठिर ने भीष्म जी को प्रणाम किया। इसके पश्चात् भीष्म जी की बाणों की शय्या के निकट जाकर युधिष्ठिर ने कहा–हे प्रभो! यदि आप मेरे वचनों को सुन रहे हैं तो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? अग्नि लेकर तो मैं आया ही हूँ। परन्तु मेरे साथ आचार्य रतीज्यु, ब्राह्मण, मेरे चारों भाई, राजा धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण जी और युद्ध से बचे हुये दूसरे राजा लोग और दूसरे देशों के बहुत से लोग भी आये हैं। अब जैसी आज्ञा हो वैसी सेवा करूँ किन्तु प्रार्थना यह है कि पहले आप आँखें खोल कर इन सब लोगों की तरफ देखें।

यह सुनकर भीष्म जी ने आँखें खोलीं और चारों ओर बैठे हुये लोगों को देखा। तब उन्होंने युधिष्ठिर की विशाल भुजा को पकड़ कर कहा–कुन्तीपुत्र! इस समय तुम्हारा आना बड़ा अच्छा है। आज मुझे इन बाणों की नोकों पर पड़े हुये २८ दिन हो गये हैं। परन्तु यह दिन मुझे एक सौ बरस के समान प्रतीत हुये हैं। अब यह माघ का महीना और शुक्लपक्ष का अच्छा समय आ गया है।

मैंने अभी एक और आवश्यक बात तुम से कहनी है। जरा राजा धृतराष्ट्र को बुलाओ। वह कहाँ हैं?"

तब युधिष्ठिर ने राजा धृतराष्ट्र को सामने किया। उनको देख कर भीष्म जी ने कहा—"हे राजन् ! आप धर्म, अर्थ के ज्ञानी और वेद शास्त्र को जानने वाले हैं। इसलिए आपको किसी प्रकार का शोक नहीं करना चाहिये। और यह समझना चाहिये कि जो होना था, वह हो गया। अब आपसे एक आवश्यक बात यह कहनी है कि जिस प्रकार युधिष्ठिर इत्यादि पांडव के पुत्र हैं, उसी प्रकार वह तुम्हारे हैं। तुम्हें उनकी देख भाल करनी चाहिये। पांडव बड़े धर्मात्मा हैं और तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। इन में युधिष्ठिर सब से योग्य हैं। मैं इसको बड़ा दयालु और गुरुजनों का भक्त मानता हूँ। यह तुम्हारे अयोग्य पुत्रों की तरह नहीं हैं। तुम्हारे पुत्र ईर्ष्यालु और बुरे स्वभाव के थे। इसलिए तुम उनके लिए कोई शोक न करना।

धृतराष्ट्र से यह बात कह कर भीष्म जी ने श्रीकृष्ण से कहा। "हे देव ! चक्रधारी ! अब मैं आपको अन्तिम प्रणाम कर रहा हूँ। आप सब जीवों के स्वामी और सदा साथ रहने वाले हैं। हे जनार्दन ! अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं यहाँ से कूच करूँ। इसमे पूर्व आपसे प्रार्थना किये जा रहा हूँ कि इन पांडवों पर सदैव कृपादृष्टि रखना और हर समय इनकी रक्षा कीजियेगा। हे भगवान् ! युद्ध से पूर्व जब आप संधि और शांति के राजदूत बनकर हस्तिनापुर पधारे थे तभी मैंने दुर्योधन से कहा था कि जिधर भगवान श्रीकृष्ण हैं उधर ही विजय है। परन्तु वह इतना हठी था कि उसने पांडवों से सन्धि नहीं की। परिणाम यह हुआ कि जनता का नाश करवा कर स्वयं भी विनष्ट हो गया। हे कृष्ण जी ! मैं आपको आरम्भ से ही ईश्वर के समान जानता हूँ। क्योंकि बहुत पहले ही देवर्षि नारद ने आपकी महिमा का विस्तार से मुझे वर्णन सुना दिया था। इसलिए हे कृष्ण जी ! अब मैं आपसे नम्रतापूर्वक यह आज्ञा चाहता हूँ कि शरीर त्यागाने के लिए आप मुझे आज्ञा दीजिये। आप की आज्ञा प्राप्त कर लेने के पश्चात्

मुझे कोई शँका और सन्देह न रहेगा और मैं निस्सन्देह मोक्ष को प्राप्त कर लूंगा।"

श्रीकृष्ण जी ने कहा–'हे महाज्ञानी भीष्म! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि अब तुम शरीर को त्याग वसुदेवता के लोक को प्राप्त करो। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुमसे सारे जीवन में कभी कोई पाप नहीं हुआ। तुम मार्कण्डेय ऋषि के समान हो।"

वैशम्पायन जी ने कहा–हे राजन्! जब श्रीकृष्ण ने ऐसा कहा तब गंगानन्दन भीष्म ने धृतराष्ट्र समेत पांडवों से कहा–हे प्रिय लोगो! अब मैं अपने प्राणों को त्यागूँगा। इसलिये आप लोगों से अनुमति चाहता हूँ। और निवेदन करता हूँ कि आप लोग सच्चाई को हाथ से कभी न छोड़ें। सत्य से बढ़ कर इस संसार में कुछ भी नहीं है।

भीष्म पितामह का प्राण त्यागना

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण और दूसरे वीरों से प्राण त्यागने की अनुमति लेकर भीष्म पितामह एक दम चुप होगए। और कर्मों के अनुसार उन्होंने अपने मन ही मन में समाधि लगा ली। उसी अवस्था में तब उनके प्राण उनका शरीर छोड़ गये। प्राणों का निकलना था कि आकाश मंडल में देवताओं के विमान मंडलाने लगे। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। देवताओं ने "भीष्म धन्य हैं, भीष्म धन्य हैं" की आवाजें निकालीं।

इस प्रकार भीष्म जी का शरीर छूटने पर पांडव और विदुर जी ने लकड़ियाँ और दूसरी सामग्रियाँ एकत्र करके चिता बनाई। उसमें युयुत्सु, भी सम्मिलित हुए। दूसरे राजा लोग और सम्बंधी इत्यादि भी खड़े रहे। तब भीष्म के मृतक शरीर को रेशमी कपड़ों से ढक कर माला पहनाई गई। और

युयुत्सु छत्र लेकर खड़े हुए। भीमसेन और अर्जुन चंवर डुलाने लगे। कौरव कुल की जितनी स्त्रियाँ थीं, पंखा लेकर मृतक शरीर को पंखा करने लगीं। बड़े यज्ञ का आयोजन करके आहुतियाँ दी गईं। वेदपाठी ब्राह्मण मंत्रों का उच्चारण करने लगे। फिर भीष्म के मृतक शरीर को चिता पर रखकर अग्नि संस्कार करके धृतराष्ट्र इत्यादि ने परिक्रमा की और फिर ऋषियों सहित गंगा जी के तट पर गये। साथ में महर्षि वेदव्यास, नारद, श्रीकृष्ण, असित भरतवंश की सभी स्त्रियाँ भी गंगा तट पर गईं। हस्तिनापुर के नगर निवासी भी उसमें सम्मिलित हुए। वहाँ पहुँच कर उन सब लोगों ने विधिपूर्वक जलांजली दी। इस अवसर पर शोक में व्याकुल स्त्रियों ने बड़ा रुदन किया। इस पर श्री गंगा जी भी अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी होकर जल से बाहर आगईं। और बहुत विलाप करने लगीं। गंगा के विलाप को देखकर श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे कल्याणी ! तुम भीष्म के लिये कोई चिन्ता न करो। निस्संदेह तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोक को गया है। यदि तुम कहती हो कि वह शिखंडी के हाथ से मारा गया है तो यह सच नहीं है। क्योंकि शिखंडी की क्या शक्ति है, जो ऐसे महापुरुष को मारे। इन्हें तो अर्जुन ने मारा है। तुम इस वीर पुरुष के लिये तनिक भी चिन्ता न करो।

हे राजन् ! जब इस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने गंगा को समझाया तब गंगा का दुःख दूर हो गया। और वह जलधारा में जाकर अदृश्य हो गईं।

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण समेत सब लोग गंगा जी को तथा भीष्म की चिता को प्रणाम कर के वापिस नगर की ओर चल पड़े।

———

अश्वमेध पर्व

यज्ञ का विचार

सूतजी कहते हैं–हे राजन् ! हस्तिनापुर पहुँच कर जब युधिष्ठिर ने राजपाट संभाला, तब अपने परिवार और गुरुजनों की हत्या पर उसे बड़ा दुःख हुआ। वह राज्य से अलग होने का फिर विचार करने लगे। उनके विचारानुसार वनवास चला जाना ही उचित था। वह दिन रात इसी चिंता में घुलने लगे। महाराज धृतराष्ट्र उनको बार-बार समझाते और श्रीकृष्ण जी भी राज्य-धर्म का उपदेश देते लेकिन युधिष्ठिर का दुःख किसी भाँति भी दूर न होता था।

उसी समय व्यास जी युधिष्ठिर से मिलने आए। युधिष्ठिर ने उनके स्वागत और पूजा इत्यादि के बाद उन्हें उचित आसन दिया। बाद में व्यास जी ने युधिष्ठिर से कहा–राजन् ! अब तुम अश्वमेध यज्ञ करो यह बड़ा पवित्र यज्ञ है। इसके करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—"महाराज ! यज्ञ करने के लिए धन चाहिए युद्ध करने के कारण से कोष में धन की कमी है। प्रजा और सहायक राजाओं की भी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। कितने ही राजाओं का तो सब कुछ नष्ट हो गया। जो बचे हैं, उनके घर के बालक ही जीवित रह गए हैं। मैं उन बच्चों से धन कैसे माँग सकता हूँ। दुर्योधन ने पृथ्वी को पहले ही चूस लिया था, वह युद्ध की भेंट हो गया। अब यज्ञ के लिए धन कहाँ से आवे ?"

व्यास जी ने कहा–"तुम धन की चिंता न करो। तुम्हारा राज-कोष जो आज धन से खाली है, तुम्हारी सत्प्रवृति से फिर भर जायेगा। प्राचीन

समय में राजा मरुत एक बड़े प्रतापशाली राजा हो गुजरे हैं। उन्होंने अपने समय में एक बड़ा यज्ञ किया था। उस यज्ञ से जो धन बच गया था वह हिमालय पर्वत के पास जमीन में गड़ा हुआ है। तुम भाइयों समेत जाकर उस दान को खोद लाओ।"

मरुत का वृतान्त

इसपर युधिष्ठिर जी ने पूछा—"हे व्यास जी राजा मरुत कौन थे और इनका यज्ञ किस प्रकार हुआ, कृपाकर के बतलाइये।"

व्यास जी ने कहा—स्क्ष्वाकुवंश में मरुत का जन्म हुआ था। एक बार राजा मरुत ने यज्ञ का विचार करके बृहस्पति जी से कहा कि आप मेरे पुरोहित बनिये। बृहस्पति इन्द्र के पुरोहित थे। परन्तु मरुत और उनके मध्य शत्रुता थी। इसलिए बृहसपति ने मारुत का पुरोहित बनना अस्वीकार कर दिया। तब मरुत दुःखी होकर अपने राज्य की ओर चले। वह चले जारहे थे कि रास्ते में नारद मुनि से भेंट हुई। राजा मरुत ने उनसे सब समाचार कह सुनाया।

इसे सुनकर नारद जी ने कहा—आप दुःखो न होइये। यदि बृहस्पति न होंगे तो इससे आपकी कोई हानि नहीं होगी। आप उनके भाई सोमव्रत को पुरोहित बनाइये। और यज्ञ शुरू करा दीजिये। सोमव्रत बृहस्पति से भी अधिक ज्ञानी हैं। मैंने सुना है कि बृहस्पति और उनकी आपस में नहीं बनती। जिससे अलग हो कर वह काशी में रहते हैं और स्वयं को प्रगट नहीं करते। हो सकता है कि उनको पहचानने में तुम्हें कठिनाई हो, इसलिए मैं उन्हें पहचानने का उपाय बताता हूँ। सोमव्रत प्रतिदिन विश्वनाथजी का दर्शन करने जाते हैं। उस यात्रा में यदि कोई मुर्दा रास्ते में उन्हें मिल जाता है तो वह उसी की परिक्रमा ले कर वापिस आ जाते हैं।

और फिर वह विश्वनाथ जी के मन्दिर तक नहीं जाते। जब आप इस उपाय से उनसे मिलेंगे तो वह पूछेंगे कि मेरा पता तुमको किसने बताया ? तब आप मेरा नाम बता कर कहियेगा कि आपका पता बता कर नारद चिता में जल गये।

इस प्रकार नारद जी से उपाय लेकर सोमव्रत से भेंट करने राजा मरुत काशी पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक मुर्दा साथ लिया और फिर विश्वनाथ के मन्दिर पर पहुँचे। फिर उन्होंने मुर्दे को दरवाजे पर रखवा दिया और सोमव्रत के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

अपने ठीक समयानुसार सोमव्रत भी आ पहुँचे। देखा तो विश्वनाथ के मन्दिर के फाटक पर मुर्दा पड़ा है। वह मुर्दे की परिक्रमा करके वापिस लौट पड़े। फिर वह मन्दिर के अन्दर नहीं गये इससे राजा मरुत को विश्वास हो गया कि यही सोमव्रत है। यह देखकर राजा मरुत उनके पीछे पीछे चलने लगे। और रास्ते में उन्हे रोक कर उन्होंने उन्हें अपने मनकी अभिलाषा बतलाई। तब बहुत कुछ कहने सुनने पर सोमव्रत ने राजा का पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया। मरुत प्रसन्न हो गये।

घर पहुँच कर उन्होंने यज्ञ को सामग्री एकत्र करके यज्ञ शुरू किया। यज्ञ के आरम्भ होने पर बृहस्पति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने इन्द्र से जाकर कहा कि मरूत के यज्ञ से सोमव्रत को बड़ा धन प्राप्त होगा। इसलिए कोई ऐसी युक्ति बतलादें जिससे सोमव्रत के स्थान पर मैं पुरोहित बन के सब धन प्राप्त कर लूँ।"

इन्द्र ने कहा–"अच्छा, मैं एक उपाय करता हूँ। यदि यह काम हो जाये तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

बृहस्पति से ऐसा कहकर इन्द्र ने राजा मरुत के पास अपना दूत भेजकर

यह संदेश भेज दिया कि हे मरुत! तुम अपने यज्ञ में बृहस्पति को पुरोहित बनाओ! नहीं तो मैं तुम पर वज्र गिराकर तुम को मार डालूँगा।"

यह सदेशा पाकर राजा मरुत को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने बृहस्पति को पुरोहित बनाने से इन्कार कर दिया। फिर वह सोमव्रत के पास आये और उन्होंने उसको राजा इन्द्र के संदेशे की बात कह सुनाई। उसे सुनकर सोमव्रत ने कहा—हे राजन्! आप निश्चिन्त रहिये। भला इन्द्र की क्या शक्ति है कि आप का बाल भी बांका कर सके।"

इतने में इन्द्र के दूत ने उसके पास पहुँच कर सब बात उसे बतादी। राजा मरुत को यह बात सुन कर इन्द्र के क्रोध की सीमा न रही। वह वज्र उठाकर मरुत को मारने पहुँचे। परन्तु सोमव्रत ने इन्द्र का हाथ बाँध दिया। जिससे इन्द्रको लेने के देने पड़ गये। इन्द्र ने अंत में विवश होकर क्षमा-याचना करके अपनी जान बचाई। और अपने क्षेत्र को लौट आया।

इधर मरुत और सोमव्रत ने वेद के अनुसार बड़े यज्ञ को आरम्भ किया। और फिर यज्ञ ठीक ढंग से समाप्त हुआ। उस यज्ञ में देवता ब्राह्मणों को भोजन परोसने पर नियुक्त किये गये थे। उसमें रात दिन भोजन कराया जाता था और दक्षिणा दी जाती थी। भोजन और दान इस प्रकार कई दिन तक होते रहे। इस पर भी सोने के टुकड़ों के कई ढेर बच गये। मरुत ने उन ढेरों को वहीं पर गड़वा दिया।

सो, हे युधिष्ठिर! अब तुम अपना यज्ञ सम्पूर्ण करने के लिए उस सोने को ले आओ। वह इतना अधिक है कि उससे एक नहीं कई अश्वमेध यज्ञ किये जा सकते हैं।"

यह कह कर व्यास जी ने विदा ली और अपने आश्रम की ओर प्रस्थान कर गये।

श्रीकृष्ण का द्वारका गमन

सूतजी कहते हैं —हे राजन् ! अभी तक श्रीकृष्ण जी हस्तिनापुर में ही थे। एक दिन अर्जुन को साथ लेकर वह वन में घूमने गये। वहाँ प्रकृति का दृश्य देख कर दोनों बहुत प्रसन्न हुए और कई दिन तक वहाँ ठहरे। तब कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा—"तुम्हारा सब कार्य ठीक हो गया। अब मैं द्वारका जाऊँगा। तुम राजा युधिष्ठिर को समझा दो कि वह मुझे अनुमति देदें। नहीं तो वह जाने नहीं देंगे।"

अर्जुन ने कहा—"जाने को आप जाइये, परन्तु युद्ध के अवसर पर आपने जो मुझे उपदेश दिया था उसे कृपा करके एक बार फिर बताइये !"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तब गीता का उपदेश दिया। अब कृष्णजी को साथ लेकर अर्जुन हस्तिनापुर आए। युधिष्ठिर से मिलकर उन्होंने कृष्णजी को जाने देने के लिए प्रार्थना की। युधिष्ठिर इसे सुनकर बहुत दुःखी हुए। वह नहीं चाहते थे, कि कृष्णजी उनसे एक घड़ी के लिए भी अलग हों। परन्तु, अर्जुन के बार २ कहने पर वह विवश हो गए और उन्होंने अनुमति देदी। आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण अपनी फूफी कुन्ती से मिलकर रथ पर बैठे ! माता पिता का दर्शन करने के लिये सुभद्रा भी तैयार हुई। तब बहन को रथ में बिठाकर के कैकेयीतान और सात्यकि सहित कृष्णजी द्वारका को चले। युधिष्ठिर इत्यादि उनको नगर से बाहर छोड़ने गए।

रास्ते में कृष्णजी की उत्तंग ऋषि से भेंट हुई। युद्ध का समाचार सुनकर उत्तंग ऋषि ने कहा—"कृष्ण ! तुम्हारी लापरवाही से यह युद्ध हुआ तुम चाहते तो यह युद्ध न होता। अपने कुटुम्ब को बचाने की शक्तित रखते नाश होने देना अनुचित है इसलिये मैं तुम्हें श्राप दूंगा।"

परन्तु श्रीकृष्ण जी ने उस युद्ध को रोकने के लिये जो कुछ किया था उसको सुना कर तथा यह बता कर कि होनी को कोई टाल नहीं सकता, उत्तंग को शान्त किया। उत्तंग चुप हो गए और फिर श्रीकृष्ण आगे बढ़ गए।

वासुदेव जी का शोक

द्वारका पहुँच कर श्रीकृष्णजी वसुदेवजी से मिले। वसुदेव जी ने युद्ध का हाल पूछा श्रीकृष्णजी ने सारा हाल कह सुनाया। उसे सुनकर वसुदेवजी को बड़ा दुःख हुआ। इस पर अभिमन्यु के अन्यायपूर्वक मारे जाने के कारण से वह और भी व्याकुल हो गए। सुभद्रा छाती पीट २ कर रोने लगी। और फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। वसुदेव जी भी बेसुध हो गए। कृष्णजी किसी प्रकार उन्हें होश में लाए और उन्हें समझा कर शान्त किया।

वसुदेवजी ने अभिमन्यु के लिए बहुत दान किया।

अब श्रीकृष्ण जी द्वारका में रहनें लगे।

अभिमन्यु का श्राद्ध

सूतजी कहते हैं—हे राजन्। इधर श्रीकृष्ण के जाने के पश्चात पांडवों ने भी अभिमन्यु का श्राद्ध किया। परन्तु अभिमन्यु के शोक के कारण से पांडवों को शान्ति न मिलती थी। उत्तरा तो दुःख से इतनी व्याकुल हुई कि उसने बहुत दिनों तक अन्न नहीं खाया। यद्यपि वह गर्भवती थी और उसे उन दिनों बहुत से पदार्थ खाने चाहिये थे, पर उसने कुछ नहीं खाया और बहुत कमजोर हो गई। तब उसको बहुत दुःखी जानकर महर्षि वेदव्यास जी हस्तिनापुर पधारे। और उन्होंने उत्तरा और कुन्ती को बहु-विधि समझाया। महर्षि वेदव्यास ने उत्तरा को सान्त्वना देते हुए कहा—"तू दुःख न

कर। तुझे जो गर्भ है उससे बड़ा तेजस्वी बालक पैदा होगा। पांडवों के बाद तेरा यह पुत्र संसार पर राज्य करेगा।"

जिस समय व्यास जी उत्तरा को इस प्रकार समझा रहे थे, उस समय अर्जुन और युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। इस बात को सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। फिर युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने पर तैयार करके वेदव्यासजी अपने आश्रम की तरफ चले गये।

व्यासजी के चले जाने पर युधिष्ठिर के भाइयों से विचार विमर्श करके राजा मरुत का गढ़ा हुआ धन लाने का विचार किया। सब सहमत हो गए। युधिष्ठिर ने अपनी सेना को हिमालय की ओर चलने का आदेश दिया।

सैनिक चल पड़े।

तब पांडव स्वस्तिवाचन कहते हुए धन खोजने चले।

पर्वत के निकट पहुँच कर सैनिकों ने डेरे गाड़ दिये। रात को सबने व्रत रखा। दूसरे दिन शुभमुहूर्त में धन खोदने का कार्य आरम्भ हुआ। तब सब से पहले धौम्य पुरोहित ने शंकर जी का पूजन करा के हाथ लगाया। उस अवसर पर युधिष्ठिर ने पहले बहुत गौएं ब्राह्मणों को दान दीं। तब तक व्यास जी भी वहाँ पहुँच गये। व्यास जी को साथ लेकर युधिष्ठिर ने भी धन खोदने में हाथ लगाया। धर्मराज के हाथ लगाते ही खोदने वालों को धन मिलना शुरू हो गया। फिर तो सोतुला, थाली, लोटा, कमंडलु, कलश, पत्रझारी, कड़ाही, गगरे और तरह तरह के बर्तन निकलने लगे। युधिष्ठिर उन्हें बंधवाने लगे। साठ हजार भारवाहक, उससे दुगुने ऊँट, ऊँटों से दुगुने घोड़े, ग्यारह लाख हाथी, और इतने ही रथों के बोझ से अधिक धन पांडवों के हाथ लगा।

उसको पाकर पांडव बहुत खुश होकर हस्तिनापुर की तरफ चले।

इधर राजा युधिष्ठिर के यज्ञ का समय निकट पाकर श्री कृष्ण जी सुभद्रा समेत द्वारका से चले। साथ में प्रद्युम्न, युयुधान, चार्णवेश, सांयगद, कृतवर्मा और बलदेव जी भी आये। उन को देखकर गांधारी तथा विधवा स्त्रियाँ रोने लगीं। कृष्ण जी ने सबको चुप कराया।

उसी समय उत्तरा के गर्भ में बड़ी जोर की पीड़ा होने लगीं। बहुत सुश्रूषा करने पर भी पीड़ा कम नहीं हुई। दसवां महीना पूरा नहीं हुआ था कि मरा हुआ बालक उत्पन हुआ। जो अश्वत्थामा के चलाये हुए अस्त्र के कारण से गर्भ में ही मर गया था।

कुन्ती छाती पीटती हुई श्रीकृष्ण के पास दौड़ी। रो रो कर उसने उन्हें सब हाल सुनाया। सुनकर श्रीकृष्ण रनिवास में गये। और वहाँ जाकर देखा कि चाँद के समान पुत्र मरा पड़ा है।

सुभद्रा विलाप

सूत जी कहते हैं—हे राजन्! इस दुर्घटना से श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। कुन्ती श्रीकृष्ण जी को पकड़ कर विलाप करने लगी। उसके विलाप का वर्णन नहीं हो सकता। चारों ओर हाय हाय मच गई। श्रीकृष्ण ने बड़े यत्न से कुन्ती को चुप कराया। जब तक कुंती चुप हुई तब तक सुभद्रा विलाप करती हुई आकर कृष्ण जी से कहने लगी- भाई! कौरवों के मरते ही तुम्हारा भान्जा मर गया। उसकी बहू को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सो वह भी मरा हुआ अब क्या किया जाये? तुमही सोचो! तुम्हारे होते हुए यदि बालक जीवित नहीं हुआ तो लोग क्या कहेंगे। हे कृष्ण! मैं द्रोपदी समेत तुमको मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए निवेदन करती हूँ कि तुम हम सबको इस दुःख से मुक्ति दिलवाओ। हे कृष्ण! जब अश्वत्थामा के बाण से इस गर्भवती का गर्भ क्षीण हो रहा था तब तुम्हीं ने क्रोध से कहा था कि

हे ब्राह्मण नराधम ! मैं तेरी इस इच्छा को नष्ट कर दूँगा। और अर्जुन के पोते को जीवित कर दूँगा। हे शत्रुओं पर विजय पाने वाले। तुम्हारे इस वचन को सुनकर उस समय मुझे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई थी ! हे कृष्ण जी ! मैं तुम्हारे पराक्रम और शक्ति को अच्छी तरह जानती हूँ, इसलिए ऐसा उपाय करो कि यह जीवित होजाये। नहीं तो मैं तुम्हारे सामने ही अपना प्राण त्याग दूँगी। हे कृष्ण ! यदि तुम्हारे रहते हुये अभिमन्यु का यह पुत्र जीवित नहीं हुआ तो तुम्हें ही पाकर क्या करूँगी ? हे सर्व विजयी तुम अपनी कृपा से इस मुर्दा बालक को जीवित करदो। केशव ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम पूरे धर्मात्मा, सत्यवादी और बहुत पराक्रमी हो। तुम्हारे लिए अपना वचन पूरा करना कठिन नहीं है। इस बालक का तो कहना ही क्या यदि तुम चाहो तो सब दुनिया के मरे हुए प्राणियों को जीवित कर सकते हो। कृष्ण जी ! यह जान कर मैं बार बार प्रार्थना करती हूँ कि पांडवों पर कृपा करो ! मैं तुम्हारी छोटी बहन, पुत्र के दुःख में दुःखी होकर तुम्हारी शरण आई हूँ। मुझपर दया करो।

उत्तरा का विलाप

सूतजी कहते हैं--हे राजन् ! सुभद्रा के इस विलाप को सुनकर श्री कृष्ण जी का जी भर आया। उन्होंने ऊँचे स्वर में पुकार कर कहा--"जैसा तुम कहती हो ऐसा ही हो।" श्री कृष्ण के इन वचनों को सुनकर वहाँ जितने स्त्री-पुरुष एकत्र थे सभी प्रसन्न हो गए। श्री कृष्ण उत्तरा के निकट पहुँचे। बाद में द्रोपदी ने जाकर जल्दी से उत्तरा से कहा--"अब तू सावधान होजा। देवताओं के समान स्वरूपवान श्री कृष्ण जी अब तेरे सामने आरहे हैं।"

तब रोती हुई और दुःखी उत्तरा ने झट घूँघट निकाल लिया और मरे हुए पुत्र को सावधानी से गोद में लेकर बैठ गई। बाद में कृष्ण जी से रोती हुई बोली--हे गोविन्द ! हे घट घट के वासी ! अविनाशी !

श्री कृष्ण जी ! अब आप इस पुत्र से अलग हुए अभिमन्यु को और मुझको भी मुर्दा ही समझिये। हे साधु ! मैं आपको सर झुकाकर प्रणाम करती हूँ कि आप मेरे इस पुत्रको जो कि अश्वत्थामा के अस्त्र से मर गया है, जीवित करदो । हे कमल नेत्र ! यदि मैंने कभी धर्मराज से, भीमसेन से, और आपसे कोई अपशब्द कहा हो तो यह वज्र मुझे लगे और मैं मर जाऊँ, परन्तु मेरी विनती है कि यह बालक न मरे। समझ में नहीं आता कि उस हत्यारे अश्वत्थामा को इस बालक को मारने से क्या मिला ? हे पाप नाशन ! मैं सर झुकाकर आपको दण्डवत् प्रणाम करती हूँ और विनती-करती हूँ कि आप इस बालक को जीवित करदें। नहीं तो मैं आप के सामने ही अपना प्राण त्याग दूँगी। हे गोविन्द ! इस बालक से मुझे बड़ी आशा और कामना थी। परन्तु मेरी इन आशाओं को अश्वत्थामा ने मिटादिया। इसलिए अब मेरे जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं। हे माधो ! मेरी बड़ी इच्छा थी कि पुत्र को गोद में लेकर तुम्हें प्रणाम करती। परन्तु हाय ! मेरी कामना पर पानी फिर गया ! हे कृष्ण जी ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वह चचंल नेत्र वाला अभिमन्यु आपको बड़ा प्यारा था। परन्तु आज उसके पुत्र को आप मरा देखिये। जैसे उसका पिता निर्दयी था जो अपने पिता पांडवों की अपार लक्ष्मी को छोड़कर चला गया उसी प्रकार यह बालक भी बड़ा निर्दयी है कि बिना यह दुनिया देखे ही चल बसा ! हे जनार्दन ! जब अभिमन्यु मरने के लिए युद्ध में जा रहा था तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे बाद अग्नि में जलकर सती हो जाऊँगी। परन्तु जीवन की अभिलाषा ने मुझ पापिन को ऐसा न करने दिया। हे कृष्ण जी ! अब न जाने मेरी क्या हालत हो और जब मैं स्वर्ग को जाऊँगी तो वह मुझ अभागिनी को वह कितना लज्जित करेगा।"

यह कह कर उत्तरा फिर रोने लगी। कृष्ण उसे सांत्वना देने लगे तो उसका रोना और भी तीव्र होकर फूटा तथा वह बे सुध होकर गिर

पड़ी। उसके गिरते ही भरत कुल की सब स्त्रियाँ जो वहाँ उपस्थित थीं, विलाप करती हुई बेसुध होकर गिर पड़ीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय के पीड़ाजनक दृश्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। दो घड़ी बाद उत्तरा की सुध लौटी! तब उठ कर वह मरे हुए बालक को गोद में लेकर चूमने लगी और दोबारा विलाप करने लगी।

अब उत्तरा का यह निरंतर विलाप श्री कृष्ण के लिए असहनीय हो गया गया था। श्री कृष्ण जी ने आचमन करके अपने योगबल से उस ब्राह्म-अस्त्र का प्रभाव दूर किया और सब को सुनाकर जोर से कहने लगे—"हे उत्तरा! अब मैंने इसे जीवित कर दिया। तू सच जान कि वह जीवित हो गया। हे कल्याणी! यदि मैंने कभी झूठ नहीं बोला है और कभी युद्ध से मुख नहीं मोड़ा है तो यह बालक जीवित हो जाये। यदि मुझे धर्म और ब्राह्मण प्रिय हैं तो यह बालक जीवित हो जाये। यदि मैंने अपने मित्र अर्जुन से वैर न किया हो तो यह बालक जीवित हो जाये। यदि मुझ में सत्य और धर्म है तो यह बालक जीवित हो जाए। यदि मैंने कंस और केशी को सच्चाई के कारण मारा है तो यह बालक जीवित हो जाये।"

श्री कृष्ण ने यह कह कर वचन समाप्त ही किया था कि मुर्दा बालक के शव में प्राणों के लक्षण प्रगट होने लगे और वह हाथ पाँव हिलाने लगा।

अब श्री कृष्ण की कृपा से ब्रह्म-अस्त्र का प्रभाव दूर होने पर और बालक के जीवित होने पर सब को बड़ी प्रसन्नता हुई। देवताओं ने धन्य धन्य कह कर श्री कृष्ण जी की स्तुति की। कुंती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा इत्यादि ने भी श्री कृष्ण जी को बहुत प्रकार से धन्यवाद देकर प्रार्थना की। फिर तो खुशी से सभी नाच उठे। स्त्रियाँ प्रसन्न होकर गीत गाने लगीं। ब्राह्मणों ने वेद उच्चारण किया। सभी लोग मिलकर श्री कृष्ण जी की स्तुति करने लगे इतने में पुत्र को गोद में उठाकर उत्तराने बड़ी खुशी से श्री कृष्ण जी को प्रणाम किया। तब खुश होकर श्री कृष्ण ने उसको बहुत प्रकार के रत्नादि

दिये। दूसरे यदुवंशी भी जोकि श्री कृष्ण जी के साथ आये थे, उन लोगों ने भी बहुत सा धन दिया। इसके बाद श्री कृष्ण ने आगे बढ़ कर ऊँचे स्वर से कहा-"क्योंकि यह अभिमन्यु का पुत्र कुल के नष्ट होने पर उत्पन्न हुआ है इसलिए इसका नाम परीक्षित होगा।

सभी लोग इसीनाम पर सहमत होगये।

कृष्ण तब रनिवास से बाहर आये और अपने विश्राम स्थान में जाकर विश्राम करने लगे। धीरे-धीरे इस प्रकार हँसी खुशी में एक मास का समय व्यतीत हो गया। तब तक पांडव हिमालय से धन लेकर आ पहुँचे। उनके पहुँचने पर नगर के लोगों ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। फिर परीक्षित के जन्म का हाल और श्री कृष्ण जी की कृपा देख कर पांडवों की प्रसन्नता की सीमा न रही।

वेद व्यास जी का हस्तिनापुर आगमन

सूतजी कहते हैं-हे राजन्! उन्हीं दिनों वेदव्यास जी भी हस्तिनापुर पधारे। पांडवों ने निरशन कुल और अंधक वंशियों समेत विधि-विधान से उनकी पूजा की। बाद में सुन्दर निवास देकर अनेक धर्मचर्चा करते हुए युधिष्ठिर ने कहा-"हे पितामह! आपकी कृपा से हमको यज्ञ के लिए काफी धन मिल गया है इसलिए अब बताइये कि यह धन यज्ञ में किस प्रकार खर्च किया जाये।"

व्यास जी ने कहा-हे युधिष्ठिर! अश्वमेध यज्ञ करो। और इस धन को ...मी दक्षिणा में लगाओ। क्योंकि अश्वमेध यज्ञ सब पापों का नाश करनेवाला ... इस यज्ञ का पूजन करने वाले व्यक्ति का पाप निस्सन्देह कट जाता है।

यह सुनकर श्री कृष्ण जी से युधिष्ठिर ने कहा-हे महावीर! हे यदुनन्दन! ... आप की कृपा हो तो मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ! बिना आपकी आज्ञा के मैं ... कार्य नहीं करना चाहता। क्योंकि आप हमारे परम गुरु हैं। और आप ...की कृपा से हम आज सारी पृथ्वी का राज्य भोग रहे हैं। यदि आप

आज्ञा देंगे तो मैं सब पापों से मुक्त हो जाऊँगा। मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कि आप ही यज्ञ हैं, आप ही अविनाशी हैं और आप ही धर्म हैं। आप प्रजापति और जीवोंमें प्राण हैं।

श्री कृष्ण जी ने हँस कर कहा—हे राजन्! मुझे ऐसा जो आप समझते हैं तो यह आप की बड़ाई है। परन्तु मैं तो आप का आज्ञाकारी सेवक हूँ। आप हमारे राजा और परम गुरु हैं। इसपर भी यदि आप मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं आज्ञा देता हूँ कि आप यज्ञ शुरू कीजिये और मेरे योग्य जो सेवा हो बतलाइये।

वेद व्यास और युधिष्ठिर

श्री कृष्ण जी के कहने पर युधिष्ठिर ने वेद व्यास जी से कहा—हे भगवान्! आप वेद, शास्त्र और समय के ज्ञाता हैं। इसलिए यज्ञ शुरू करने से पूर्व जो उचित समय हो, वह बतलाइए।

वेद व्यास जी ने कहा—हे कुंतीनन्दन! चैत्र की पूर्णिमा का दिन बड़ा पवित्र है। तुम यज्ञ का कार्य उसी दिन आरम्भ करो। मैं और याज्ञवल्क्य जा तुम्हें परामर्श देंगे। यज्ञ में सर्वप्रथम शास्त्र के अनुसार एक बहुत उत्तम घोड़ा छोड़ा जायेगा। वह सब पृथ्वी पर घूम-घूम कर तुम्हारी कीर्ति का प्रकाश फैलायेगा! इसलिए तुम कोई अत्यंत उत्तम घोड़ा चुन लो।"

युधिष्ठिर ने कहा—"बहुत अच्छा।"

वेदव्यास जी ने जो कुछ कहा था, उसीके अनुसार युधिष्ठिर ने सब सामग्री एकत्र करायी। जब घोड़ा छोड़े जाने की बात आई, तब युधिष्ठिर ने पूछा—हे महामुनि! जो घोड़ा छोड़ा जायेगा उसके पीछे कोई जायेगा, या वह अकेला ही चारों ओर घूमेगा।"

व्यास जी ने कहा—नहीं। भीमसेन का छोटा भाई धनुर्धारी अर्जुन उसके पीछे, उसकी रक्षा के लिए जायेगा। और यहाँ पर राज्य की रक्षा कर,

के लिए भीम और नकुल रहेंगे। घर के काम-काज के लिए सहदेव रहेगा

इसपर युधिष्ठिर ने अर्जुन को अपने पास बुलाकर कहा—हे वीर अर्जुन! यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व एक घोड़ा छोड़ा जायेगा! उसकी रक्षा के लिए मैं तुम्हें भेजता हूँ। क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। इसके साथ घूम कर तुम देश के सब राजाओं को निमंत्रण दे आओ परन्तु यह याद रखना कि कभी किसी से युद्ध करने का अवसर न आवे।

अर्जुन ने सर झुकाकर आज्ञा स्वीकार करली।

महान् विजय

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! अब दिग्विजय के लिए घोड़ा छोड़ा गया। घोड़े की रक्षा में अर्जुन चले। चलते समय युधिष्ठिर ने वीर अर्जुन से कहा— जहाँ तक हो, बिना युद्ध किए ही राजाओं को समझा कर यज्ञमें आने के लिए सहमत कर लेना। यदि कहीं युद्ध करना ही पड़े तो राजा को नहीं मारना।"

अब अर्जुन चले। सिन्धु देश के क्षत्रियों ने जयद्रथ का प्रतिशोध लेने के लिए अर्जुन से युद्ध किया। जयद्रथ का पुत्र अर्जुन के भय से ही मर गया। धृतराष्ट्र की कन्या दुःशला जयद्रथ की स्त्री थी। पुत्र के मरने पर पौत्र को साथ लेकर अर्जुन के पास आई। अर्जुन सिंधी क्षत्रियों से युद्ध कर रहे थे। उसी समय दुःशला उस स्थान पर पहुँची। दुःशला को देख कर अर्जुन रुक गये। दुःशला ने रो रो कर भाई से सब दुःख कह सुनाया। अर्जुन ने उसे सांत्वना देकर अश्वमेध यज्ञ में आने का निमंत्रण दिया। उसने पौत्र को भेजने का वचन दिया।

इसके पश्चात् अर्जुन सिन्धु देश छोड़कर घोड़े के पीछे आगे बढ़े। आगे भाग्यदत्तके पुत्र वज्रधंत जरासिन्धके पौत्र, कंधारके क्षत्रिय और शिशुपाल के पुत्र ने अर्जुन से युद्ध किया। अर्जुन ने सब को हरा कर यज्ञ में आने का निमत्रंण दिया। यज्ञ में आना सभीने स्वीकार किया।

अब अर्जुन मणिपुर को चले। मणिपुर के राजा का नाम बभ्रुवाहन था। जब अर्जुन तीर्थ यात्रा को गयेथे तब चित्रांगदा से शादी होने पर बभ्रुवाहन उत्पन्न हुआ था। इससे अर्जुन उसके पिता हुए। बभ्रुवाहन पिता का आना सुन कर उससे मिलने आया। भेंट होने पर अर्जुन ने कहा—तुम्हें घोड़ा पकड़ कर युद्ध करना था। स्त्री के समान मेरे पास क्यों चला आया? यूं तो मैं तुम से बड़ा खुश हूँ, परन्तु यह जो तुमने क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध कार्य किया है, यह कायरतापूर्ण है।"

अर्जुन के ऐसा कहने पर बभ्रुवाहन क्रोधित हो कर चला गया। और सेनाको तैयार कर युद्ध के लिए भेजा। फिर स्वयं भी युद्ध में आ डटा बभ्रुवाहन के सैनिकों ने घोड़े को बांध कर घोर युद्ध किया। बभ्रुवाहन भी अर्जुन से भिड़ गया। पुत्र और पिता में घोर युद्ध हुआ अर्जुन के आक्रमण का उत्तर प्रत्याक्रमण में बभ्रुवाहन बड़ी तत्परता से देने लगे। तब क्रोधमें आकर अर्जुन ने बभ्रुवाहन को मारने के लिए एक अत्यन्त संहारक बाण चलाया। परन्तु उत्तर में बभ्रुवाहन ने भी उतना ही संहारक अस्त्र चला कर अर्जुन का बाण काट दिया। परन्तु वह दोनों अस्त्र बहुत ही तीव्र थे। परस्पर कटकर भी दोनों को जा लगे। जिससे दोनों बेसुध होगये। कुछ समय के पश्चात् बभ्रुवाहन की मूर्छा कम हुई वह उठा। परन्तु अर्जुन अभी भी बेसुध पड़े हुए थे। इससे बभ्रुवाहन को आश्चर्य हुआ कि अर्जुन अभी भी बेसुध क्यों है? सो वह निकट जाकर अर्जुन को देखने लगा कि क्या बात है? अर्जुन को बिल्कुल अचेत देखकर वह समझा कि अर्जुन के प्राण निकल गये। सो वह पिता की हत्या के पाप से घबराकर चिल्ला उठा।

यह समाचार जब बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा को मिला तो वह रोती हुई अर्जुन के पास आई। अर्जुन उस समय भी मृतक के समान पड़े थे। तभी अर्जुन की मृत्यु का समाचार उनकी स्त्री उलूपी को भी मिला। वह भी विलाप करती हुई आई। उसे देखकर चित्रांगदाऔर बभ्रुवाहन और

भी विलाप करने लगे। बभ्रुवाहन तो आत्म-घात पर तैयार हो गया। उलूपी ने उसे मना करके कहा—मैं अभी यत्न करती हूँ।

और उसने उस मणि को याद किया जो सर्पों को जीवित कर देती है। स्मरण करते ही वह मणि आगई। उलूपी की आज्ञा से बभ्रुवाहन ने उस मणि को अर्जुन के हृदय पर रख दिया। अर्जुन उठ बैठे।

उलूपी और चित्रांगदा को देखकर अर्जुन बोले—तुम दोनों यहाँ क्यों आई?

उलूपी ने सारा समाचार कह दिया। अर्जुन ने पुत्र को गले से लगा कर आशीर्वाद दिया। तब बभ्रुवाहन प्रसन्न होकर अर्जुन को राजभवन में लेगया और उसने अर्जुन का बहुत सत्कार किया। दूसरे दिन चित्रांगदा उलूपी और बभ्रुवाहन को यज्ञ में आने का निमंत्रण देकर अर्जुन घोड़े के साथ चले।

अंत में घोड़ा सभी देशों में घूम कर वापिस हस्तिनापुर पहुँच गया।

अश्वमेध यज्ञ

सूतजी कहते हैं—हे राजन्! अब जब अर्जुन दिग्विजय करके लौट आये तो यज्ञ का शेष आयोजन आरम्भ हुआ। ब्राह्मणों से पूछ कर शाला-भूमि और मंडप का निर्माण किया गया। राजाओं और दूसरे लोगों के बैठने के लिए उचित स्थानों का प्रबन्ध किया गया। समय पर सब लोग मणि, मूंगा, और कई प्रकार के रत्न, धन सम्पत्ति लेकर यज्ञ में सम्मिलित हुए। युधिष्ठिर ने प्रेमभाव से सबका आदर सत्कार किया।

यज्ञ मंडप सोने का बना हुआ था। यज्ञ में प्रयोग होने वाले सब बर्तन सोने के थे। लोगों का एक विशाल समूह एकत्र हो गया। संसार के चारों प्रकार के पिंडज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज जीव उस यज्ञ में एकत्र हुए। गऊ, अन्न धन से यज्ञशाला भरी हुई थी। ब्राह्मण और वैश्य लोगों के आसन बहुत सुन्दर लग रहे थे। एक लाख की संख्या में ब्राह्मण एक एक बार में भोजन करने के लिए बिठाये जाते थे। उसकी सूचना देने के लिए नगाड़ा

दिन में कई बार बजाया जाता था। कई दिन तक वह भोज हुआ। वहाँ दही और घी के कुंड भरे हुये थे और अन्न का पहाड़ लगा हुआ था। परोसने वाले उत्तम ब्राह्मणों की संख्या एक हजार से अधिक थी। बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन परोसा जाता था।

यज्ञ का कार्य आरम्भ होने पर व्यास इत्यादि ऋषियों ने युधिष्ठिर को कई प्रकार की शिक्षा दी। युधिष्ठिर ने अश्वमेध की सिद्धि के लिए अनेक प्रकार का दान किया। बेल, कत्था और ढाक के छः छः स्तम्भ खड़े किये गये। सोने का भी स्तम्भ खड़ा किया गया। सोने की ईंटों का बना हुआ त्रिकोण यज्ञ कुंड बहुत शोभा दे रहा था। उसकी वेदी का नाप अट्ठारह हाथ था। वेदमन्त्रोंके द्वारा आहुतियाँ दी गईं। प्रसन्नता की आवाजें आकाश में गूँजने लगीं। अप्सरायें नृत्य करने लगीं।

बहुत समय तक आहुतियाँ देनेके पश्चात् सब उपायों से और विधिविधान से यज्ञ समाप्त करके राजा युधिष्ठिर ने ऋत्विजों और ब्राह्मणों को फिर से दान दिया। बाद में उन्होंने अपने सारे राज्य को व्यास जी के अर्पण कर दिया। परन्तु व्यास जी ने उसे दान करने के लिये लौटा दिया। युधिष्ठिर ने फिर बहुत दान-दक्षिणा दी। इस प्रकार यज्ञ ठीक प्रकार से समाप्त हुआ। और सभी लोग युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए अपने अपने देशों और स्थानों को चले गये।

श्रीकृष्ण जी और उनके साथ सभी यादव भी द्वारका को वापस प्रस्थान कर गये।

—:०:—

आश्रम वासक पर्व

धृतराष्ट्र का वन-गमन

सूतजी कहते हैं—राजन् ! अश्वमेध यज्ञ समाप्त करके पांडव धर्मनीति पर चल कर प्रजा का पालन करने लगे। महात्मा विदुर और भाइयों सहित युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की बड़ी सेवा और आदर करते थे। कुन्ती, द्रोपदी और सुभद्रा भी गांधारी की बहुत सेवा करती थीं। पुत्रों के मरने का शोक न हो इसलिये पांडव, धृतराष्ट्र को प्रसन्न रखने का बहुत यत्न करते थे। राज्य का सब कार्य भी उन्हीं की आज्ञानुसार करते थे। परन्तु भीमसेन सबके सामने तो धृतराष्ट्र से कुछ न कहते थे परन्तु उनकी अनुपस्थिति में उन्हें बुरा भला कह देते। एक दिन धृतराष्ट्र के निकट पहुँच कर ताल ठोंककर दुर्योधन इत्यादि की निन्दा करके अपनी प्रशंसा करने लगे। इस पर धृतराष्ट्र को बड़ा क्रोध आया किन्तु वह चुप रहे।

कुछ दिन पश्चात् उन्होंने भीम की बात न प्रकट करके अपना दोष बतलाते हुए वन जाने का विचार प्रकट किया। युधिष्ठिर ने कारण पूछा। धृतराष्ट्र ने इधर उधर की बातें करके कहा—बेटा ! कारण कुछ नहीं है हमारे कुल का यही रिवाज है कि राजा बूढ़ी अवस्था में मन की शुद्धि के लिए वनों को चले जाते हैं। इस नियम का पालन करने के लिए मैं भी ईश्वरभक्ति और मन की पवित्रता के लिए वन में जाना चाहता हूँ। मेरे साथ गांधारी भी जायेगी। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाराज ! ऐसा नहीं हो सकता कि मैं तो राज्य करूँ

और आप व ां को जायें । मैंने सुना है कि आप ने नियमानुसार भोजन इत्यादि कम कर दिया है। और अब पृथ्वी पर ही सोते हैं परन्तु यह बात तो मुझे आज ही मालूम हुई है । पहले मालूम होता तो आप को ऐसा न करने देता। मुझे धिक्कार है आप की अनुपस्थिति में मैं राज्य कैसे करूंगा ? राज्य तो आपका है। आप इसको सम्हालिए मैं वन को जाऊँगा । मुझे दुर्योधन पर तनिक भी रंज नहीं है, जो कुछ किया कालचक्र ने किया। आप वन में चले जायेंगे तो हम किसके आधीन रहेंगे । आप को यहाँ जो कष्ट हो' मुझे बताइये ।

धृतराष्ट्र ने कहा-"कष्ट कुछ भी नहीं है बस मुझे वन जाने की आज्ञा दो। हे संजय ! तुम युधिष्ठिर को समझा दो इतना कहकर धृतराष्ट्र पुत्रशोक और अपने कृत्यों तथा बड़े महानाश को याद करके मूर्छित हो गये। यह देख कर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। वह तत्काल शीतल जल मँगाकर उनपर छींटे देने लगे और कई प्रकार से उनको होश में लाने का यत्न करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनको होश आगया। तब धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को प्रसन्न होकर गले से लगा लिया । उस समय धृतराष्ट्र बहुत कमजोर हो गये थे कारण यह कि उन दिनों उन्होंने आठवें दिन अन्न खाने का नियम कर रखा था। युधिष्ठिर उनके शरीर पर बा बार हाथ फेरने लगे। उस समय मोह का साम्राज्य छा गया। कुन्ती और गांधारी इत्यादि सब स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। उस समय व्यास जी ने आकर युधिष्ठिर को भिन्न विधियों से उपदेश देकर समझाया और कहा कि धृतराष्ट्र की आयु अब बहुत कम है, इसलिए अब इनको वन में चले जाना चाहिए। राजाओं को वृद्धावस्था में वन में चले जाने का नियम सनातन है। धृतराष्ट्र एक अच्छे रास्ते पर चल रहे हैं। तुम उनको मत रोको।"

व्यास जी के समझाने पर युधिष्ठिर ने हठ छोड़ दिया व्यास जी अपने

आश्रम को चले गये। युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्र के वन गमन की तैयारी करने लगे। उस समय धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को राजनीति के सम्बन्ध में भिन्न प्रकार से उपदेश दिया और युधिष्ठिर ने शान्ति से सब सुना।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने अपने मृतक पुत्रों का श्राद्ध करने की इच्छा प्रगट की। युधिष्ठिर ने सब प्रबन्ध कर दिया। फिर तो धृतराष्ट्र ने भीष्म द्रोण सोमदत्त और दुर्योधन तथा अभिमन्यु का विधिपूर्वक श्राद्ध किया और ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देकर प्रसन्न किया। वह श्राद्ध दस दिन में समाप्त हुआ। इसके पश्चात् वन-गमन की सारी सामाग्री ठीक हो जाने पर धृतराष्ट्र चलने को तैयार हुआ। युधिष्ठिर और दूसरे आशीर्वाद माँगने लगे। भीड़ एकत्र होने लगी। राजमहल ठसाठस भर गया। विद्वान ब्राह्मणों ने यज्ञ कराकर धृतराष्ट्र को कोपण धारण कराया। कोपण धारण करके गांधारी और दूसरे लोगों के बीच धृतराष्ट्र राजभवन से बाहर निकले। उसी समय नगर की सभी स्त्रियों ने विलाप किया। इस विलाप का वर्णन नहीं हो सकता। स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी रो रहे थे। राजा युधिष्ठिर के रोने की तो कोई सीमा न थी। वह मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। अर्जुन ने उन्हें उठाकर होश में लाने का यत्न किया। धृतराष्ट्र ने लोगों की भीड़ से वापिस चले जाने को कहा। उनके बहुत प्रार्थना करने पर लोग वापिस जाने लगे। परन्तु भीमसेन, नकुल, अर्जुन सहदेव, विदुर जी, संजय, युयुत्सु, कृपाचार्य और बहुत से ब्राह्मण अब भी उनके साथ थे। कुन्ती गांधारी की सहायता के लिए बन-यात्रा कर रही थी। स्वास्थ्य और आँखें ठीक होने के कारण से कुंती सबसे आगे चल रही थी। उसके पीछे गांधारी के कन्धे पर हाथ रखे हुए धृतराष्ट्र चल रहे थे।

उस समय के शोक और विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता।

कुन्ती की वार्ता

सूत जी कहते हैं–हे राजन् ! धृतराष्ट्र अब युधिष्ठिर इत्यादि को भी लौटाने लगे। तब युधिष्ठिर ने माता कुन्ती से कहा, "माता जी ! अब आप लौट जायें मैं वन में जाऊँगा।"

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर कुन्ती रोने लगी। परन्तु युधिष्ठिर के कहने पर कोई ध्यान न देकर गांधारी को अपना कन्धा पकड़ाये हुए आगे बढ़ती रहीं। जब कुछ दूर आगे बढ़ गई तो लौटने का विचार न करते हुए युधिष्ठिर से कहने लगी–"पुत्र ! अब तुम लौट जाओ और देखना सहदेव को बड़े प्यार से रखना। मैं उसे बहुत मानती थी और तुम्हारा भी उससे बड़ा प्रेम था। अपने भाई कर्ण को भी मत भूलना। वह वीर था। परन्तु अपनी अज्ञानता से मारा गया। मैंने बड़ा अपराध किया है कि उस सूर्यदेव के वर-पुत्र को तुम पर प्रगट नहीं किया और अब उसके सौ-सौ टुकड़े कर दिए जाने पर भी जीवित हूँ। हे बेटा ! तुम उस कर्ण के निमित्त जितना हो सके दान देना और भाइयों से भी दान दिलवाना। भीम, अर्जुन और नकुल पर भी कृपा रखना। सब पर विश्वास रखने से ही तुम्हारा कल्याण होगा। यह मेरा अन्तिम उपदेश है। मैं अब कदापि न लौटूंगी और अपने सास ससुर की सेवा करने के लिए वन को ही जाऊँगी।"

इस बात को सुनकर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। वह थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् बोले "हे माता ! आपने यह क्या निश्चय किया है ? आप को ऐसा कहना उचित नहीं। मैं आपको वन जाने के लिए न कहूँगा। आप मुझे बहुत प्रिय हैं। यदि आप को वन ही जाना था तो शत्रुओं को मारने के लिए हमें क्यों उकसाया। अब तो आप की और श्रीकृष्ण जी की कृपा से राज्य मिल ही गया है, फिर आप मुझे क्यों त्यागती हैं। हमको क्षत्रिय-धर्म

पर दृढ़ रखकर अब आप को नहीं छोड़ना चाहिए। आप इस वैभवशाली राज्य तथा पुत्रों और बहुओं को छोड़कर इस निर्जन वन में अकेली कैसे रहेंगी?

युधिष्ठिर के इन वचनों को सुनकर कुन्ती कोई उत्तर न दे सकी और आँखों में प्रेम के आँसू भर कर आगे बढ़ने लगी। तब महाबली भीमसेन ने कहा, "हे माता! आप को यह विचार कहाँ से उत्पन्न हुआ कि आपको पुत्रों के विजय किये हुए और सुन्दर सुख भोगने योग्य राज्य को छोड़कर वनों में चला जाना उचित जान पड़ रहा है। यदि आपको ऐसा ही करना था तो युद्ध से पहले हम लोगों को संसार का नाश करने के लिए क्यों उकसाया था? हे माता! मैं आप से निवेदन करता हूँ कि आप वन को न जायें। भला कुछ समय तक तो हमारे परिश्रम से कमाये हुए धन को भोगिए।"

भीमसेन के ऐसा कहने पर भी कुन्ती ने कुछ उत्तर न दिया। और शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ती गई। द्रोपदी और सुभद्रा सहित सभी स्त्रियाँ विलाप के समुद्र में डूब गईं। वह बहुत दुःखी होकर रोती हुई कुंती के पीछे पीछे चलीं। कुन्ती अपने पुत्रों को बार-बार देखकर रोती और आगे बढ़ने लगी।

हम सब पाँचो भाई अपनी स्त्री सहित वन में जानेवाली कुन्ती के पीछे चलते रहे। तब कुन्ती ने धैर्य और सब्र के साथ कहा, "हे मेरे वीरपुत्रो! यह बात सच है कि युद्ध से पहले मैंने आप लोगों को युद्ध के लिए साहस दिलाया और शत्रु को नष्ट करने के लिए उकसाया। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि तुम मुझे दोषी ठहराओ। उस समय तुम कौरवों से एक-एक पल पर लज्जित और अपमानित किये जाते थे। ऐसी अवस्था में यदि मैं तुम्हें साहस न दिलाती तो क्या करती? उन दिनों तो मैं तुम्हारे दुःखों से पीड़ित होकर यह सोचा करती थी कि किसी प्रकार पांडवों का नाश न हो

और पांडव किसी प्रकार अपमानित न हों। मुझे दिन-रात तुम लोगों का साहस बढ़ाने की चिन्ता लगी रहती थी और मैं सोचा करती थी कि वह समय शीघ्र आवे जब पांडवों का बोल बाला हो। मैं यह नहीं चाहती थी कि मेरे पुत्र किसी और का मुंह ताकें और पराये के आधीन रहें। आप लोगों को उकसाने का मेरा यही मतलब था। मैं यही चाहती थी कि तुम लोगों में ऐसे कुल का संचार हो कि तुम इन्द्र के समान तेज को पा सको और किसी प्रकार के दुःख को न भोगो। इसलिए इस बात को सोचकर कि दस हजार हाथियों के समान बल रखनेवाला मेरा बेटा नष्ट न हो जाये। इसीलिए मैंने तुम लोगों को साहस दिलाया और युद्ध के लिए उकसाया। मैं हर समय यही सोचा करती थी कि इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन को कोई हानि न पहुँचा सके। और गुरुजनों में श्रद्धा रखनेवाले नकुल और सहदेव किसी प्रकार का दुःख न उठावें। इसी प्रकार से हे पुत्रो, मुझे द्रोपदी की भी बहुत चिन्ता रहती थी। हे भीमसेन! इस कुटुम्ब का नाश होना तो मुझे उसी समय मालूम हो गया था, जब भरी सभा में अज्ञानी दुःशासन ने मेरे सामने कोमलांगी द्रोपदी को दासियों के समान पृथ्वी पर घसीटा था। हे बेटा! मुझे वह समय नहीं भूलता जबकि द्रोपदी ने ईश्वर की दुहाई देकर अत्यन्त करुणाजनक विलाप किया था। और वहीं पर बैठे हुए मेरे ससुर इत्यादि कौरव लोग व्याकुल हो गए। जब उस द्रोपदी की लम्बी चोटी को महापापी दुःशासन पकड़ कर खींच रहा था। तब द्रोपदी की लज्जा और अपमान की क्या कोई सीमा थी? यही कारण था कि मैंने शत्रु को नष्ट करने के लिए तुम्हें साहस दिलाया। मेरा केवल यही स्वार्थ था कि मेरे पुत्र अपने पिता के राज्य को पाकर सुख भोगें। परन्तु अब तुम लोग मुझसे ऐसा प्रश्न करते हो कि हमें युद्ध के लिए क्यों उकसाया और अब वन को क्यों जाती हो? हे पुत्रों! अब राज्य को पाकर तुम सुख भोगो और दान करो। मुझे इन वनवासी सास ससुर जैसी जेठ-जेठानी की सेवा करने दो। मुझे राज्य के सुख और भोग

की लालसा नहीं है। मैं तो अब इन्हीं की सेवा करूंगी और अपना जीवन सफल करूंगी। इसलिए अब तुम सब नगरनिवासियों सहित लौट जाओ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

धृतराष्ट्र-दर्शन

सूत जी कहते हैं -हे राजन्! यह कह कर कुन्ती जब अपने जेठ और जेठानी के साथ वन की तरफ चल पड़ी, तब पांडवों और नगरनिवासियों ने बड़ा शोक प्रगट किया। धृतराष्ट्र ने उनसे कहा, "मैं आप लोगों का प्रेम देख कर बड़ा प्रसन्न हूँ। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप लोग यही प्रेम पांडवों से भी करेंगे।"

इस प्रकार सब लोगों को समझाकर धृतराष्ट्र गांधारी के कन्धे पर हाथ रखकर चल पड़े। कुछ ही समय में वह भयंकर वन में जा पहुँचे और उन्होंने तपस्या के लिए समाधि लगा दी।

पांडव हस्तिनापुर लौट आये।

वापिस आ तो गए परन्तु धृतराष्ट्र इत्यादि के वन-गमन का दुःख उन्हें बहुत था। कभी-कभी तो युद्ध के उस भयंकर परिणाम को देखकर युधिष्ठिर व्याकुल हो जाते। उसी प्रकार द्रौपदी और सुभद्रा भी पुत्र अभिमन्यु को याद करके बहुत उदास हो जातीं। पर किसी प्रकार अपने पौत्र, उत्तरा के पुत्र परीक्षित को देखकर वह मन को सान्त्वना देती और मन में धीरज रखतीं।

इसी प्रकार जब पांडवों को माता कुन्ती की याद आती थी तो वह बहुत दुःखित हो जाते थे। पहले तो कुछ समय तक राज्य का कार्य चलाने में उनका मन लगा भी रहा, परन्तु सबके वन चले जाने पर उनका मन राजधानी में बैठकर राज्य करने को न होता था। वह यही सोचा करते थे कि माता कुन्ती और चाचा धृतराष्ट्र वन के दुःखों को कैसे सहन करेंगे?

कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो जाने पर युधिष्ठिर ने धृततराष्ट्र को देखने की इच्छा प्रगट की। तब राज्य का प्रबन्ध दूसरे मंत्रियों इत्यादि को सौंपकर शुभ मुहूर्त में कुछ सेना साथ लेकर वह वन को चले। चलते-चलते जब वह धृतराष्ट्र के वन में पहुँचे, तब सब लोग अपनी सवारियों से उतरकर पैदल चलने लगे। तभी कुछ दूर चलने पर आश्रम आगया। आश्रम पर पहुँचकर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को न देखकर आश्रम के तपस्वियों से पूछा, "हे साधू! हमारे चाचा धृतराष्ट्र जी कहाँ हैं? हम उनके दर्शनों के लिए आए हैं।'

तपस्वियों ने जमना का मार्ग बतलाकर कहा, "वह स्नान करने और पूजा के फूल इत्यादि लेने गए हैं। यदि आप इस रास्ते से जायेगें तो दर्शन हो जायेगें"।

युधिष्ठिर उसी ओर चल पड़े। कुछ दूर जाकर देखा तो संजय, गांधारी और कुन्ती समेत धृतराष्ट्र जमना-स्नान करके आरहे हैं। देखते ही युधिष्ठिर की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।। हृदय गद्गद हो गया। गला रुंध गया और बारी-बारी सबके पाँवों पर गिर कर चरण वन्दना करने लगे कुन्ती ने धृतराष्ट्र और गांधारी से कहा, "आयें पांडव आये हैं।

धृतराष्ट्र ने हाथ से टटोलकर सबको देखा और समाचार पूछा।

युधिष्ठिर थोड़ी देर के लिए चुप हो गए। बाद में कुशल-प्रश्न करते हुए सब लोग आश्रम पर आये।

आश्रम पर पहुँचकर युधिष्ठिर ने पूछा, "महाराज विदुर जी कहाँ हैं?"

धृतराष्ट्र ने कहा, "बेटा! विदुर यहाँ नहीं रहते। वह तो जबसे यहाँ आये हैं उसी दिन से हम लोगों का साथ छोड़कर वह सामने वाले घने जंगल में रहकर ईश्वर की भक्ति करते हैं। पहले तो वह कुछ भोजन इत्यादि भी खाते थे, परन्तु अब तो केवल वायु पर ही जीवित रहते हैं। परमात्मा की कृपा से वह हैं तो कुशल से, मगर बहुत निर्बल हो चुके हैं। अब शरीर में

हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गई हैं। कभी-कभी लोग उनको वन में घूमता हुआ देखते हैं।"

धृतराष्ट्र इतना कह ही रहे थे कि इतने में एक तपस्वी ने उँगली उठा कर युधिष्ठिर का ध्यान वन की तरफ दिला कर कहा—"वह देखो विदुर जी चले आरहे हैं।"

तपस्वी का यह कहना था कि विदुर जी से मिलने के लिए युधिष्ठिर वन की तरफ दौड़ पड़े। परन्तु उनको अपनी तरफ आता देखकर विदुर जी और अधिक घने वन में घुस गए। युधिष्ठिर पुकारते ही रह गए, मगर विदुर जी ने कोई उत्तर न दिया। सब लोग चकित हो गये कि यह क्या बात है? युधिष्ठिर भी उस घने वन में घुस गए। कुछ देर तक ढूँढ़ने पर युधिष्ठिर ने देखा कि विदुर जी एक पेड़ की ओट में खड़े-खड़े उनकी ओर देख रहे हैं। युधिष्ठिर को आशा थी कि विदुर जी अब कोई बात करेंगे। परन्तु बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी जब विदुर जी न बोले तो युधिष्ठिर ने निकट जाकर उनको पकड़ लिया और हिलाया मगर युधिष्ठिर ने देखा कि उनके शरीर में प्राण नहीं थे। विदुर ने अपनी आँखें युधिष्ठिर की आँखों से मिलाकर योग से अपने प्राण को उनके शरीर में मिला दिए थे। इस प्रकार विदुर जी की मृत्यु से युधिष्ठिर को बहुत दुःख हुआ। वह भीम इत्यादि को साथ लेकर विदुर जी के मृतक शरीर को अग्नि संस्कार के लिए उठाने लगे—परन्तु तभी यह आकाशवाणी हुई, "विदुर जी बहुत धर्मात्मा थे। इसलिए इनको न जलाओ।"

इस आकाशवाणी को सुनकर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के आश्रम पर लौट आये।

विचित्र चमत्कार

इसके दूसरे दिन महर्षि वेदव्यास जी ने आकर धृतराष्ट्र इत्यादि को उत्तम-उत्तम उपदेश दिया। राजा युधिष्ठिर ने कहा,—"हे भगवन्!

आपने कहा था कि मैं एक चमत्कार दिखाऊँगा सो उसे कब दिखाइयेगा ?"

व्यास जी ने कहा, "अच्छा सब लोग गंगातट पर चलो ।"

धृतराष्ट्र इत्यादि सब लोग गंगातट पर आ गए । गंगा के तट पर पहुँचने पर व्यास जी ने कहा, "सब लोग आँखें बन्द कर लो ।"

सबने आँखें बन्द कर लीं । तब व्यास जी अपनी युक्ति लड़ाकर कहा, "अच्छा अब आँखें खोल दो ।"

सबने आँखें खोल दीं । तब लोग क्या देखते हैं कि युद्ध में जितने लोग मर गए थे, सब नया शरीर धारण करके, अच्छे कपड़े तथा आभूषण पहने उनके सामने खड़े हैं । सबके आगे गंगानन्दन भीष्म और आचार्य द्रोण अपने सैनिकों समेत खड़े थे । उनके पीछे द्रुपद, विराट, द्रोपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, घटोत्कच, कर्ण, दुर्योधन, शकुनी, दुःशासन, राजा भगदत्त इत्यादि सब वीर गंगा से निकल कर उनके सामने आ खड़े थे । युद्ध के समय उनकी जो सूरतें थीं वह उसी प्रकार दिखाई दे रहे थे । परन्तु युद्ध में जैसा उनमें वीर चाव था, अब नहीं था । सभी प्रसन्न मुख तथा अत्यंत प्रेम-भीने चाव से अने-सने खड़े थे । दो घड़ी बात करके वह सब फिर गंगाजल में घुस गए । व्यास जी ने स्त्रियों से कहा, "जिसे अपने पति के पास जाने की इच्छा है वह गंगाजल के पानी में डूबे ।" दुर्योधन आदि की स्त्रियाँ डुबकी लगाकर अपने पतियों से जा मिलीं । व्यास जी धृतराष्ट्र से अलग होकर अपने आश्रम की तरफ चले गये ।

सबसे अन्त में धृतराष्ट्र इत्यादि भी अपने आश्रम की तरफ चल पड़े ।

युधिष्ठिर का हस्तिनापुर-गमन

सूत जी कहते हैं–हे राजन् ! दो दिन के बाद धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, "बेटा ! अब तुम सब लोग हस्तिनापुर लौट जाओ क्योंकि तुम्हारे

यहाँ रहने से हमारा तप-काल ठीक-ठीक व्यतीत नहीं होता है। इतना बड़ा राज्य तुम किसके सहारे छोड़कर यहाँ आये हो ?

युधिष्ठिर ने बड़े आदर से कहा, "महाराज! अब मुझे हस्तिनापुर जाने की इच्छा नहीं है। एक तो आप लोगों को यह वृद्ध अवस्था और दूसरे यह ख्याल कि राज्य से तप उत्तम है। आप स्वयं जानते हैं कि मैं सदा से परमार्थ और सत्यमार्ग की ओर प्रवृत्त रहा हूँ। युद्ध के पश्चात् भी मेरा विचार ऐसा ही था। परन्तु पितामह और आप सब की आज्ञा मुझे स्वीकार करनी पड़ी। युधिष्ठिर का यह कहना सुनकर धृतराष्ट्र से नकुल और सहदेव ने भी यही कहा कि हम हस्तिनापुर वापिस न जायेंगे। राज्य तो किसी गिनती में नहीं। तपस्वी माता-पिता और आश्रम के लोगों की सेवा से बढ़ कर कोई भी वस्तु नहीं। पुत्रों के इस विचार को सुनकर गांधारी और कुंती समेत प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। परन्तु परमार्थ मार्ग में विघ्न पड़ रहा है, यह सोचकर उन्होंने युधिष्ठिर इत्यादि को समझाना आरम्भ किया। गांधारी और कुंती ने बहुत समझाया। आश्रम के तपस्वियों ने भी युधिष्ठिर को कई प्रकार से उपदेश देकर कहा, "राजन्! आप हस्तिनापुर को चले जाइए" इस प्रकार सबके समझाने पर युधिष्ठिर हस्तिनापुर को जाने पर सहमत हो गए और दूसरे दिन प्रातः सबको चरणवन्दना करके भाइयों सहित युधिष्ठिर हस्तिनापुर को लौट गये।

वनवासियों का अन्त

उधर पांडवों को वापिस भेजकर धृतराष्ट्र इत्यादि हरिद्वार के एक वन में पहुँचे। वह वन बड़ा सुहावना और तप करने योग्य था। वहीं पर एक बृहद् कुटिया बनाकर सब लोग अपना तप-काल व्यतीत करने लगे। एक दिन जब संजय, कुंती और गांधारी के साथ धृतराष्ट्र गंगा स्नान करके लौट रहे

थे, तब वन में आग लग गई। आश्रम कुछ दूर था। वह प्रचंड अग्नि लपटें फैलती हुई धृतराष्ट्र इत्यादि के भी निकट आगई। तब घबराकर धृतराष्ट्र ने संजय से कहा, 'मैं तो इतना दुर्बल हूँ कि भागकर भी जान नहीं बचा सकता, परन्तु मेरे साथ तुम अपनी जान क्यों गँवाते हो। शक्ति के रहते हुए शरीर त्याग देना पाप है। इसलिए भागकर अपनी जान बचा लो, नहीं तो ऐसा मालूम हो रहा है कि अग्नि की लपटें हमारे साथ तुमको भी निगल जायेंगी। रही हमारी बात सो हम लोग अब शरीर त्यागने के योग्य हैं। दूसरी रीति से मरने से तो अच्छा है कि अग्नि में भस्म होकर ही मर जायें।

धृतराष्ट्र के इस प्रकार के कहने पर संजय उनको, माता कुन्ती को तथा गांधारी को प्रणाम करके भाग चला।

संजय के भाग जाने पर धृतराष्ट्र, माता कुन्ती और गान्धारी ने तत्काल समाधि लगाली।

अग्नि ने धीरे-धीरे उन्हें चारों ओर से घेर कर वहीं का वहीं भस्म कर दिया।

संजय वहां से भागकर गंगा तट पर पहुंचा। वहां देवर्षि नारद से उनकी भेंट हुई। त्रिकाल दर्शी नारद तो स्वयं इस लीला को देख रहे थे। परन्तु संजय ने भी पहुंचकर उनको सब हाल सुना दिया।

वनवासियों का श्राद्ध

सूत जी कहते हैं कि—हे राजन्! इधर युधिष्ठिर को हस्तिनापुर पहुँचे दो वर्ष व्यतीत हो गए। अब तक उनको वनवासियों का कोई समाचार न मिला था। इसलिए वह बड़े चिन्तित रहा करते थे। एक दिन नारद जी हस्तिनापुर पधारे। युधिष्ठिर जी ने नारद जी का सत्कार करके समाचार पूछा। नारद जी ने हरिद्वार की कथा, जिस प्रकार वन में आग लगी और

जिस प्रकार धृतराष्ट्र, गांधारी तथा कुन्ती इत्यादि उस आग में जल मरे और जैसे भागकर संजय ने अपनी रक्षा की, सब हाल युधिष्ठिर को कह सुनाया। इसे सुनकर युधिष्ठिर विलाप करते हुए कटे वृक्ष के समान धरती पर गिर पड़े। चारों ओर शोर मच गया। सब लोग दौड़े। नारद जी ने सबको शान्त किया।

इसके पश्चात् जब युधिष्ठिर को होश आया तो नारद जी ने अनेक प्रकार के उपदेश देकर उनका दुःख दूर करके श्राद्ध इत्यादि करने का उपदेश दिया।

तब, जब नारद जी चले गये, युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को बुलाकर वनवासियों का श्राद्ध किया।



मूसल पर्व

प्रकृति का प्रकोप

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! अब पांडवों को राज्य करते पैंतीस वर्ष व्यतीत हो गए। वह पैंतीस वर्ष दुर्घटना रहित बड़े सुख और आरामपूर्वक बीते। परन्तु छत्तीसवें वर्ष में उनके सामने कई समस्याएँ उठ खड़ी हुईं। यद्यपि कृष्ण जी उस समय तक द्वारका में ही थे परन्तु फिर भी भोजवंशियों और वृष्ण वंशियों का नाश हो गया। समय बदलता रहता है। जिसकी उन्नति होती है उसका पतन भी अवश्यम्भावी है। जहाँ अधिक सुख और आनन्द है वहाँ दुःख और चिंता भी अवश्य आती है। सो इसी नियम के अन्तर्गत दोनों वंशों में बहुत सारे परिवर्तन आगये। जहाँ श्रीकृष्ण के उपदेशामृत से साधारण लोगों का कल्याण हो रहा था और सब लोग भगवान् समान उनकी पूजा, उनके नाम का जप और उनका ध्यान करते थे, वही उनके कुल के यादव, अंधक और यदुवंशियों में पापाचार की अधिकता हो रही थी। धन और ऐश्वर्य-परायणता में डूबकर सभी यादव धर्म को छोड़ रहे थे। साधुजनों का अपमान होने लगा था। सुरा इत्यादि का प्रयोग साधारण बात हो गई थी। बुरे विचार के बालक देवताओं और सद्स्वभाव के लोगों को दुःख देने लगे थे। इस बुरी नीति को दूर करने के लिए कृष्ण जी ने बड़ा यत्न किया, परन्तु होनी होनहार है। उन्हें अपने काम में सफलता न मिली, फिर भी वह प्रयास करते ही रहे।

एक दिन दुर्वासा इत्यादि ऋषि कृष्ण जी के यहाँ आकर ठहरे। तब

प्रद्युम्न आदि ने सांभ को स्त्री बनाकर उन मुनियों से जाकर पूछा, "हे ऋषिगण ! इस बद्रुवाहन की स्त्री को क्या उत्पन्न होगा ? यह पुत्र उत्पन्न करने की बड़ी इच्छुक हैं।"

बालकों की इस शैतानी को ऋषिगण समझ गए जिससे उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने क्रोध में आकर कहा, "हे मूर्खो ! यह वसुदेव का पुत्र सांभ है या बद्रुवाहन की स्त्री ? परन्तु जब तुम लोगों को यही दिल्लगी सूझी है और दिल से मुझसे ऐसा पूछ ही रहे हो तो यह बृषण बंशियों और अंधकों के नाश करने के लिए लोहे का एक मूसल पदा करेगा। उससे तुम सब बुरी नियत वालों का तथा श्रीकृष्ण और बलदेव जी आदि सब कुल का नाश हो जायेगा। कृष्ण जी को जय व्याध मारेगा और बलदेव जी समुन्द्र में डूब मरेंगे।"

ऋषियों के श्राप को सुनकर प्रद्युम्न आदि वहाँ से भागे।

प्रातःकाल ही सांभ के पेट से लोहे का एक मूसल निकला। तब वह मूसल वसुदेव जी के पास भेजा गया। सब समाचार सुनकर वसुदेव जी ने मूसल को चूर चूर करके समुद्र में बहा दिया। और द्वारका में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी एक वर्ष तक सुरा इत्यादि का पान न करें। जो ऐसा करेगा फाँसी पर लटका दिया जायेगा।

वसुदेव जी की ऐसी आज्ञा से सब नगर निवासी सावधानीपूर्वक रहने लगे। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, बुरे काम बढ़ते ही गए। कई झगड़े और फसाद उठ खड़े हुए। ऋषियों के श्राप का पूरा वर्ष भी समाप्त न हुआ था कि अपशगुन और आन्तरिक युद्धों से द्वारकावासी बेचैन हो उठे। कभी कभी ऐसी प्रचंड आँधी चलती कि अनेकों प्राणियों का अन्त हो जाता। गर्भवती स्त्रियों के पेट से पशु और राक्षस इत्यादि उत्पन्न होने लगे। सुन्दर

भोजनों में कीड़े पड़ जाते। बिना कारण ही लोग मर जाते और पता न चलता।

बहुत सावधान रहने पर भी डरावनी सूरत वाला काल सबके सर पर सवार था। जल वर्षा के साथ हड्डियें और मांस की वर्षा होती। स्त्रियाँ अपने पुरुषें से आँख बचाकर दूसरे पुरुषें से व्यभिचार करने लगीं। अग्नि का रंग पीला हो गया। देवयज्ञ के स्थानों में राक्षस उत्पात मचाने लगे। रात के समय जब स्त्रियाँ सो जाती तब डरावनी सूरत वाली राक्षसनियाँ उनके घरों में प्रविष्ट होकर अच्छी-अच्छी वस्तुओं को चुरा लेती। रात को सोये हुए मनुष्यों के शरीरों को चूहे कुरेदने लगते। यही नहीं श्रीकृष्ण जी का सुदर्शन चक्र और चारों घोड़ों समेत उनका रथ आकाश को उड़ गया।

यदुकुल का नाश

इन बुरे लक्षणों को देखकर कृष्ण जी ने समझ लिया कि परिस्थति गंभीर है। उन्होंने सारी द्वारका में यह समाचार फैला दिया कि परिस्थति गंभीर है और भी सावधान होकर रहें। लोग प्रभास क्षेत्र की तीर्थयात्रा करने चले। नगरनिवासियें के साथ श्री कृष्ण जी भी गए। वहाँ पहुँचकर एक तरफ़ धार्मिक व्यक्तियों ने स्नान किया और दान दिया और दूसरी ओर कुप्रकृति के लोग बुरे काम करने लगे। कोई शराब पीने लगा और कोई झगड़ा करने लगा। वीर सात्यकि और कृतवर्मा जैसे श्री कृष्ण के भक्त भी शराब पीने लगे। शराब पी कर जब वह दोनों मदमत्त हुए तो परस्पर झगड़ने लगे। सात्यकि ने कृतवर्मा से कहा, "तू क्या बात करता है? अभिमन्यु के मारने में तू भी सम्मिलित था।"

कृतवर्मा ने कहा, "योगी भूरिश्रवा को मार कर तूने कौन सा पुण्य कमा लिया है?"

यह सुन कितने ही यादव सात्यकी के पक्षपाती हुए और कितने ही कृतवर्मा के पक्षपाती होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे। तब उन लोगों ने अपने शस्त्रों को क्षीण जान उस बनके पटेरे का शस्त्र बना युद्ध किया। तब वह एरा (पटेर) मूसलाकार केवलमात्र स्पर्श करने से ही सबका प्राण-हरण करने लगा। अधिक तो क्या ? वहाँ इन लोगों का ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि क्षणकाल में ही वहाँ की भूमि मांस और रुधिर से परिपूर्ण हो गई। तिनको युद्ध करते देख श्री कृष्ण और बलदेवजी ने बहुत निवारण किया, किन्तु उन लोगो ने इनके निवारण करने पर कुछ ध्यान न दिया। वरन ! इनको भी मारने के लिए दौड़े। तब श्रीकृष्ण और बलदेव भी एरा ले लेकर उनको मारने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण यादवों का संहार कर भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने भूमि का भारी भार उतारा। तब बलदेव जी भी समुद्र के तटपर बैठ योगाभ्यास से देह त्याग शेष रुप धारण कर समुद्र में प्रवेश कर गए। तब उनको उसी समय वासुकी आदि सम्पूर्ण नाग आय पाताल में ले गए। तब भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र भी बलदेव जी का गमन देख चतुर्भुज रूप धारण करके एकान्त में पीपल के वृक्ष का आश्रय ले दक्षिण चरण पर वाम-चरण धारण करके बैठ गए। तब उसी समय श्री कृष्ण की इच्छानुसार वहाँ जरा नामक व्याघ्र आखेट खेलता हुआ आया और उनके चरणों को मृग का मुख जान सहसा अवशेष लोहयुक्त बाण मारा और फिर निकट आय चतुर्भुज भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र को देख प्रणाम करके बोला--हे प्रभो ! मैंने बिनजाने यह गुरुतर अपराध किया है, सो आप क्षमा करके मेरा वध कीजिए। इस प्रकार जरानामक व्याध का वचन सुन श्रीकृष्ण बोले–हे जरा ! तुमकुछ भयभीत मत हो क्योंकि तैंने मेरी इच्छानुसार ही यह कार्य किया है। अतएव ! अब तू मेरी आज्ञा से विमान में बठकर स्वर्ग को चलाजा। इस प्रकार श्रीकृष्ण के कहते ही अन्तरिक्ष से एक विमान उतरा जिसमें वह व्याध

बैठ उसी समय स्वर्ग को चला गया। इसके उपरान्त दारुक नामक सारथी श्रीकृष्ण को ढूँढ़ता ढूंढ़ता वहाँ आया और श्री कृष्ण को देख अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उसी समय उसका रथ अश्वोंसहित उड़कर आकाश में चलागया। यह देख दारुक अति विस्मित हुआ। तब श्रीकृष्ण दारुक से बोले–हे सारथी! तुम द्वारिका में जाय वसुदेवादिकों से बलदेव जी की स्वर्ग-यात्रा, यदुकुल संहार और मेरी दशा कहदो और यह भी कहना कि अब तुम लोग द्वारिकापुरी में बास मत करो, क्योंकि समुद्र अब बहुत शीघ्र उसको डुबोदेगा, इससे स्त्री पुरुष वृद्धजन और वज्रनाभ सबको अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ में जाकर वास करना चाहिए. यह कहकर श्रीकृष्ण ने दारुक सारथी को द्वारका भेजा इसके उपरान्त ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता अपने अपने विमानों में बैठकर उस स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र का दर्शन करने के लिए आये। तब श्रीकृष्ण ने यह जो अपनी विभूति देव, सिद्धि ऋषि, गन्धर्व और अप्सरा आदि को देख नेत्र मूँद योगाभ्यास द्वारा निज रूप धारणकर बैकुण्ठ में प्रवेश किया, और जिस प्रकार मेघमाला से निकलकर जाती हुई बिजली की गति नहीं जानी जाती है इसी प्रकार श्रीकृष्ण की गति ब्रह्मादिक देवताओं ने भी नहीं जानी। इसके उपरान्त ब्रह्मादिक देवतागण भी अपने अपने स्थान को चले गए। तदनन्तर दारुक सारथी ने द्वारिका में जा वसुदेव इत्यादि से सब वृतान्त कहा। तब वसुदेव अर्जुनके सामने ही अत्यंत विलाप करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। तब अर्जुन भी हा राम! हा कृष्ण! हा सात्यकी! हा प्रद्युम्न तुम मुझको अकेला छोड़कर कहाँ चले गए? कहकर विलाप करने लगे। इस प्रकार अर्जुन के विलाप को सुन योगीस्वर भी रुदन करने लगे और फिर जिस स्थानमें प्रतिदिन नृत्यगीत, और उत्सव होते थे, उस मन्दिर में श्रीकृष्णकी स्त्रियों का विलाप सुन अर्जुन ने रात्रि बिताई

और प्रातः काल होते ही पुत्र वियोग से व्याकुल वसुदेव, देवकी आदि स्त्रियों ने सुरपुर गमन किया और रुक्मिणी व सत्यभामा आदि स्त्रियाँ श्रीकृष्ण का स्मरण कर अग्नि में प्रवेश कर गई। इसके उपरान्त अर्जुन ने मृतकों को जलांजलि दी और फिर स्त्रियों सहित वज्रनाभ को संग लेकर द्वारिका से प्रस्थान किया। तब तत्काल समुद्र अपनी बड़ी बड़ी लहरों से द्वारिकापुरी को डुबो दिया तदनन्तर अर्जुन को व अलंकारादि धारण किए हुए स्त्रियों को अर्जुन के संग जाते देख भीलों ने रोका और फिर अपने अंगों में उन भीलों को लाठियों का प्रहार करते देख अर्जुनने भी अपना गांडीव धनुष सम्हाला किंतु जितने बाण अर्जुन ने उन पर चलाए सो सब निष्फल हुए और प्रत्यंचा भी नहीं खिंच सकी। तब अर्जुन विचार करने लगा कि यह स्वप्न देख रहा हूँ अथवा मैं कुछ और होगया हूँ। इस प्रकार विचार करते अर्जुन के सम्मुख ही उन भीलों ने स्त्रियों को लूट लिया किन्तु तो भी उन दिव्य स्त्रियों के चीर हरण की रक्षा अर्जुन नहीं कर सके। तब अपने जन्म को तुच्छ मानकर अर्जुन बोले-हे पृथ्वी अब तू विदीर्ण होकर मुझको स्थान दे, जिससे कि मैं अपना कलंकित मुँह किसी को न दिखाऊँ। इसी बीच में उन स्त्रियों के वस्त्रालंकार हरण करके चोर वन में भाग गए। तब किसी पुरुष ने कहा कि गति बड़ी कराल है जो विश्वविजयी अर्जुन को भीलों ने जीत लिया। तदनन्तर अर्जुन बची हुई स्त्रियाँ और वज्रनाभ के सहित इन्द्रप्रस्थ में आये और फिर वज्रनाभ को वहाँ का राज्य दे आप हस्तिनापुर को चले गए। तदनन्तर श्रीकृष्ण के अंतर्ध्यान व भीलों से परास्त होने के कारण अर्जुन अत्यंत व्याकुल चित्त से चिन्ता करते हुए जारहे थे, तब मार्ग में भगवान् श्री वेदव्यास जी ने मिलकर कहा-हे अर्जुन! काल क्या नहीं करता है। सब देवता

इसके अनुग्रह की इच्छा करते हैं, सूर्य चन्द्रमा का भी प्रकाश हरता है, सब देवता भी इसके वश में हैं। यदि संसार के सब पदार्थ अन्त में नष्ट न होते तो अत्यंत कष्ट साध्य तप कौन करता ? इस प्रकार कहकर भगवान् वेदव्यास जी अन्तर्ध्यान हो गए। तब अर्जुन को वेदव्यास जी के वचनों से धैर्य हुआ और यदुकुल संहार व भीलों से परास्त होने के दुःख को छोड़ हस्तिनापुर में पहुँचा।

इति मूसल पर्व समाप्तम्



महाप्रस्थानक पर्व

पाण्डवों का महाप्रस्थान

सूत जी कहते हैं --हे राजन् ! यदुकुल के नाश की बात सुनकर युधिष्ठिर को बहुत दुःख हुआ । इसलिए उन्होंने वन में जाने का विचार किया और हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को सौंपकर य्योसो और सुभद्रा को कह दिया कि उसको देखभाल करें । क्योंकि परीक्षित राजकाज में अनुभवी नहीं है । इसके बाद युधिष्ठिर बहुत दान दक्षिणा देकर मार्कण्डेय, भारद्वाज, और याज्ञवल्क्य इत्यादि ऋषियों का पूजन करके नगर-निवासियों को धीरज दे अपना भेष बदल कर यात्रा की तैयारी करने लगे । उनकी इस तैयारी से नगर में खलबली मच गई। लोग शोक प्रगट करने लगे । विशेषरूप से उस समय जब पांडवों ने राजसीपरिधान उतार कर भिक्षुकों का बाना पहना। उस समय लोगों के दुःख की सीमा न रही । पांडवों की तरह द्रौपदी ने भी तपस्विनी का सा भेष बदल लिया । द्रौपदी के इस भेष को देखकर स्त्रियाँ विलाप करने लगीं । चारों ओर से स्त्री और पुरुषों की भीड़ एकत्र हो गई । लोग मना करने लगे, परन्तु युधिष्ठिर ने एक न सुनी । वह तत्काल तैयारी करके द्रौपदी और भाइयों को साथ लेकर नगर के बाहर होगए । नगर-निवासियों ने अनुसरण किया किन्तु कुछ दूर जाने पर युधिष्ठिर ने उन सब को विनम्र स्वर में समझाकर लौटा दिया।

अब पांडव द्रौपदी को साथ लेकर नगर के उत्तरी भाग की ओर चल पड़े। इतने में नगर से निकलकर एक काला कुत्ता भी उनके पीछे हो लिया। अब कुत्ते समेत सातों प्राणी कई नगरों, वनों को पार करते लोहिती सागर पहुँचे। लोहिती सागर पर ब्राह्मण के भेष में अग्नि देवता से उनकी भेंट हुई। अग्नि देव ने युधिष्ठिर से कहा, "खांडव वन जलाये जाने के समय मैंने अर्जुन को जो गांडीव धनुष दिया था, वह मुझे मिल जाना चाहिए।"

युधिष्ठिर ने अर्जुन को गांडीव लौटा देने को कहा। अर्जुन ने इन्कार कर दिया। इसपर अग्निदेव कुपित हुए। अग्निदेव ने कहा, "अर्जुन! गांडीव के मोह में मत पड़ो। जब तुम्हारे ही शरीर का ठिकाना नहीं है तब गांडीव लेकर क्या करोगे? तुम न भी दोगे तब भी गांडीव जिसका है उसीके पास चला जायगा। देखो, श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र पहले ही चला गया। तुम्हारा रथ भी पहले ही नष्ट हो चुका है फिर हठ करके गांडीव क्यों रखते हो?

इस पर विवश होकर अर्जुन ने गांडीव दे दिया। अग्निदेव चले गए। पांडव फिर उत्तर की ओर बढ़ चले।

पांडवों का अन्त

सूत जी कहते हैं–हे राजन्! इस प्रकार चलते हुए पांडव बद्रिकाश्रम और कैलाश पर्वत को पार करके जब सुमेरु पर्वत की ओर बढ़े तब उन्हें चार सौ कोस की बर्फ की एक लम्बी चट्टान मिली। यह लोग उस पर चलने लगे। सबसे आगे युधिष्ठिर चल रहे थे। उनके पीछे पंक्तिबद्ध भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव, द्रौपदी और वह कुत्ता चल रहा था। कुछ दूर जाने पर द्रौपदी के पांव गल गए। वह जमीन पर गिर पड़ी। भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर से कहा, "महाराज! द्रौपदी गिर पड़ी। आप ने कहा था कि इस बर्फ

की चट्टान पर पापी नहीं चल सकता परन्तु इसने तो कोई पाप नहीं किया। फिर यह क्यों गिर पड़ी ?

युधिष्ठिर ने कहा, "यह सदा अर्जुन से ही अधिक प्रेम करती थी इसलिए इस पाप से इसका यह शरीर गिर पड़ा।"

यह कहकर बिना पीछे की ओर देखे ही युधिष्ठिर आगे बढ़ गए। कुछ दूर चलने पर सहदेव भी गिर पड़े। भीम ने कहा, "महाराज! सहदेव भी गिर पड़े। इसका क्या कारण है?"

युधिष्ठिर ने कहा, "यह अपने समक्ष किसी को बुद्धिमान् नहीं समझता था। इससे इसका भी शरीर गिरा।"

फिर कुछ दूर आगे बढ़ने पर नकुल गिरे। भीम ने कहा, "महाराज नकुल भी गिर पड़ा।"

युधिष्ठिर ने कहा, 'गिरने दो इसे अपनी सुन्दरता पर बहुत गर्व था।'

ऐसा कहकर युधिष्ठिर बिना किसी ओर देखे ही आगे बढ़ते गए। तब कुछ दूर जाकर अर्जुन गिर पड़े।

तब भीम ने अर्जुन के गिरने का कारण पूछा।

युधिष्ठिर ने कहा, "यह अपने सामने सबको छोटा समझता था। इसे भी गिरने दो।"

युधिष्ठिर यह कहकर ज्योंही कुछ दूर आगे बढ़े कि स्वयं भीमसेन गिर पड़े। गिरते समय भीम ने युधिष्ठिर से कहा, 'महाराज! मैं तो आप को बहुत प्रिय था। परन्तु मैं भी गिर पड़ा। मैं क्यों गिरा?'

युधिष्ठिर ने कहा, 'तुम अपने को सबसे शक्तिशाली समझते थे और भोजन भी अधिक खाते थे।

इन्द्र युधिष्ठिर वार्ता

अब सिर्फ काले कुत्ते को ही साथ लेकर युधिष्ठिर जल्दी रास्ता तय करने लगे। कुछ दूर आगे बढ़े थे कि इन्द्र इत्यादि देवता विमान लेकर आये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "राजन्! आप बड़े धर्मात्मा हैं इस कारण आप शरीर समेत मेरे साथ स्वर्ग को चलिए। आप को बुलाने को मैं विमान लेकर आया हूँ। आइए, आप इसपर बिराजिए।"

युधिष्ठिर ने कहा, "हे इन्द्र! अकेले मुझे स्वर्ग अच्छा न लगेगा। रास्ते में द्रौपदी और सारे भाई गिरे पड़े हैं। इसलिए यदि आप उनको भी वहाँ ले जाँय तो मैं चलूँ।"

इन्द्र ने कहा, ""राजन्! आपके भाई स्वर्ग को पहुँच गए हैं। चलिए, आपकी वहीं उनसे भेंट होगी। आप उनकी चिंता नहीं कीजिए। आप स्वयं इस शरीर सहित वहाँ पहुँचिए।"

यह सुनकर युधिष्ठिर चुप हो गए और साथ के काले कुत्ते को उठाकर विमान में बिठाने लगे। इस पर इन्द्र ने कहा, "राजन्! आप यह क्या कर रहे हैं? कुत्ता बड़ा अपवित्र जीव है। इसलिए इसको यहीं छोड़ दीजिए और स्वयं स्वर्ग चलिए।

इसपर युधिष्ठिर ने कहा, "भगवन् यह बहुत दूर से मेरे साथ चला आरहा है और ऐसा मालूम होरहा है कि यह मुझे अपना स्वामी समझता है। इस विचार से वह मेरे साथ हुआ। शास्त्रों में लिखा है कि शरणागत को छोड़ देना अधर्म है। इसलिए मैं इसे नहीं छोड़ सकता।"

इन्द्र ने कहा, "यह तो ठीक है। परन्तु स्वर्ग में कुत्तों के लिए कोई

स्थान नहीं है। कुत्ता ऐसा नीच जीव है कि इसके पातकों की सब शुभ कीर्तियां नष्ट होजाती हैं इसलिए आप इसको यहीं त्याग दें। आप को कोई पाप न लगेगा।

युधिष्ठिर ने कहा—'हे देवता! अपने भक्त को त्यागना न चाहिए। शरणागत और भक्त को त्यागने के समान कोई दूसरा पाप नहीं है। मैं इसको त्यागकर स्वर्ग नहीं जाना चाहता।

इन्द्र ने कहा—आपने अपने भाइयों के वास्ते तो इस बारे में कोई बहस नहीं की।

युधिष्ठिर ने कहा—जो अब नहीं है उनके लिए हठ करना व्यर्थ है। परन्तु जो उपस्थित है और जो इतनी लम्बी यात्रा करते हुए हस्तिनापुर से मेरे साथ चला आया है, उसका त्याग देना महा पाप है। इस लिए मैं इसको कदापि नहीं छोड़ सकता।

युधिष्ठिर की इस धर्मपरायणता को देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए बोले—हे भारत! तुम्हारी शरणागत की रक्षा को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वास्तव में कुत्ते के भेष में यह स्वयं धर्मराज हैं।

इन्द्र के इतना कहते ही कुत्ते का रूप त्याग कर धर्मराज ने कहा—हे पुत्र! मैंने तीन बार तुम्हारी परीक्षा की और तीनों बार तुम पूरे उतरे। इस लिए अब तुम जाओ और अपने यश के कारण स्वर्गसुख को प्राप्त करो।

तब राजा युधिष्ठिर इन्द्र और धर्मराज को प्रणाम करके रथ में बैठ गये। उस समय देवताओं ने फूल बरसाकर आनन्द के बाजे बजाये और तब पल भर में ही विमान द्वारा युधिष्ठिर स्वर्गलोक में प्रविष्ट हो गये।

इन्द्र सभा में युधिष्ठिर

सूत जी कहते हैं---हे राजन् ! इस प्रकार इन्द्र की सभा में पहुँच कर युधिष्ठिर ने देखा कि दुर्योधन एक अनोखे सिंहासन पर विराजमान हैं। उसके आगे अप्सरायें नाच रही हैं। भांति-भांति के भोज्य पदार्थ और सब तरह के सुख के साधन वहां उपलब्ध हैं। यह देखकर युधिष्ठिर को क्रोध आगया। वह आवेश में आकर इन्द्र इत्यादि को फटकारकर कहने लगे-"अन्यायी दुराचारी और इस महान पापी दुर्योधन को किस न्याय नीति से आप लोगों ने स्वर्ग में स्थान दिया ? मृत्युलोक में इसने जो युद्ध रचाया था, उसको देखकर यह कहाँ का न्याय है कि आप लोगों ने इस पापी को स्वर्ग का अवसर दिया है ? और इसके विपरीत मेरे भाइयों को जो बड़े धर्मात्मा थे, न जाने किस नर्क में धकेल दिया है। इसलिए मैं इस पापी के निकट नहीं बैठूँगा। बैठना तो दूर रहा मैं इसका मुँह भी नहीं देखना चाहता। इसके निकट रहने से मुझे शान्ति नहीं मिल सकती और जब शान्ति ही नहीं, तब स्वर्ग कैसा ?"

युधिष्ठिर के इस विचार पर देवर्षि नारद ने उन्हें समझा कर कहा-युद्ध में दुर्योधन ने क्षत्रिय-धर्म का पूरा पालन किया है। और इस सत्यपालन में अपने शरीर का बलिदान दे दिया। इसी कारण से स्वर्ग में इसको उत्तम स्थान दिया गया। यह अन्याय नहीं न्याय है। यह स्वर्ग है। यहां शत्रुता कैसी ? इस पर युधिष्ठर मौन हो गये। नारदजी ने कहा-बोलते क्यों नहीं ?

युधिष्ठिर ने कहा-भगवन् ! अब कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि मेरे भाई और द्रौपदी कहां हैं ? मैं सर्वप्रथम उनसे मिलने का इच्छुक हूँ।

नारदजी ने कहा-आप धीरज रखिये। अभी उनसे भी भेंट हो जायेगी।

नरक

सूतजी कहते हैं--हे राजन ! युधिष्ठर से ऐसा कहकर नारदजी ने अपनी देव-मंडली में विचार-परामर्श करके देवदूतों को आदेश दिलवा दिया कि वह युधिष्ठिरको वहां लेजाय जहां भीमसेन तथा अर्जुन इत्यादि हैं। युधिष्ठिर को साथ लेकर देवदूत नरककी ओर चले। नरक में भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी तथा दूसरे लोग भी पड़े थे। देवदूतों के साथ युधिष्ठिर कुछ ही दूर आगे गये थे कि रास्ते में दूर ही से बड़ी दुर्गन्ध आने लगी। निकट पहुँच कर युधिष्टर ने देखा कि मांस मज्जा और रक्त चारों ओर फैला हुआ है और प्रेत इधर उधर कोलाहल कर रहे हैं। इस प्रकार के अनेक शोर तथा गले सड़े और भयानक दृश्यों को देखकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे देवदूतों ! मुझे कहाँ तक आगे चलना है ? क्योंकि मैं इन भयानक दृश्यों को देखकर पलपल व्याकुल होता जा रहा हूँ। इसलिए मुझे भीम इत्यादि से मिलाकर शीघ्र वापिस ले चलो। देवदूतों ने तो युधिष्ठिर को नरक का दर्शनमात्र कराना था इसलिये उन्होंने कहा--अच्छा अभी लौटा देते हैं। थोड़ा और चलिये।

तब तक युधिष्ठिर नरककुंड के तट पर पहुँच गये। वहां उन्होंने जैसा भयंकर दृश्य और लोगों पर अत्याचार होते हुये देखा वह उसका सपने में भी अनुमान नहीं लगा सकते थे। उन्होंने दूतों से कहा--भाई ! मुझे यहां से शीघ्र वापिस ले चलो।

जब देवदूत युधिष्ठिर को लौटा करले जाने लगे तब युधिष्ठिरने घूम कर ज्योंही पांव उठाया तभी उनके कानोंसे आवाजें टकराने लगीं--हे धर्मराज ! हम सब को छोड़कर तुम कहां जा रहे हो ? तुम्हारे आने से हमारा बहुत दुःख दूर हो गया। देखो, हम सब, कर्ण, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और द्रौपदी तथा उस के सब पुत्र इसकुंडमें पड़े हैं। इसको देख युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। वह देवताओं तथा प्रकृति के इस खेल को देखकर बहुत चकित हुए। उसी समय देवताओं ने कहा--राजन अब यहां से चलिये।

परन्तु युधिष्ठिर अब वहाँ से कब चलने वाले थे। उन्होंने कहा–मेरे सब भाई तो नरक में हैं। अकेला स्वर्ग में जाकर क्या करूँगा ? हे दूतो ! तुम वापिस जाकर इन्द्र से ऐसा ही कह दो।

युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि इन्द्र स्वयं वहाँ पहुँच गये। इन्द्र को देख कर युधिष्ठिर नें कहा—हे देवता। आपके यहाँ यह घोर अन्याय है कि पापी दुर्योधन तो देवताओंके सामन सुख भोग रहा है और मेरे पुण्यात्मा भाई नरक में पड़े हैं।

इन्द्र ने कहा–राजन्! यह हमारा प्रबन्ध नहीं है। प्राणी अपने शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। बुरे कर्मों का फल पहले और अच्छे कर्मों का फल बाद में मिलता है। इसलिये आपके भाइयों को नरकवास पहले करना पड़ा और इसी प्रकार आपको भी एक पापके कारण नरक का दर्शन करना पड़ा।

इस पर युधिष्ठिर ने पूछा–भगवन् ! मैंने कौन सा पाप किया है ?

इन्द्र ने कहा–द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के बारे में आप ने असत्य कहा था।

युधिष्ठिर ने इस पर कहा–ओह ! धर्म की गति बड़ी कोमल है।

सूतजी कहते हैं–हे राजन् ! अब युधिष्ठिर को साथ लेकर इन्द्र नर्क कुंड के तट से चले। युधिष्ठिर ने कहा–मेरे भाइयों को भी ले चलिये।

इन्द्र ने कहा–अब नरक में उन सब का पाप भस्म हो गया है। ये स्वयं ही अब स्वर्ग स्थान में जायेंगे। तब तक आप मेरे साथ चल कर निकट बह रही गंगा में स्नान करके पवित्र हो जाईये। इस गंगा में स्नान कर लेने से आपका रहा सहा रागद्वेष भी जाता रहेगा। और आप सब पापों से मुक्त हो जायेंगे।

युधिष्ठिर ने जाकर गंगा में स्नान किया। स्नान करते ही उन का मन शुद्ध और पवित्र हो गया ! फिर तो देवताओं से प्रसन्न होकर युधिष्ठिर इन्द्र के साथ उस उत्तम लोक को गये जहाँ क्रोध से रहित दुर्योधन था और जहां भीम, अर्जुन तथा द्रौपदी सहित दूसरे पाँडव भी आ गये थे ! * महाभारत समाप्त *